मूल्य : ₹ 50 दिसम्बर 2025 आई.एस.ओ. 9001: 2015 संगठन

भाकृअनुप
ICAR

खेती

IAC
2025

बेटी बचाओ
बेटी पढ़ाओ

सस्य विज्ञान

स्मार्ट कृषि खाद्य प्रणालियों और पर्यावरण संरक्षण पर विशेषांक

छठा अंतर्राष्ट्रीय सस्य विज्ञान सम्मेलन-2025

/InAgrisearch | /user/icarindia | officialicarindia | www.icar.org.in | /icarindia

उन्नत कृषि-खाद्य प्रणाली और पर्यावरण संरक्षण के लिए सस्य विज्ञान की नई परिकल्पना

(छठा अंतर्राष्ट्रीय सस्य विज्ञान सम्मेलन, 24 से 26 नवम्बर 2025)

सीएसआईआर-राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला सभागार, पूसा कैम्पस, नई दिल्ली

वर्तमान समय में कृषि क्षेत्र अभूतपूर्व चुनौतियों का सामना कर रहा है। एक ओर बढ़ती जनसंख्या के लिए पर्याप्त, पौष्टिक आहार की आवश्यकता निरंतर बढ़ रही है, तो दूसरी ओर जलवायु परिवर्तन, भूमि क्षरण, जल की कमी और जैव विविधता में गिरावट जैसी गंभीर पर्यावरणीय समस्याएं तेजी से गहराती जा रही हैं। ऐसी स्थिति में कृषि को केवल उत्पादन का साधन न मानकर, पारिस्थितिकी संरक्षण और मानव कल्याण का आधार बनाना अब समय की मांग है।

इन्हीं संदर्भों में छठा अंतर्राष्ट्रीय सस्य विज्ञान सम्मेलन (24-26 नवम्बर 2025) का मुख्य विषय 'उन्नत कृषि-खाद्य प्रणाली और पर्यावरण संरक्षण के लिए सस्य विज्ञान की नई परिकल्पना' आधुनिक युग की कृषि के लिए एक नई दिशा प्रस्तुत करता है।

पिछले कुछ दशकों में हरित क्रांति और तकनीकी नवाचारों ने भारत को खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाया है। किंतु इस तीव्र उत्पादन वृद्धि ने प्राकृतिक संसाधनों पर भारी दबाव डाला है। मृदा की उर्वरता में कमी, भूजल का अंधाधुंध दोहन, कार्बन उत्सर्जन में वृद्धि और जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न अनिश्चितताओं ने कृषि की स्थायित्व क्षमता को कमजोर किया है। यदि कृषि को भविष्य में टिकाऊ बनाए रखना है, तो उसे जलवायु-सहनशील, संसाधन-कुशल और पर्यावरणीय रूप से संतुलित बनाना अनिवार्य होगा।

भविष्य की कृषि को कार्बन-संतुलन और पारिस्थितिकीय स्थिरता पर आधारित होना चाहिए। मृदा, जल, वायु, पौधे, पशुधन और सूक्ष्मजीवों का संतुलित सह-अस्तित्व कृषि प्रणाली की मजबूती का आधार है। कृषि भूमि को केवल उत्पादन का क्षेत्र नहीं, बल्कि एक जीवंत पारिस्थितिकी तंत्र के रूप में देखा जाना चाहिए। जलवायु अनुकूल फसलें, न्यूनतम जुताई, फसल अवशेष प्रबंधन, जैविक पदार्थों का पुनः उपयोग और वृक्ष-आधारित खेती जैसी पद्धतियां भूमि क्षरण रोकने और कार्बन संचयन बढ़ाने में सहायक हैं।

प्रकृति स्वयं कृषि की सर्वोत्तम मार्गदर्शक है। आधुनिक सस्य विज्ञान को टिकाऊ बनाने के लिए जैविक कृषि, प्राकृतिक कीट नियंत्रण, परागण सेवाओं का संरक्षण और फसल विविधीकरण को अपनाना होगा। प्रत्येक खेत को एक लघु पारिस्थितिकी तंत्र की तरह विकसित किया जाना चाहिए, जहां मृदा की जीवंतता बनी रहे, जल का विवेकपूर्ण उपयोग हो और ऊर्जा की खपत न्यूनतम हो।

मृदा, पौधे, पशु और मानव का स्वास्थ्य आपस में गहराई से जुड़ा है। मृदा के जैविक गुण पौधों की प्रतिरोधक क्षमता और पोषण गुणवत्ता को निर्धारित करते हैं, जो अंततः मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव डालते हैं। इसलिए संसाधनों का सटीक प्रबंधन, उर्वरक और जल का दक्ष उपयोग, तथा नैनो प्रौद्योगिकी, सेंसर उपकरण, ड्रोन और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) जैसी आधुनिक तकनीकें इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

सम्मेलन के उप-विषय

- कार्बन संतुलन और भूमि क्षरण मुक्त भारत के लिए जलवायु सहनशील कृषि
- खाद्य उत्पादन प्रणाली में पर्यावरण संरक्षण हेतु प्रकृति-आधारित समाधान
- मृदा-पौधा-पशु-मानव के एक स्वास्थ्य दृष्टिकोण के तहत संसाधनों का कुशल उपयोग और सटीक संसाधन प्रबंधन
- खाद्य और पोषण सुरक्षा के लिए आनुवंशिक क्षमता का उपयोग
- ऊर्जा-कुशल मशीनीकरण, डिजिटल समाधान और कटाई के बाद आपूर्ति शृंखला प्रबंधन
- सतत उत्पादन के लिए जैविक और अजैविक तनावों का प्रबंधन
- तकनीकी प्रसार और सहभागितापूर्ण दृष्टिकोण द्वारा महिलाओं का सशक्तिकरण और आजीविका विविधीकरण हेतु सामाजिक-आर्थिक सुदृढ़ता
- खाद्य प्रणाली में नीजी क्षेत्र, नीति-निर्माता, नागरिक समाज और शोध के बीच समन्वय व सहयोग
- कृषि 5.0 और विकसित भारत के लिए नीतिगत ढांचा और नवाचार
- युवा वैज्ञानिक और छात्र सम्मेलन

सतत आय एवं सुदृढ़ भविष्य

खाद्य सुरक्षा के साथ-साथ पोषण सुरक्षा आज की आवश्यकता है। जैव-संवर्धित फसलें, जीन-संपादन तकनीक से विकसित पोषक किस्में और स्थानीय आनुवंशिक संसाधनों का उपयोग इस दिशा में सहायक सिद्ध हो रहे हैं।

सौर ऊर्जा आधारित मशीनें, स्मार्ट ट्रैक्टर, ड्रोन निगरानी, बिग डेटा विश्लेषण और डिजिटल प्लेटफॉर्म खेती को अधिक सटीक, लाभकारी और पर्यावरण-अनुकूल बना रहे हैं। कटाई के बाद प्रसंस्करण और मूल्य शृंखला प्रबंधन में तकनीकी सुधार से अपव्यय कम होगा और किसानों की आय बढ़ेगी।

महिलाओं का कृषि में योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। तकनीकी प्रशिक्षण, वित्तीय सशक्तिकरण और निर्णय-निर्माण में उनकी समान भागीदारी कृषि प्रगति की कुंजी है। स्वयं सहायता समूहों, महिला किसान उत्पादक संगठनों और डिजिटल उद्यमिता के माध्यम से महिलाओं को कृषि मूल्य शृंखला से जोड़ना आजीविका विविधीकरण की दिशा में आवश्यक कदम है।

स्थायी कृषि प्रणाली के लिए नीति-निर्माण, वैज्ञानिक अनुसंधान और सामाजिक सहभागिता का समन्वय आवश्यक है। 'कृषि 5.0' के युग में शिक्षा संस्थानों को व्यावहारिक प्रशिक्षण, नवाचार आधारित परियोजनाएं और स्टार्टअप संस्कृति को प्रोत्साहित करना होगा, ताकि युवा वैज्ञानिक और छात्र कृषि को नवाचार और स्थायित्व का माध्यम बना सकें। छठा अंतर्राष्ट्रीय सस्य विज्ञान सम्मेलन केवल वैज्ञानिक विमर्श का मंच नहीं, बल्कि भविष्य की टिकाऊ, समावेशी और जीवन-केंद्रित कृषि प्रणाली की दिशा में सामूहिक संकल्प है। ■

इस विशेषांक हेतु अतिथि संपादकीय बोर्ड

डा. राजीव कुमार सिंह (प्रधान वैज्ञानिक), डा. बनवारी लाल (वरिष्ठ वैज्ञानिक), डा. ए.के झा (वरिष्ठ वैज्ञानिक), डा. एन.के. पारीक (सह आचार्य), डा. पी.के. उपाध्याय (वैज्ञानिक), डा. विनीता राठौर (सहायक प्राध्यापक), डा. विशाल त्यागी (वैज्ञानिक), डा. अर्जुन सिंह (वैज्ञानिक)

भाकृअनुप
ICAR

खेती

कृषि विज्ञान द्वारा ग्रामोत्थान की मासिक पत्रिका
वर्ष: 78, अंक: 8, दिसम्बर 2025

संपादन सलाहकार समिति

1. **डा. राजबीर सिंह** — **अध्यक्ष**
उप-महानिदेशक (कृषि विस्तार)
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

2. **डा. अनुराधा अग्रवाल** — **सदस्य**
परियोजना निदेशक (डीकेएमए)
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

3. **डा. विनोद कुमार सिंह** — **सदस्य**
निदेशक
भाकृअनुप-क्रीडा, हैदराबाद

4. **डा. धीर सिंह** — **सदस्य**
निदेशक
भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

5. **डा. के.के. सिंह** — **सदस्य**
कुलपति
सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि विश्वविद्यालय
मोदीपुरम, मेरठ

6. **श्री हर्षवर्धन** — **सदस्य**
प्रधान जनसंपर्क अधिकारी, इफको, नई दिल्ली

7. **श्री रितु राज** — **सदस्य**
कृषि पत्रकार

8. **सुश्री नीलम त्यागी** — **सदस्य**
प्रगतिशील किसान

9. **सुश्री सुनीता अरोड़ा** — **सदस्य सचिव**
प्रभारी, हिन्दी संपादकीय एकक (डीकेएमए)
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

प्रधान संपादक
डा. अनुराधा अग्रवाल
संपादक
सुनीता अरोड़ा
संपादन सहयोग
गजेन्द्र

प्रभारी (उत्पादन एकक)
पुनीत भसीन

प्रभारी (व्यवसाय एकक)
भूपेन्द्र दत्त
दूरभाष: 011-25843657
E-mail: businessuniticar@gmail.com
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन, पूसा गेट, नई दिल्ली-12

एक प्रति: रु. 50.00 वार्षिक : रु. 500.00
विशेषांक : रु. 200.00

E-mail : khetidipa@gmail.com

डिस्क्लेमर
लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं। उनसे भाकृअनुप की सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों तथा अन्य सामग्री का कॉपीराइट अधिकार भाकृअनुप-डीकेएमए के पास सुरक्षित है। इन्हें पुन: प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है। रसायनों/कीटनाशकों की डोज संबंधित संस्तुतियों का प्रयोग विशेषज्ञों से परामर्श के बाद करें। समस्त विवादों के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

इस अंक में

संपादकीय
सतत कृषि-खाद्य प्रणालियों के लिए सस्य विज्ञान का नवोन्मेषी दृष्टिकोण
-संजय सिंह राठौर

5 **समाधान**
जलवायु अनुकूल टिकाऊ कृषि
विनोद कुमार सिंह, ए.के. इंदोरिया, मुन्नालाल **और** सुमंत कुंडु

9 **दृष्टिकोण**
आधुनिक कृषि की स्थिरता, उत्पादकता और लाभप्रदता
उदय प्रताप सिंह, निखिल कुमार सिंह, अनुराग उपाध्याय, सीतेस झा, काजल वर्मा **और** दीप्तिरेखा महापात्रा

12 **आजीविका**
समन्वित कृषि प्रणाली: छोटे किसानों की उन्नत आजीविका
राजीव कुमार सिंह, कपिला शेखावत, प्रवीण कुमार उपाध्याय, संजय सिंह राठौर **और** विशाल त्यागी

16 **अतिरिक्त आय**
बागवानी आधारित समन्वित कृषि प्रणाली मॉडल
राजीव कुमार सिंह, एस.एस. राठौर, प्रवीण कुमार उपाध्याय, कपिला शेखावत, आदित्य सिंह **और** ऋषभ सिंह चंदेल

19 **तिलहन**
फसल विविधीकरण में तिलहनी फसलों की भूमिका
सुभाष बाबू, ऋषिराज, रूचिका चौधरी, सुदेश, संजय सिंह राठौर **और** सी.एच. श्रीनिवासराव

22 **पोषण**
दलहन उत्पादकता वृद्धि से आत्मनिर्भरता
नरेंद्र कुमार, मोहम्मद हाशिम, आदर्श कुमार, मनमोहन देव **और** सी.पी. नाथ

25 **मिलेट्स**
खाद्य एवं पोषण सुरक्षा में बढ़ता श्री अन्न का महत्व
सी. तारा सत्यवती **और** महेश कुमार

28 **आय सुरक्षा**
धान-परती प्रणाली में पोषण एवं आजीविका हेतु सतत विविधीकरण
राघवेंद्र सिंह, मोहम्मद आरिफ, मेराज आलम अंसारी, अमृत लाल मीणा, कमलेश कुमार **और** सुनील कुमार

31 **प्रभावी**
संरक्षण कृषि के बुनियादी सिद्धान्त, तकनीकी लाभ एवं चुनौतियां
राकेश कुमार, रघुबर साहू, संजीव कुमार, प्रवीण कुमार उपाध्याय, राजीव कुमार सिंह **और** संजय सिंह राठौर

विषय-सूची

35 जैविक
प्राकृतिक खेती का भविष्य में योगदान
भवानी शंकर मीणा, श्रवण कुमार यादव, शांति कुमार शर्मा **और** एस.एन. मीणा

39 मृदा स्वास्थ्य
किण्वित जैविक खाद से पर्यावरण संतुलन एवं स्वस्थ उपज
विशाल त्यागी, प्रवीण कुमार उपाध्याय, कपिला शेखावत, मोना नगरगडे, राजीव कुमार सिंह **और** संजय सिंह राठौर

43 नियंत्रण
कीटों का प्राकृतिक प्रबंधन
श्रवण एम. हलधर

46 उर्वरता
मृदा में सूक्ष्मजीवों की भूमिका
हर्ष वर्धन सिंह, अभिजीत कश्यप, उदय भान सिंह, नाजिया मंजर, **और** ज्योति प्रकाश सिंह

49 स्मार्ट फार्मिंग
तकनीक आधारित टिकाऊ और लाभकारी कृषि प्रणाली
कपिला शेखावत, संजय सिंह राठौर, राजीव कुमार सिंह, प्रवीण कुमार उपाध्याय **और** रामेश्वर पांडे

सम्मेलन
आवरण II
उन्नत कृषि-खाद्य प्रणाली और पर्यावरण संरक्षण के लिए सस्य विज्ञान की नई परिकल्पना

52 भू-पोषण
मृदा स्वास्थ्य हेतु चुनौतियों का समाधान
अमृत लाल मीणा, मोहम्मद आरिफ, पूनम कश्यप, रघुवीर सिंह **और** प्रकाश चंद घासल

55 प्रणाली
मृदा के स्वास्थ्य संवर्धन हेतु कृषिवानिकी
आशाराम, अशोक यादव, हृदयेश अनुरागी, सुशील कुमार, शोभन देबनाथ **और** ए. अरुणाचालम

58 नीति
बंजर से उपजाऊ तक: लवणीय-क्षारीय भूमि का सुधार
राजेन्द्र कुमार यादव, भावना बाबल **और** गजेन्द्र यादव

61 रोजगार
मृदा, मवेशी और मुनाफा: चारा-फसल आधारित समेकित कृषि प्रणाली
दाना राम पलसानिया, मुकेश चौधरी, गौरेन्द्र गुप्ता, सीताराम कांटवा **और** पंकज कौशल

64 आधुनिक
खरपतवार प्रबंधन के नए आयाम
वी.के. चौधरी, बादल वर्मा **और** जे.एस. मिश्र

68 यांत्रिकीकरण
मशीनों से बदलता कृषि का स्वरूप
दिलीप कुमार कुशवाहा, पी.के. साहू, अमित गुप्ता, नृसिंह चरण प्रधान **और** अरुणा टी.एन.

71 कृषि कैलेण्डर
दिसम्बर के मुख्य कृषि कार्य
राजीव कुमार सिंह, एस.एस. राठौर, अंजली पटेल, प्रवीण कुमार उपाध्याय **और** कपिला शेखावत

नवाचार
आवरण III
पर्वतीय क्षेत्रों के लिए ईंधन कुशल डीजल हल

स्मार्ट कृषि-खाद्य प्रणालियों और पर्यावरण संरक्षण की ओर बढ़ते कदम

कृषि आज भी हमारे देश की खाद्य, पोषण और आजीविका सुरक्षा की आधारशिला है, किंतु वर्तमान में यह जलवायु परिवर्तन, मृदा एवं जल संसाधनों के क्षरण, घटती उत्पादकता तथा उत्पादन को पर्यावरणीय संरक्षण के साथ संतुलित करने जैसी अभूतपूर्व चुनौतियों का सामना कर रही है। ऐसे परिवर्तित परिदृश्य में सस्य विज्ञान एक परिवर्तनकारी विज्ञान के रूप में उभर रहा है, जो टिकाऊ एवं स्मार्ट कृषि-खाद्य प्रणालियों के विकास हेतु विज्ञान, प्रौद्योगिकी और स्थानीय ज्ञान के एकीकरण का मार्ग प्रशस्त करता है। उत्पादकता में वृद्धि को पारिस्थितिक संतुलन और लचीलेपन के साथ समन्वित करते हुए सस्य विज्ञान भारत को खाद्य एवं पोषण सुरक्षा के दोहरे लक्ष्यों की प्राप्ति के साथ-साथ वैश्विक जलवायु प्रतिबद्धताओं में सार्थक योगदान देने में सक्षम बना सकता है।

इसी परिप्रेक्ष्य में, भारतीय सस्य विज्ञान सोसायटी, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, राष्ट्रीय कृषि विज्ञान अकादमी तथा ट्रस्ट फॉर एडवांसमेंट ऑफ एग्रीकल्चरल साइंसेज के सहयोग से छठे अंतर्राष्ट्रीय एग्रोनॉमी सम्मेलन का आयोजन 24-26 नवंबर, 2025 को सीएसआईआर-राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, पूसा परिसर, नई दिल्ली में किया जा रहा है। इस प्रतिष्ठित आयोजन का विषय है 'स्मार्ट कृषि-खाद्य प्रणालियों और पर्यावरण संरक्षण के लिए सस्य विज्ञान की पुनर्कल्पना।'

यह सम्मेलन विश्वभर के वैज्ञानिकों, शिक्षाविदों, नीति-निर्माताओं, प्रसार विशेषज्ञों, कॉर्पोरेट प्रतिनिधियों तथा नागरिक समाज के सदस्यों के लिए एक अनूठा मंच प्रदान करेगा, जहां फसल उत्पादन नवाचारों, लचीले एवं समावेशी कृषि विकास के लिए साझा दृष्टिकोण और रणनीतियों पर विचार-विमर्श किया जाएगा। सम्मेलन के तकनीकी सत्रों में जलवायु-अनुकूल कृषि द्वारा कार्बन और भूमि क्षरण-शून्यता की प्राप्ति, जैविक एवं अजैविक तनावों के नवाचारी प्रबंधन दृष्टिकोण, लैंगिक सशक्तिकरण एवं आजीविका विविधीकरण, खाद्य प्रणालियों में कॉर्पोरेट एवं नीति संवाद, तथा 'कृषि 5.0' और विकसित भारत हेतु सस्य विज्ञान के माध्यम से नए आयाम जैसे विषयों पर विस्तृत चर्चा की जाएगी। इसके अतिरिक्त, युवा वैज्ञानिकों एवं विद्यार्थियों के लिए एक विशेष सत्र आयोजित किया जाएगा, जो नवीन विचारों को प्रोत्साहन देगा तथा भविष्य के सस्य वैज्ञानिकों को टिकाऊ खेती के लिए दक्षता के विकास में सहायक सिद्ध होगा।

इस सम्मेलन से ऐसी ठोस एवं व्यावहारिक रणनीतियां तथा नीतिगत सुझाव सामने आने की अपेक्षा है, जो अत्याधुनिक विज्ञान को किसान-केंद्रित प्रथाओं से जोड़ें, कृषि शिक्षा एवं नीतिगत ढांचों को सशक्त बनाएं और सतत विकास लक्ष्यों की दिशा में प्रभावी प्रगति सुनिश्चित करें।

इस आयोजन के परिणाम न केवल सस्य विज्ञान के क्षेत्र को समृद्ध करेंगे, बल्कि भारत और विश्व स्तर पर स्थायी खाद्य एवं पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने में इसकी केंद्रीय भूमिका को और सुदृढ़ बनाएंगे। भारतीय सस्य विज्ञान सोसायटी की ओर से, मैं सस्य विज्ञान समुदाय के सभी सम्मानित सदस्यों एवं संबंधित हितधारकों को इस ऐतिहासिक आयोजन में सहभागिता हेतु हार्दिक आमंत्रण देता हूँ और भविष्य की सस्य विज्ञान को दिशा देने में सार्थक योगदान देने का आग्रह करता हूँ।

आइए, हम सब मिलकर किसानों, समाज और पर्यावरण के सतत कल्याण हेतु सस्य विज्ञान के प्रगतिशील विकास के प्रति अपनी सामूहिक प्रतिबद्धता को पुनः सुदृढ़ करें।

Sharma

(शांति कुमार शर्मा)
अध्यक्ष
भारतीय सस्य विज्ञान सोसायटी, नई दिल्ली

सतत कृषि-खाद्य प्रणालियों के लिए सस्य विज्ञान का नवोन्मेषी दृष्टिकोण

वैश्विक कृषि-खाद्य प्रणाली आज एक निर्णायक मोड़ पर खड़ी है। जलवायु परिवर्तन की तीव्रता, प्राकृतिक संसाधनों की सीमितता और बढ़ती खाद्य मांगों के इस दौर में सस्य विज्ञान को पारंपरिक उत्पादन-केंद्रित दृष्टिकोण से आगे बढ़ते हुए नवाचार, ज्ञान और सततता-आधारित प्रणालियों की दिशा में रूपांतरित होना अनिवार्य हो गया है। इसी परिप्रेक्ष्य में, छठा अंतर्राष्ट्रीय सस्य विज्ञान सम्मेलन 24-26 नवंबर 2025 को नई दिल्ली में 'स्मार्ट कृषि-खाद्य प्रणालियों और पर्यावरण संरक्षण के लिए सस्य विज्ञान की पुनर्कल्पना' विषय पर आयोजित किया जा रहा है। यह सस्य विज्ञान की भूमिका को नए युग की चुनौतियों के अनुरूप पुनः परिभाषित करने का अवसर प्रदान करेगा। आज किसान अत्यधिक मौसमी अस्थिरता, मृदा स्वास्थ्य में कमी, कीट एवं रोगों की नई प्रवृत्तियां, श्रम की कमी, बढ़ती उत्पादन लागत और संसाधनों की अनिश्चितता जैसी गंभीर चुनौतियों का सामना कर रहे हैं। इन परिस्थितियों में विज्ञान, प्रौद्योगिकी और प्रणालीगत चिंतन पर आधारित रूपांतरणकारी सस्य विज्ञान हस्तक्षेपों की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक महसूस की जा रही है।

स्मार्ट कृषि-खाद्य प्रणालियां, जिनमें प्रकृति आधारित समाधान, डिजिटल तकनीक, सटीक कृषि, जलवायु-अनुकूल फसल किस्में, जल एवं पोषक तत्वों के दक्ष प्रबंधन की तकनीकें तथा सतत गहनता शामिल हैं, उत्पादकता, लाभप्रदता और पर्यावरणीय स्थायित्व को एकीकृत करने का स्पष्ट मार्ग प्रस्तुत करती हैं। यह सम्मेलन इस बात पर बल देता है कि सस्य विज्ञान को खेत-स्तर की सिफारिशों से आगे बढ़कर परिदृश्य-स्तर के समाधान विकसित करने होंगे, जो प्राकृतिक संसाधनों के समेकित प्रबंधन पर आधारित हों। भविष्य की सस्य विज्ञान रणनीतियों में सटीक पोषण प्रबंधन, जलवायु-सूचित फसलचक्र, संरक्षण कृषि, एकीकृत कृषि प्रणाली, कृषिवानिकी तथा मृदा कार्बन संवर्धन को प्रमुख आधार बनाना होगा। ये पद्धतियां न केवल संसाधनों के उपयोग की दक्षता बढ़ाती हैं, बल्कि किसानों की जलवायु जोखिमों के प्रति अनुकूलन क्षमता को सशक्त बनाती हैं। पर्यावरणीय प्रभावों को घटाती हैं और पारिस्थितिक लचीलापन बढ़ाती हैं।

सतत कृषि-खाद्य प्रणालियों की ओर यह परिवर्तन तभी सार्थक होगा, जब किसान-केंद्रित नवाचारों को प्राथमिकता दी जाए। डिजिटल परामर्श सेवाएं, रीयल-टाइम मौसम पूर्वानुमान, रिमोट सेंसिंग आधारित फसल निगरानी और निर्णय-सहायक उपकरण किसानों को सटीक और समयोचित जानकारी से सशक्त बनाते हैं। इसके साथ ही, मूल्य श्रृंखलाओं का सुदृढ़ीकरण, फसल विविधीकरण को प्रोत्साहन तथा किसानों को जलवायु-स्मार्ट बाजारों से जोड़ना उनकी आजीविका सुरक्षा और आर्थिक सशक्तिकरण के लिए अत्यावश्यक है।

सस्य विज्ञान, जो पारंपरिक रूप से फसल उत्पादन विज्ञान के रूप में जाना जाता था, अब एक बहुआयामी विषय के रूप में विकसित हो रहा है, जो प्रौद्योगिकी, पारिस्थितिकी, अर्थशास्त्र और नीतिगत दृष्टिकोणों को समेकित करता है। समान रूप से महत्वपूर्ण है पारिस्थितिक तंत्र सेवाओं का संवर्धन और उनका आर्थिक मूल्यांकन, जैसे-कार्बन संचयन, जल धारण क्षमता में वृद्धि, जैव विविधता का संरक्षण और जलवायु चरम सीमाओं के प्रति अनुकूलन। इन सेवाओं को कृषि योजनाओं में समाहित करने से नीति-निर्माताओं को सतत कृषि प्रणालियों को अपनाने हेतु प्रभावी प्रोत्साहन तंत्र विकसित करने में सहायता मिलेगी, जिससे कृषि प्रणाली को राष्ट्रीय एवं वैश्विक जलवायु लक्ष्यों के अनुरूप लाया जा सकेगा।

भारत की राष्ट्रीय सतत कृषि मिशन (एनएमएसए), प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (पीएमकेएसवाई), मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना तथा डिजिटल कृषि से जुड़ी पहलें स्मार्ट, नवाचार-आधारित और सतत एग्रोनॉमी को गति देने के लिए एक सुदृढ़ आधारशिला प्रदान करती हैं। यह सम्मेलन वैज्ञानिकों, नीति-निर्माताओं, उद्योग प्रतिनिधियों और किसानों के लिए एक उत्कृष्ट मंच का कार्य करेगा, जहां विचारों का आदान-प्रदान, अत्याधुनिक नवाचारों का प्रदर्शन और जलवायु-अनुकूल कृषि के लिए साझा एवं व्यावहारिक समाधान विकसित किए जा सकेंगे।

21वीं सदी की जटिल चुनौतियों के बीच, एग्रोनॉमी को विज्ञान, नवाचार और संरक्षण की भावना के साथ अग्रणी भूमिका निभाते रहना होगा। प्रौद्योगिकी को अपनाकर, पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखते हुए और ज्ञान प्रणालियों को सुदृढ़ बनाकर एक ऐसी कृषि प्रणाली का निर्माण कर सकते हैं, जो लचीली, उत्पादक और पर्यावरणीय रूप से उत्तरदायी हो।

छठा अंतर्राष्ट्रीय सस्य विज्ञान सम्मेलन इसी दृष्टि को साकार करने की दिशा में एक सशक्त कदम है, जो आने वाले दशकों में सस्य विज्ञान के माध्यम से भारतीय और वैज्ञानिक कृषि को सुदृढ़ करेगा।

(संजय सिंह राठौर)
आयोजन सचिव (अतिथि संपादक)
सस्य विज्ञान संभाग, भाकृअनुप-भाकृअनुसं, नई दिल्ली

जलवायु अनुकूल टिकाऊ कृषि

विनोद कुमार सिंह, ए.के. इंदोरिया, मुन्नालाल और **सुमंत कुंडू**

विश्व स्तर पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहे हैं, लेकिन भारत जैसे विकासशील देश में यह समस्या और भी जटिल हो जाती है। यहां जनसंख्या का बड़ा हिस्सा कृषि पर निर्भर है। उदाहरण के तौर पर, हाल ही में महाराष्ट्र में अंगूर सहित कई बागवानी फसलें नष्ट हुईं। मध्य प्रदेश में वर्ष 2014 और वर्ष 2015 में सोयाबीन की फली निर्माण अवस्था पर ओलावृष्टि और अत्यधिक वर्षा के कारण भारी नुकसान हुआ। ये केवल कुछ उदाहरण हैं; जलवायु जोखिमों के कारण कई अन्य फसलें, बागवानी, पशुधन, मत्स्य एवं कुक्कुट पालन में भी नुकसान हो रहा है। ऐसे में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के लिए जलवायु अनुकूल कृषि को अपनाना अत्यंत आवश्यक है। यह न केवल फसलों की उत्पादकता और किसानों की आय बढ़ाने में सहायक है, बल्कि पर्यावरणीय संतुलन और कृषि की स्थिरता बनाए रखने का भी प्रभावी उपाय है।

भारत में कृषि आधारित जीवन प्रणाली वर्षों से प्रचलित है। वर्तमान में देश की लगभग 60 प्रतिशत जनसंख्या जीविकोपार्जन के लिए कृषि पर निर्भर है। कुल 141 मिलियन हैक्टर कृषि भूमि में से लगभग आधा हिस्सा वर्षा पर निर्भर है।

कृषि वर्तमान में कई समस्याओं का सामना कर रही है, जैसे-प्राकृतिक संसाधनों की कमी और उनका लगातार क्षरण, किसानों की कमजोर आर्थिक-सामाजिक स्थिति, घटते खेत जोत, संस्थागत ढांचे की कमी, नए कृषि अनुसंधान में कमी और कृषि प्रसार तंत्र का कमजोर होना। इसके साथ ही, इन क्षेत्रों में चरम जलवायुवीय परिस्थितियां भी व्याप्त हैं।

भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद-500059

जलवायु परिवर्तन का स्वरूप

जलवायु परिवर्तन का बदलता स्वरूप यह दर्शाता है कि कृषि पारिस्थितिकी क्षेत्रों में तापमान और वर्षा वितरण में निरंतर परिवर्तन हो रहा है। उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में वाष्पोत्सर्जन की दर में वृद्धि के फलस्वरूप सूखे की तीव्रता लगातार बढ़ रही है। वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा बढ़ने से फसलों की प्रकाश संश्लेषण क्षमता तथा जल उपयोग दक्षता में वृद्धि देखी जा रही है।

वर्षा की अवधि और दिनों में कमी, साथ ही तीव्र चक्रवातों और तूफानों की बढ़ती आवृत्ति भी बदलते जलवायु स्वरूप को स्पष्ट रूप से दर्शाती है। इसके अतिरिक्त, सूखा, बाढ़, पाला और अतिवृष्टि जैसी चरम मौसमी परिस्थितियों में निरंतर वृद्धि हो रही है, जो कृषि उत्पादन प्रणाली के लिए गंभीर चुनौती बनती जा रही है।

फसलों पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभावों के कारण खाद्य सुरक्षा की गंभीर समस्या उत्पन्न हो सकती है। कृषि पर निर्भर बड़ी जनसंख्या की आजीविका पर भी इसका नकारात्मक असर पड़ सकता है। अनुसंधान दर्शाते हैं कि रबी मौसम की फसलों में

पशुपालन

सूखा एवं बाढ़ की स्थिति में सामुदायिक भूमि का उपयोग चारा उत्पादन हेतु किया जाना एक प्रभावी उपाय है। उन्नत पौध सामग्री द्वारा चारा उत्पादन, चारा एवं पशु खाद्य की वैज्ञानिक भंडारण तकनीकें तथा चारे का पोषण स्तर बढ़ाने जैसे उपाय जलवायु जोखिमों के समय पशुधन सुरक्षा सुनिश्चित करते हैं। तेज गर्मी से बचाव के लिए उन्नत छाया गृह का निर्माण आवश्यक है। सूखा-सहिष्णु चारा फसलें जैसे-ज्वार, बाजरा आदि उगाने से चरम मौसम में भी चारे की उपलब्धता बनी रहती है। इसके साथ ही, रुमेन संशोधक एवं एंटीऑक्सीडेंट जैसे चारा एडिटिव्स पशुओं को गर्मी के तनाव से निपटने में सहायक होते हैं। अधिशेष अवधि में साइलेज एवं घास का भंडारण करके कमी के समय में चारे की निरंतर आपूर्ति बनाए रखना जलवायु अनुकूल पशुधन प्रबंधन की एक महत्वपूर्ण नीति है।

मृदा नमी एवं उर्वरता में सुधार के लिए कृषि भूमि में तालाब गाद का प्रयोग

तापमान में मात्र 1 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि से देश में गेहूं का उत्पादन 4 से 5 मिलियन टन तक घट सकता है।

इसके अतिरिक्त, तापमान और वर्षा में होने वाला छोटा सा परिवर्तन भी फल, सब्जी, चावल, सगंधीय एवं औषधीय पौधों के उत्पादन तथा गुणवत्ता को प्रभावित करता है। शीतकालीन फसलों के संदर्भ में जलवायु परिवर्तन तुलनात्मक रूप से और भी बड़ी चुनौती है। तापमान में वृद्धि, दिन एवं रात के तापमान में असमानता, वर्षा की अनिश्चितता और पाला जैसी परिस्थितियां फसलों की वृद्धि एवं उपज पर विपरीत प्रभाव डालती हैं।

कृषि अभियांत्रिकी पर प्रभाव

कृषि यांत्रिकीकरण का सबसे बड़ा लाभ यह है कि मशीनों के माध्यम से बीज एवं उर्वरक को निर्धारित गहराई और समय सीमा में सटीक रूप से नियोजित किया जा सकता है, जिससे बीज, उर्वरक और समय-तीनों की बचत होती है। परंतु बदलती जलवायु परिस्थितियों में परंपरागत कृषि उपकरणों की प्रभावशीलता घटती जा रही है। तीव्र सूखा, अतिवृष्टि, फसल वृद्धि के दौरान लम्बी शुष्क अवधि आदि कारक प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से मशीनों की दक्षता को प्रभावित करते हैं।

वर्षा आधारित क्षेत्रों में खराब मौसम और सीमित नमी की स्थिति में समय पर बुआई, फसल की देखभाल तथा उर्वरक का उचित अनुप्रयोग अत्यंत महत्वपूर्ण होता है, जो सामान्यतः कृषि यांत्रिकीकरण से ही संभव हो पाता है। अतः जलवायु परिवर्तन की परिस्थितियों में ऐसे उपकरणों की आवश्यकता है, जो कम समय में अधिक कृषि कार्य कर सकें। उदाहरण के लिए, ड्रोन प्रौद्योगिकी का उपयोग करके कम समय में अधिक क्षेत्रफल में कीटनाशी या पोषक तत्वों का छिड़काव किया जा सकता है, जिससे कृषि कार्यों की दक्षता और उत्पादकता दोनों में वृद्धि होती है।

जलवायु अनुकूल कृषि तकनीकें

प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन

प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन के अंतर्गत मुख्यतः स्व-स्थानी नमी संरक्षण, जैविक आच्छादन, फसल अवशेषों को जलाने के स्थान पर मृदा में मिलाना, हरी खाद का उपयोग, पूरक सिंचाई हेतु जल संरक्षण एवं पुनः प्रयोग, बाढ़-प्रभावित क्षेत्रों में समुचित जल निकास, संरक्षित खेती, कृत्रिम भूजल पुनर्भरण तथा जल-संरक्षण सिंचाई जैसी तकनीकों को अपनाकर मृदा स्वास्थ्य एवं फसल उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है। इसके साथ ही जलवायु परिवर्तन के विपरीत प्रभावों को कम किया जा सकता है।

संरक्षण कृषि में ज्वार की फसल

खेत के निचले भाग में कुंड बनाकर वर्षा जल का संचयन किया जा सकता है, जिसका उपयोग केवल सिंचाई के उद्देश्य

जिला स्तरीय कृषि आकस्मिक योजनाएं

देश में जिला स्तर पर ये योजनाएं विकसित की गईं और इन्हें भाकृअनुप, भाकृअनुप/डीएसी एवं एफडब्ल्यू तथा भाकृअनुप-क्रीड़ा वेबसाइटों पर उपलब्ध करवाया गया है। इसके साथ ही, सभी राज्य सरकारों के कृषि विभागों में भी इन्हें परिचालित कर दिया गया है। ये योजनाएं विभिन्न मौसम प्रतिकूलताओं जैसे-सूखा, बाढ़, चक्रवात, ओलावृष्टि, अत्यधिक ताप और शीतलहर के समाधान के लिए बनाई गई हैं। बागवानी, पशुपालन, मुर्गीपालन एवं मत्स्य पालन सहित कृषि के विविध क्षेत्रों में ये योजनाएं किसानों की समस्याओं के समाधान में सहायक सिद्ध हुई हैं। इसके अतिरिक्त, ये योजनाएं उपर्युक्त मौसम प्रतिकूलताओं से होने वाली फसल हानि को कम करने हेतु उपयुक्त प्रौद्योगिकी हस्तक्षेप भी प्रदान करती हैं, जिससे कृषि उत्पादन और किसानों की आय सुरक्षित रहे।

सोयाबीन की चौड़ी क्यारी और नाली बिजाई प्रणाली

से किया जाना चाहिए। प्रत्येक खेत में एक कृषि कुंड का निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि वह अधिकतम संभावित अपवाह को संचित कर सके।

फसलों के लिए नमी की उपलब्धता बढ़ाने हेतु यथा-स्थान नमी संरक्षण संरचनाएं अपनाना आवश्यक है। इन तकनीकों का मूल सिद्धान्त यह है कि वर्षा जल अपवाह की दर को कम किया जाए। मृदा की सतह पर अस्थायी रूप से जल संग्रहण कर अंतःस्यंदन के अवसर बढ़ाए जाएं। इसके लिए भूमि के विन्यास में आवश्यक संशोधन किए जाते हैं। प्रमुख तकनीकों में कंटूर खेती, व्यापक आधार कुंड, खूंटी पलवार, कंटूर मेड़बंदी, वर्गीकृत मेड़बंदी, कंटूर ट्रेंचिंग तथा जल अवशोषण खाइयां शामिल हैं।

फसल प्रबंधन

फसल प्रबंधन के अंतर्गत मुख्यतः सूखा एवं तापमान-सहनशील किस्मों का चयन और समावेशन अत्यंत आवश्यक है। रबी फसलों में क्षैतिज ताप वृद्धि के प्रभाव को कम करने हेतु बुआई की तिथियों में उपयुक्त परिवर्तन करना लाभदायक सिद्ध होता है। जल संरक्षण आधारित तकनीकें जैसे श्री विधि एवं धान की सीधी बुआई, जलवायु के विपरीत प्रभावों को कम करने में सहायक हैं।

उद्यानिकी फसलों में पाले से बचाव के लिए धूमण द्वारा पाला प्रबंधन, तथा मानसून में देरी होने की स्थिति में रोपणी तैयार रखना बेहद उपयोगी हैं। इसके अतिरिक्त, भौगोलिक एवं जलवायुवीय परिस्थितियों के अनुरूप अंतवर्तीय फसल प्रणाली को अपनाना उत्पादन स्थिरता और जोखिम न्यूनीकरण के लिए प्रभावी नीति सिद्ध हो सकती है।

कृषिवानिकी

बदलते जलवायु परिदृश्य में कृषिवानिकी अपनाकर किसान अपनी खेती में विविधता ला सकते हैं। इस पद्धति से अनाज के साथ-साथ ईंधन लकड़ी, कृषि उपकरणों की लकड़ी, पशुओं के लिए चारा आदि नजदीकी खेतों से प्राप्त कर अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ-साथ आर्थिक स्थिति में सुधार कर सकते हैं।

आंवला, बेर, सुबबूल आदि आधारित कृषिवानिकी पद्धतियां जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के विरुद्ध सफल रूप से कारगर साबित हो रही हैं। इसके अतिरिक्त, नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले वृक्ष जैसे-सुबबूल, अंजन, शीशम, सिरस, नीम और बबूल लगाकर मृदा की उर्वराशक्ति को बढ़ाया जा सकता है।

संस्थागत बदलाव

बदलते जलवायु परिदृश्य में किसानों को समय पर बीज की उपलब्धता, कृषि उपकरण, पशुओं के लिए चारा और प्रशिक्षण की आवश्यकता महसूस हुई, ताकि वे चरम मौसम परिस्थितियों का सामूहिक रूप से सामना कर सकें।

इस दिशा में कार्य करते हुए निक्रा परियोजना के तहत गांव स्तर पर विभिन्न पहलें समन्वित रूप से लागू की जा रही हैं, जैसेः बीज भंडारण और चारा भंडारण की

पशुपालन पर प्रभाव

देश की अर्थव्यवस्था में पशुपालक परिवारों का महत्वपूर्ण योगदान है, जहां फसल उत्पादन और पशुपालन एक-दूसरे के पूरक हैं। वैश्विक स्तर पर जीवन स्तर में सुधार के कारण पशुधन उत्पादों की मांग वर्ष 2050 तक दोगुनी होने का अनुमान है। किंतु जलवायु परिवर्तन पशुधन उत्पादन के लिए गंभीर चुनौती बनकर उभर रहा है। इससे चारे की उपलब्धता एवं गुणवत्ता, जल संसाधन, पशु और दूध उत्पादन, पशु रोग, प्रजनन क्षमता तथा जैव विविधता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। पशुधन क्षेत्र स्वयं वैश्विक ग्रीनहाउस गैस (जीएचजी) उत्सर्जन में लगभग 14.5 प्रतिशत योगदान देता है, जिससे जलवायु परिवर्तन की समस्या और गहराती है। अतः यह क्षेत्र जीएचजी उत्सर्जन में कमी लाने और वैश्विक खाद्य सुरक्षा को सुदृढ़ करने में प्रमुख भूमिका निभा सकता है। सभी पशुओं की एक निश्चित दैहिक तापमान सीमा होती है, जिसे बनाए रखना उनके स्वास्थ्य और उत्पादकता के लिए आवश्यक है। अनुसंधान दर्शाते हैं कि गाय और भैंस दोनों की दूध उत्पादन क्षमता तथा प्रजनन दर पर अत्यधिक अधिकतम या न्यूनतम तापमान का नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। ऊंचे तापमान से पशुओं की रूमेन कार्य क्षमता कम हो जाती है, जिससे कई स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं उत्पन्न होती हैं।

मत्स्यपालन पर प्रभाव

महासागरीय पर्यावरण पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहे हैं। इनमें विशेष रूप से महासागरों का गर्म होना, अम्लीकरण तथा समुद्र स्तर में वृद्धि प्रमुख हैं। ये परिवर्तन मत्स्य उत्पादन और भंडार को गंभीर रूप से प्रभावित करेंगे। अनुमान है कि तूफान, बाढ़ और सूखे की बढ़ती घटनाएं मत्स्य पालन को व्यापक रूप से प्रभावित करेंगी। समुद्र स्तर में वृद्धि से मत्स्य उत्पादन घटेगा और मछुआरों की आजीविका को नुकसान पहुंचेगा। पानी के तापमान में वृद्धि से मछलियों की विविधता, वितरण, प्रचुरता और जीवन चक्र (फेनोलॉजी) पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। अधिकांश मछली प्रजातियों के लिए उनके चयापचय और खाद्य जीवों की उपलब्धता से संबंधित एक सीमित इष्टतम तापमान सीमा होती है। समुद्री जल के तापमान में मात्र 1 डिग्री सेल्सियस का अंतर भी उनके वितरण और जैविक प्रक्रियाओं को प्रभावित कर सकता है। उच्च तापमान से मछलियों की आहार ग्रहण क्षमता, वृद्धि दर तथा मांस की गुणवत्ता में उल्लेखनीय कमी आती है।

कृषिवानिकी पद्धति से अंजन एवं रागी द्वारा नाइट्रोजन स्थिरीकरण

व्यवस्था, कृषि वस्तुओं हेतु सामाजिक समूह और कस्टम हायरिंग केंद्र, सामुदायिक विपणन समूह, मौसम आधारित फसल बीमा, ग्रामीण स्तर पर मौसम प्रयोगशाला द्वारा जलवायु आधारित ज्ञान का प्रसार, इन पहलों के माध्यम से किसान न केवल आपदा प्रबंधन के लिए तैयार होते हैं, बल्कि जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के अनुकूल अपनी कृषि गतिविधियों को भी संचालित कर सकते हैं।

निक्रा परियोजना

बदलते जलवायु परिदृश्य में कृषि पर पड़ने वाले प्रभावों से बचाव के लिए अनुकूलन उपायों हेतु भाकृअनुप ने एक महत्वपूर्ण परियोजना 'राष्ट्रीय जलवायु समुत्थान कृषि में नई पहल (निक्रा)' की शुरुआत फरवरी 2011 में ग्यारहवीं योजना के दौरान की थी। बारहवीं योजना में इस परियोजना का नाम बदलकर 'जलवायु अनुकूल कृषि पर राष्ट्रीय नवाचार (निक्रा)' कर दिया गया।

इस परियोजना के प्रौद्योगिकी प्रदर्शन घटक के अंतर्गत किसानों के खेतों में विशेष स्थानों पर विपरीत जलवायुवीय परिस्थितियों के लिए अनुकूलन तकनीकों का प्रत्यक्ष प्रदर्शन किया जा रहा है। यह प्रदर्शन घटक देश के 151 जलवायुवीय रूप से संवेदनशील जिलों के प्रत्येक जिले में तीन-चार गांवों में लागू किया जा रहा है। इससे स्थानीय स्तर पर किसानों को जलवायु अनुकूल तकनीकों के लाभ सीधे दिखाई दें और वे इन्हें अपनाने के लिए प्रेरित हों।

कृषि मौसम परामर्श सेवा/कृषि मौसम सलाह सेवा

देश के विभिन्न जलवायुविक क्षेत्रों में स्थित गांवों में जलवायु विचलन के दौरान कृषि मौसम सलाह ने किसानों को मौसम संबंधित जोखिमों का सामना करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यह सेवा फसलों में उपयोगी उपादनों की कमी को कम करने, आय में सुधार लाने और फसल उत्पादन में संभावित हानि को न्यूनतम करने में सहायक सिद्ध हुई है।

कृषि मौसम सलाह सेवा किसानों को समयानुसार और मौसम आधारित निर्णय लेने में मार्गदर्शन प्रदान करती है। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी तथा उपलब्ध मौसम पूर्वानुमान मॉडल की सहायता से मौसम विज्ञान विभाग ने कृषि परामर्श सेवा को जलवायुविक क्षेत्रों के अनुसार जनपद स्तर तक प्रभावी बनाने का कार्य किया है।

भावी परिदृश्य

- **एआई-संचालित सटीक खेती:** कृत्रिम बुद्धिमत्ता, उपग्रह-आधारित जलवायु निगरानी और प्रारंभिक चेतावनी प्रणालियों को सुदृढ़ करने की आवश्यकता है।
- **नीतिगत हस्तक्षेप:** कार्बन मूल्य निर्धारण, जलवायु-अनुकूल सब्सिडी और व्यापार उदारीकरण जैसे उपाय जलवायु जोखिमों को कम कर टिकाऊ कृषि पद्धतियों को बढ़ावा दे सकते हैं।
- **समग्र दृष्टिकोण:** जलवायु अनुकूल कृषि प्रणालियों के विकास के लिए प्रौद्योगिकी, नीति और सामाजिक-आर्थिक कारकों को एकीकृत करके बहु-विषयक दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है।
- **ज्ञान अंतराल को भरना:** बदलते जलवायु परिवर्तन की दशा में नीति निर्माता, शोधकर्ता और कृषि व्यवसायी मिलकर संसाधनों तक उचित पहुंच बढ़ाएं और टिकाऊ कृषि पद्धतियों को लागू करें।
- **भविष्य का अनुसंधान:** दीर्घकालिक अनुकूलन नीतियों, बेहतर शासन ढांचे और समावेशी नीतियों पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए, जो कमजोर कृषक समुदायों को प्राथमिकता देते हुए वैश्विक खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करें।
- **कृषि मौसम सलाह और आकस्मिकता योजनाएं:** समय पर कृषि मौसम सलाह सेवाओं का विशेष योगदान है। इनसे किसान जोखिम कम करने के लिए उचित समय पर प्रबंधन कर सकते हैं। इसी दिशा में कृषि और संबंधित क्षेत्रों के लिए सुचारु एवं कार्यशील कृषि आकस्मिकता योजनाओं का निर्माण आवश्यक है।

आधुनिक कृषि की स्थिरता, उत्पादकता और लाभप्रदता

उदय प्रताप सिंह, निखिल कुमार सिंह, अनुराग उपाध्याय, सीतेस झा, काजल वर्मा और **दीप्तिरेखा महापात्रा**

"आधुनिक कृषि जो तकनीकी और वैज्ञानिक उन्नतियों पर आधारित है, कई महत्वपूर्ण चुनौतियों का सामना कर रही है, जो इसकी उत्पादकता और स्थिरता को प्रभावित करती हैं। सबसे बड़ी समस्या जलवायु परिवर्तन है, जिसके कारण अक्सर सूखा, बाढ़ और तापमान में तेजी से बदलाव जैसी अप्रत्याशित घटनाएं फसलों के उत्पादन को सीधे प्रभावित करती हैं। इसके अलावा, मृदा क्षरण भी एक गंभीर समस्या है, जिससे मृदा उर्वरता एवं जैव विविधता सीधे तौर पर प्रभावित होती है। अत्यधिक रासायनिक उर्वरक और कीटनाशकों के उपयोग से मृदा में प्रदूषण का स्तर सामान्य से ज्यादा बढ़ गया है। जल संकट भी इस क्षेत्र की एक बड़ी चुनौती है। सिंचाई के लिए पानी की कमी उत्पादन सामर्थ्य में बाधा डालती है। लघु किसानों के लिए बढ़ती लागत और आधुनिक तकनीकों की कमी एक बड़ी बाधा है। इससे वे नए उपकरणों और तकनीकों का लाभ उठाने में असमर्थ रहते हैं। इसके साथ ही, श्रम की कमी, खराब आपूर्ति शृंखला, और पर्यावरणीय प्रदूषण जैसे मुद्दे भी आधुनिक कृषि को प्रभावित करते हैं। इन सभी चुनौतियों का समाधान टिकाऊ कृषि प्रणाली, नवीन तकनीकों के समावेश और प्रभावी नीतिगत समर्थन के माध्यम से ही संभव है ताकि कृषि क्षेत्र को अधिक मजबूत, धारणीय और उत्पादक बनाया जा सके।"

आधुनिक कृषि पारंपरिक तरीकों से हटकर नवीनतम तकनीकों, वैज्ञानिक नवाचारों और टिकाऊ तरीकों की ओर एक परिवर्तनकारी बदलाव को दर्शाती है। इसमें उन्नत बीज, रासायनिक खाद, कीटनाशक, ड्रिप एवं स्प्रिंक्लर सिंचाई, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और सटीक खेती जैसी आधुनिक तकनीकों का समावेश होता है, जो उत्पादन बढ़ाने और संसाधनों का उचित उपयोग सुनिश्चित करती हैं।

सस्य विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005

वर्तमान समय में बढ़ती जनसंख्या, बदलते जलवायु एवं सीमित प्राकृतिक संसाधनों की चुनौतियों के बीच, आधुनिक कृषि न केवल उत्पादकता और गुणवत्ता में सुधार करती है, बल्कि पर्यावरण की रक्षा और किसान की आय भी बढ़ाती है। इन नवाचारों के माध्यम से भारतीय कृषि अधिक स्थायी, सक्षम और भविष्य के लिए तैयार हो सकती है।

आधुनिक कृषि चुनौतियों से निपटने के लिए कई उन्नत तकनीकों का सफलतापूर्वक उपयोग किया जा रहा है। इनमें सबसे प्रमुख है परिशुद्ध कृषि, जो सैटेलाइट छवियों, सेंसर और डेटा विश्लेषण के माध्यम से खाद, पानी और कीटनाशकों का सही मात्रा में और सही समय पर उपयोग सुनिश्चित करती है। इससे संसाधनों की बचत होती है और पर्यावरणीय दुष्प्रभाव कम होता है। ड्रोन तकनीक से खेतों की निगरानी और फसलों पर रोग/कीट प्रकोप का पता लगाने में मदद मिलती है, साथ ही

छिड़काव का कार्य भी स्वचालित रूप से किया जा सकता है।

उन्नत सिंचाई प्रणालियां जैसे ड्रिप और स्प्रिंक्लर सिंचाई जल संरक्षण को बढ़ावा देती हैं और फसलों को आवश्यक मात्रा में ही जल प्रदान करती हैं। इसके अलावा, नियंत्रित वातावरण वाली खेती जैसे-हाइड्रोपोनिक्स और वर्टिकल फार्मिंग सीमित भूमि में उच्च उत्पादन देने में सहायक होती हैं।

जैविक खाद, बायोपेस्टिसाइड्स और नैनो यूरिया पर्यावरण के अनुकूल विकल्प हैं, जो मृदा और फसलों को पोषण देते हैं। मशीनरी और फार्म स्वचालन से श्रम की बचत होती है और उत्पादन में वृद्धि होती है। ये सभी तकनीकें मिलकर कृषि को अधिक टिकाऊ, उत्पादक और पर्यावरण के अनुकूल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

प्राकृतिक कृषि, जैविक कृषि और सरंक्षण कृषि वर्तमान कृषि प्रणाली की लाभप्रदता और स्थिरता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। प्राकृतिक खेती में रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशकों का प्रयोग वर्जित है तथा उनकी जगह जीवामृत, बीजामृत और अन्य जैविक संसाधनों का उपयोग करके फसल की उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है। इससे उत्पादन लागत कम होती है और पर्यावरण का संरक्षण होता है, परिणामस्वरूप किसानों की आय में सुधार होता है। जैविक खेती में कम्पोस्ट, गोबर खाद और जैविक कीटनाशकों का प्रयोग किया जाता है। इससे मृदा की गुणवत्ता सुधरती है और फसलों का स्वास्थ्य बेहतर होता है। इसके साथ ही जैविक उत्पादों को बाजार में अच्छा मूल्य मिलता है, जिससे आर्थिक लाभ होता है।

खड़ी फसल अवशेष के अंतर्गत गेहूं की बुआई एवं जुताई

संरक्षण कृषि में न्यूनतम मृदा व्यवधान, मृदा आच्छादन और फसल विविधीकरण जैसी तकनीकों का उपयोग होता है, जो मृदा एवं जल संरक्षण, तथा उत्पादन की स्थिरता सुनिश्चित करते हैं। यह पद्धति लंबे समय में किसानों की लागत कम करने के साथ उत्पादन बढ़ाती है और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से लड़ने हेतु अनुकूलता प्रदान करती है। ये तीनों कृषि सिद्धान्त प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण को प्राथमिकता देते हुए टिकाऊ कृषि को प्रोत्साहित करती हैं।

वर्तमान परिवेश में ऐसी पद्धतियां जो कृषि में लाभ एवं स्थिरता सुनिश्चित करें, उनमें सरंक्षण कृषि मुख्य है। इसके साथ ही साथ समय की मांग, प्राकृतिक खेती के प्रति सरकार का झुकाव प्राकृतिक खेती से जुड़े आयामों को भी प्रदर्शित करता है। अतः इस लेख में कुनाबजल द्वारा सरंक्षण कृषि एवं प्राकृतिक कृषि को ही मुख्य रूप से उल्लेखित किया गया है।

कुनाबजल के लाभ

मृदा स्वास्थ्य में योगदान

कुनाबजल के उपयोग से मृदा में सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ती है, जिससे मृदा का सूक्ष्म जैविक संतुलन सुधरता है। यह ह्यूमस निर्माण को बढ़ावा देता है, जिससे मृदा की संरचना बेहतर होती है और जलधारण क्षमता बढ़ती है। पोषक तत्वों का संतुलित चक्रण होता है तथा मृदा की भौतिक विशेषताएं जैसे वायु संचरण में सुधार होता है।

जलवायु परिवर्तन शमन में भूमिका

कुनाबजल रासायनिक उर्वरकों की तुलना में ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन कम करता है, विशेषकर नाइट्रस ऑक्साइड उत्सर्जन को घटाता है। यह मृदा कार्बन भंडारण को बढ़ाता है और भूमि के अपक्षय को नियंत्रित करता है, जिससे यह एक कम-कार्बन उत्सर्जन की तकनीक है।

पौध स्वास्थ्य एवं उत्पादकता

कुनाबजल में उपस्थित अमीनो अम्ल, एंजाइम और जैव सक्रिय यौगिक पौधों की वृद्धि, रोग प्रतिरोधक क्षमता और फूल-फलन को बढ़ावा देते हैं। इसके सतत उपयोग से फसल की पैदावार और गुणवत्ता में सुधार होता है।

कीट एवं रोग प्रबंधन

कुनाबजल में प्रयुक्त औषधीय वनस्पतियां जैसे-नीम और करंज कीट और रोगों के नियंत्रण में मदद करती हैं, जिससे रासायनिक कीटनाशकों की आवश्यकता कम होती है और पर्यावरणीय प्रदूषण घटता है।

सामाजिक-आर्थिक लाभ

कुनाबजल बनने की लागत कम होती है और यह स्थानीय संसाधनों से तैयार होता है, जिससे किसानों की लागत कम होती है। यह ग्रामीण अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहित करता है, रोजगार के अवसर बढ़ाता है और किसानों की आय एवं लाभप्रदता में वृद्धि करता है। इसके साथ ही, उच्च गुणवत्ता वाली रसायनमुक्त फसलें बाजार में बेहतर मूल्य पाती हैं।

इस प्रकार, कुनाबजल पर्यावरण, कृषि उत्पादन और किसान कल्याण के लिए एक श्रेष्ठ और बहुआयामी समाधान है।

संरक्षण कृषि

संरक्षण कृषि आधुनिक कृषि की जटिल समस्याओं का प्रभावी समाधान प्रस्तुत करती है और इसे अपनाकर किसानों को टिकाऊ और लाभकारी खेती की दिशा में महत्वपूर्ण लाभ प्राप्त होते हैं। इस कृषि पद्धति के तीन मुख्य सिद्धान्त हैं: न्यूनतम मृदा व्यवधान, स्थायी मृदा आच्छादन और फसल विविधीकरण। न्यूनतम या शून्य जुताई से मृदा की संरचना बनी रहती है। इससे मृदा की उर्वरता और जलधारण क्षमता बढ़ती है, जो मृदा के कार्बनिक पदार्थ के क्षरण को कम करता है।

स्थायी मृदा आच्छादन, जैसे-फसल

अवशेषों को खेत में छोड़ना, मृदा को धूप एवं ताप के सीधे हानिकारक प्रभावों से बचाता है। इसके साथ ही जल के संरक्षण में भी योगदान देता है। फसल विविधीकरण की मदद से कीट और रोगों का चक्र टूटता है। इससे रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग कम होता है और जैव विविधता बढ़ती है। संरक्षण कृषि की ये तकनीकें मृदा स्वास्थ्य के साथ साथ लागत में कमी और उत्पादन की स्थिरता भी सुनिश्चित करती हैं। इसके अतिरिक्त, यह पद्धति जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों से लड़ने में सहायक होती है, पर्यावरण एवं मृदा प्रदूषण से बचाती है, और किसानों की आय में वृद्धि करती है। इसलिए, संरक्षण कृषि को अपनाना आधुनिक कृषि की चुनौतियों का एक महत्वपूर्ण और टिकाऊ समाधान है, जिससे कृषि क्षेत्र अधिक समृद्ध और पर्यावरण अनुकूल बन सकता है।

वृक्ष आयुर्वेद (कुनाबजल) द्वारा प्राकृतिक खेती

कुनाबजल प्राचीन भारतीय कृषि परंपरा का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जिसका उल्लेख प्राचीन ग्रंथों जैसे-वृक्षायुर्वेद और लोकोपकार में मिलता है। यह एक जैविक द्रव उर्वरक है, जो पशु अपशिष्ट, पौध-भाग और कार्बनिक उत्पादों के किण्वन से तैयार होता है। यह कृषि का समग्र दर्शन दर्शाता है, जिसमें पौधों की आयु, स्वास्थ्य और फसल की स्थिरता पर विशेष ध्यान दिया गया है।

कुनाबजल पारंपरिक कृषि-ज्ञान और आधुनिक संरक्षण कृषि के सिद्धान्तों का संगम है। यह सततता, उत्पादकता और लाभप्रदता तीनों को जोड़ने वाली कड़ी है। मृदा स्वास्थ्य सुधार, जलवायु शमन, पौध वृद्धि, रोग प्रबंधन और आर्थिक सुदृढ़ता इन सब पहलुओं के कारण कुनाबजल को आज की जलवायु-संकटग्रस्त और संसाधन संकुचित दुनिया में एक समग्र कृषि समाधान के रूप में देखा जा सकता है। उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कुनाबजल जैसे पारंपरिक जैविक घोल केवल उर्वरक न होकर एक समग्र कृषि दर्शन का अंग हैं, जो मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों को सुधारते हुए फसलों की वृद्धि, रोग प्रतिरोधक क्षमता और उपज गुणवत्ता में वृद्धि करते हैं।

कुनाबजल बनाने की विधि

जब इनका समावेश संरक्षण कृषि आधारित फसल स्थापना पद्धतियों (जैसे-न्यूनतम जुताई, फसल अवशेष प्रबंधन एवं फसल विविधीकरण) तथा एकीकृत पोषक प्रबंधन में किया जाता है, तब यह प्रणाली और अधिक प्रभावी हो जाती है। इस त्रिस्तरीय दृष्टिकोण से न केवल मृदा स्वास्थ्य में निरंतर सुधार होता है, बल्कि जलवायु परिवर्तन शमन, रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता में कमी, मृदा एवं वातावरण प्रदूषण में कमी, लागत में बचत, लाभप्रदता में वृद्धि और दीर्घकालिक उत्पादकता भी सुनिश्चित होती है। अतः विभिन्न फसलों में संरक्षण कृषि-आधारित तकनीकों के साथ कुनाबजल जैसे जैविक संसाधनों का एकीकृत उपयोग ही वह समग्र मार्ग है। इसके माध्यम से भारतीय कृषि को अधिक सतत, लाभप्रद और उत्पादक बनाया जा सकता है।

आधुनिक कृषि की तकनीकों और नवाचारों ने भारतीय कृषि को एक नया स्वरूप प्रदान किया है। इससे उत्पादन, संसाधनों के उपयोग और किसान की आय में सुधार हुआ है। हालांकि, जलवायु परिवर्तन, मृदा क्षरण, जल संकट, उच्च लागत और पर्यावरणीय प्रदूषण जैसी चुनौतियां कृषि क्षेत्र को प्रभावित कर रही हैं। इन समस्याओं से निपटने के लिए सटीक कृषि, स्मार्ट सिंचाई, नियंत्रित वातावरण खेती, जैविक खाद एवं मशीनरी जैसे उन्नत समाधान अपनाए जा रहे हैं। इसके साथ ही, गहन खेती, अन्तर कृषि, रिले खेती, पुनर्योजी कृषि, प्राकृतिक और जैविक खेती तथा संरक्षण कृषि जैसी टिकाऊ तकनीकें किसानों को लाभकारी, पर्यावरण अनुकूल और स्थायी खेती करने में सक्षम बना रही हैं।

संरक्षण कृषि के सिद्धान्त, न्यूनतम मृदा व्यवधान, स्थायी मृदा आच्छादन और फसल विविधीकरण मृदा की उर्वरता, जल संरक्षण और उत्पादन की स्थिरता सुनिश्चित करते हैं, जबकि कुनाबजल जैसे-पारंपरिक जैविक उपाय मृदा स्वास्थ्य, जलवायु शमन, रोग नियंत्रण और आर्थिक सुदृढ़ता में सहायक हैं। इस समग्र दृष्टिकोण से भारतीय कृषि न केवल आज की चुनौतियों का सामना करने में सक्षम होती है, बल्कि सतत विकास, पर्यावरण संरक्षण और किसान कल्याण की दिशा में भी प्रगति करती है। इसलिए, आधुनिक तकनीकों के साथ पारंपरिक और संरक्षण आधारित कृषि पद्धतियों का समन्वय ही कृषि क्षेत्र की स्थायी, उत्पादक और लाभप्रद भविष्य की कुंजी है।

सारणी: आधुनिक कृषि एवं संरक्षण कृषि में तुलनात्मक अध्ययन

विशेषता	आधुनिक कृषि	संरक्षण कृषि
मृदा प्रबंधन	ज्यादा जुताई और मशीनीकरण	न्यूनतम या बिना जुताई, मृदा संरक्षित
पर्यावरणीय प्रभाव	रासायनिक उर्वरक और कीटनाशक का अधिक उपयोग, प्रदूषण	प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, प्रदूषण कम
जल उपयोग	अधिक सिंचाई, जल संसाधनों का अधिक दोहन	स्मार्ट सिंचाई, जल संरक्षण पर जोर
उत्पादन प्रणाली	मोनोकल्चर (एक फसल की लगातार खेती)	फसलचक्रण और मिश्रित कृषि
मृदा स्वास्थ्य	मृदा की उर्वरता में कमी	मृदा की उर्वरता और जैव विविधता में सुधार
लागत	उच्च आदान लागत	उच्च आदान लागत पर समय के साथ उत्पादन लागत कम और संसाधन की बचत
जलवायु अनुकूलता	जलवायु परिवर्तन के प्रति संवेदनशील	जलवायु परिवर्तन झेलने में अधिक सक्षम
श्रम उपयोग	कम श्रम उपयोग दक्षता	अधिक श्रम उपयोग दक्षता

समन्वित कृषि प्रणाली: छोटे किसानों की उन्नत आजीविका

राजीव कुमार सिंह, कपिला शेखावत, प्रवीण कुमार उपाध्याय, संजय सिंह राठौर और **विशाल त्यागी**

"समन्वित कृषि प्रणाली से किसानों, खासतौर पर छोटे काश्तकारों को अपने घर और बाजार के लिए कई तरह की वस्तुओं के उत्पादन का पर्याप्त अवसर प्राप्त होता है। इसके साथ ही साथ कृषि के क्षेत्र में रोजगार के अवसर बढ़ाने, परिवार के लिए सन्तुलित पौष्टिक आहार जुटाने, वर्षभर आमदनी एवं रोजगार का प्रबंधन करने तथा मौसम और बाजार संबंधी जोखिमों को कम करने में भी मदद मिलती है। इससे खेती में काम आने वाली वस्तुओं के लिए किसानों की बाजार पर निर्भरता भी कम होती है। वहीं वर्तमान में खेती में लागत ज्यादा एवं पैदावार मे बढ़ोतरी न होने से किसानों की शुद्ध आय मे निरंतर कमी होती जा रही है। मृदा का स्वास्थ्य भी दिन-प्रतिदिन बिगड़ता जा रहा है। एक ओर जहां छोटे स्तर पर एवं सीमान्त किसानों की संख्या बढ़ती जा रही है, वहीं प्राकृतिक संसाधनों की कमी होती जा रही है। ऐसी स्थिति में सीमान्त एवं छोटे स्तर पर खेती को किस तरह लाभकारी व्यवसाय बनाकर किसान परिवार की जीविका सुनिश्चित की जाए एवं उनके जीवन स्तर को ऊपर उठाया जाए, यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण चुनौती है। इसी शृंखला में भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा उत्तर भारतीय परिस्थितियों में रहने वाले छोटे एवं सीमान्त किसानों के लिए 1.0 हैक्टर सिंचित भूमि पर एक समन्वित कृषि प्रणाली मॉडल विकसित किया गया है।"

समन्वित कृषि प्रणाली प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य है कि किसान के प्रक्षेत्र पर उपलब्ध संसाधनों, आर्थिक स्थिति एवं परिवार की खाद्यान्न एवं हरे चारे आदि की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए विभिन्न उद्यमों जैसे-फसल उत्पादन, बागवानी, कृषि-वानिकी, पशुपालन, मधुमक्खी पालन, मछली पालन एवं मशरूम आदि का समन्वय कर वर्षभर आय अर्जित करना और इसके साथ में उनके सामाजिक एवं आर्थिक स्तर को ऊंचा उठाना।

सस्य विज्ञान संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

समन्वित कृषि प्रणाली

प्राय: देखा गया है कि अधिकतर किसान एक ही प्रकार की फसल प्रणाली का लम्बे समय तक प्रयोग करते रहते हैं। इसमें कई प्रकार की समस्याएं उत्पन्न होने लगती हैं। इनमें पानी एवं मृदा की उर्वराशक्ति में कमी होना, फसल उत्पादन में स्थिरता,

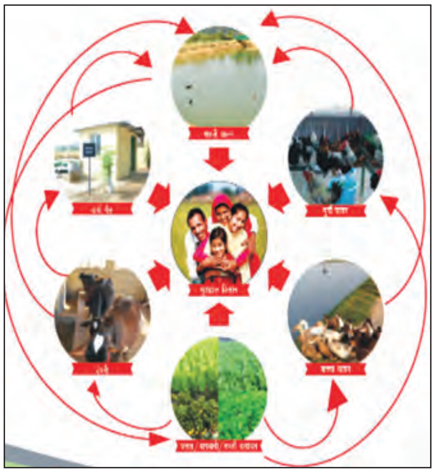

घटकों का समन्वय

छोटे एवं सीमान्त किसानों के फसल उत्पादन में अधिक लागत तथा खेती से कम लाभ इत्यादि समस्याएं बढ़ रही हैं।

उर्वरकों एवं रसायनों के अधिकाधिक प्रयोग के कारण वातावरण प्रदूषण बढ़ रहा है। ऐसी परिस्थिति में छोटे एवं सीमान्त किसानों की आजीविका सुनिश्चित करना एक कठिन चुनौती है। जिन क्षेत्रों में वर्षा आधारित खेती ही संभव है, वहां नमी की कमी तथा सूखे की स्थिति में फसल उत्पादन या तो बिल्कुल नहीं होता है या बहुत कम होता है। अत: एक ही प्रकार की फसलें उगाना हमेशा जोखिम भरा रहता है। इसके कारण विशेषकर सीमान्त एवं छोटे किसानों की अपनी घरेलू आवश्यकताएं पूर्ण करना कठिन हो रहा है।

ऐसे में समन्वित कृषि प्रणाली द्वारा किसानों की आजीविका को सुनिश्चित किया जा सकता है। समन्वित कृषि प्रणाली के अंतर्गत अत्यधिक फसल उत्पादन के अलावा अन्य कृषि उद्यमों का संयोजन कर न केवल अधिक लाभ एवं टिकाऊ उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है, बल्कि मौसम की विषमता से भी सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है। संसाधनों का संतुलित प्रयोग कर उनकी उपयोग क्षमता में वृद्धि तथा घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है। इसके साथ-साथ सकल आमदनी को बढ़ाया एवं वर्षभर रोजगार भी प्राप्त किया जा सकता है।

समन्वित कृषि प्रणाली के प्रमुख अवयव

फसल उत्पादन

समन्वित कृषि प्रणाली के अन्तर्गत एक हैक्टर क्षेत्रफल में फसल उत्पादन कर सकते हैं जैसे: बेबीकॉर्न-बरसीम-बेबीकॉर्न, मक्का-सरसों-सूरजमुखी, मक्का-सब्जी मटर-भिंडी, बहु कटाई ज्वार-आलू-प्याज, मक्का-गेहूं-लोबिया, धान-गेहूं-लोबिया, लौकी-गेंदा-मल्टी कट ज्वार, अरहर- गेहूं-बेबीकॉर्न एवं बैंगन-पेड़ी बैंगन-लोबिया (दोहरा उद्देश्य) इत्यादि फसलों का उत्पादन कर सकते हैं। इस प्रणाली के अन्तर्गत फसल उत्पादन में किसान की कम लागत लगती है। ज्यादा से ज्यादा उत्पादक सामग्री जैसे-गोबर खाद, वर्मीकम्पोस्ट एवं बायोगैस स्लरी से ही पूर्ति हो जाती है। इस प्रकार किसान को फसल उत्पादन के लिए एक अच्छा फसलचक्र अपनाना चाहिए।

दुग्ध उत्पादन

इस प्रणाली के अन्तर्गत 1 हैक्टर भूमि के अनुसार किसान अपने फार्म पर कम से कम 3 गाय या भैंस पाल सकते हैं। दुग्ध उत्पादन के लिए गाय एवं भैंस की उन्नत दुधारू नस्लें जैसे-साहीवाल, गिर, जर्सी तथा मुर्रा, भदावरी आदि अधिक मात्रा में दूध प्रदान करती हैं। इससे किसान ज्यादा मात्रा में दूध बेचकर अधिक मुनाफा कमा सकते हैं।

मछली पालन

मछली पालन का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि इससे आय में वृद्धि होती है। सरकार मछली पालन के लिए 70-80 प्रतिशत

मछली पालन

अनुदान भी प्रदान करती है। मछली पालन के लिए तालाब का होना बहुत आवश्यक है। इसमें जल संचय होता है, जिसका उपयोग मछली उत्पादन के अलावा पानी की कमी के दौरान फसल की सिंचाई में भी किया जा सकता है। मछली की अच्छी पैदावार के लिए तालाब में कतला, रोहू एवं मृगल का प्रयोग किया जाता है।

समन्वित कृषि प्रणाली के अंतर्गत मछली पालन में मछली के आहार की जरूरत बत्तख एवं मुर्गी के मलमूत्र द्वारा पूरी की जा सकती है। इससे उनको बाहरी आहार देने की जरूरत नहीं पड़ती एवं किसान की लागत को भी कम करती है। तालाब में मछली उत्पादन के अलावा सिंघाड़ा और कमल की खेती भी कर सकते हैं।

बत्तख पालन

मछली पालन के साथ-साथ बत्तख का भी पालन किया जा सकता है। जब यह पानी में रहती है, तब पानी में नाइट्रोजन एवं ऑक्सीजन की आपूर्ति होती है। बत्तख के

चारदीवारी पर बहुउद्देशीय बेलदार एवं झाड़ीदार सेम

सेम एक उपयोगी दलहनी फसल है। इसकी फलियां, बीज, जड़ें, फूल और पत्तियां सभी खाद्य रूप में उपयोग की जाती हैं। इसकी कोमल फलियों में प्रोटीन की मात्रा लगभग 2.4 ग्राम प्रति 100 ग्राम पायी जाती हैं। साथ ही खनिज और विटामिन भी इसमें प्रचुर मात्रा में उपस्थित रहते हैं। सेम में एंटीआक्सीडेंट के गुण भी पाए जाते हैं, जो मानक स्वास्थ्य के लिए लाभदायक हैं। सेम की उन्नत प्रजातियां जैसे-पूसा अर्ली प्रौलिफिक, पूसा सेम-3, पूसा सेम-2, कल्याणपुर टाइप 1, कल्याणपुर टाइप 2, सेलेक्शन-21, डब्ल्यूबीसी-2, रजनी, एचडी-1, एचडी-26, एचए-3, डीबी-1, डीबी-18, जेडीएल-53, जेडीएल-85 और सेलेक्शन 71 की खेती करके अच्छी उपज ली जा सकती है।

मलमूत्र से फाइटोप्लांकटन (सजीव सैवाल) एवं जूप्लांकटन (सूक्ष्म जीव) का निर्माण होता है, जो मछलियों के आहार के रूप में काम आता है। यह मछलीपालन की लागत को भी कम करता है। पालन हेतु बत्तख की प्रमुख प्रजातियां खाकी कैम्बेल, भारतीय धावक, सफेद पेकिन, मुस्कोवी हैं।

मधुमक्खी पालन

किसान मधुमक्खी पालन कर अपनी आय को बढ़ा सकते हैं। मधुमक्खी से शहद एवं मोम के अतिरिक्त अन्य उत्पाद जैसे-गोंद (प्रोपोलिस, रॉयल जेली, डंक विष) भी प्राप्त होते हैं। इस प्रणाली के अन्तर्गत 1 हैक्टर भूमि में 4 बॉक्स रखे जा सकते हैं तथा मधुमक्खी पालन के लिए विदेशी मधुमक्खी जैसे-ऐपिस मेलीफेरा, ऐपिस इंडिका, ऐपिस फ्लोरिया और ऐपिस डोरसाला आदि का पालन कर सकते हैं।

ऐपिस मेलीफेरा सबसे ज्यादा शहद देने वाली एवं अण्डे देने वाली मधुमक्खी है। बॉक्स को साफ सफाई वाली जगह रखना चाहिए, ताकि उन पर किसी बाह्य रोग का संक्रमन हो। एक बॉक्स की कीमत लगभग 5500 होती है, जिसमें 10 फ्रेम होते हैं। एक फ्रेम में 250-300 मधुमक्खियां होती हैं। एक फ्रेम से 200 ग्राम शहद प्राप्त होता है। इस तरह एक बार में एक बॉक्स से 2 कि.ग्रा. शहद प्राप्त होता है। लगभग 10-15 दिनों में एक बार शहद निकलने हेतु तैयार हो जाता है। इस तरह किसान एक महीने में 4 कि.ग्रा. शहद प्राप्त कर सकते हैं तथा बाजार में बेचकर अच्छा मुनाफा कमा सकते हैं।

वर्मीकम्पोस्ट

वर्मीकम्पोस्ट एवं जीवांश खादों को रासायनिक उर्वरकों के विकल्प के रूप में सस्ता और पर्यावरण की दृष्टि से उपयुक्त पाया गया है। जीवांश खादों को पशुओं के मूत्र एवं गोबर, कृषि अपशिष्ट, अनाज की भूसी, राख, फसलों एवं फलों के अवशेष इत्यादि को सड़ाने-गलाने में प्राथमिक योगदान केंचुओं का होने के कारण इन्हें किसान का मित्र भी कहा जाता है। केंचुए जैविक उत्पादों का आहार करते हैं और मल के रूप में केंचुआ खाद (वर्मीकम्पोस्ट) प्रदान करते हैं। यह जैविक एवं जीवांश खादों की सूची में महत्वपूर्ण खाद है। वर्मीकम्पोस्ट के निर्माण में केंचुओं की प्रजातियां जैसे-आइसीनिया फीटिडा, यूडिलस, यूजेनी तथा पेरियोनिक्स एकस्केवेटस प्रमुख हैं।

सतत उत्पादन एवं आर्थिक सुधार

देश के 86 प्रतिशत किसान, जिनकी जोत 2 हैक्टर से कम है, उनकी घरेलू आवश्यकताओं तथा आय मे निरंतर वृद्धि को ध्यान में रखते हुए पूसा संस्थान, नई दिल्ली ने समन्वित कृषि प्रणाली को एक मॉडल के रूप में विकसित किया है। इसमें फसल उत्पादन, बागवानी, कृषिवानिकी के साथ-साथ, दुग्ध उत्पादन, मुर्गीपालन, बत्तख पालन, मछली पालन और मधुमक्खी पालन आदि शामिल

कृषिवानिकी

कृषिवानिकी प्रणाली के अंतर्गत लगाये गए वृक्ष वायुमंडल को स्वच्छ बनाने में मदद करते हैं। ये वृक्ष वायुमंडल में फैली प्रदूषित एवं हानिकारक गैसों की मात्रा को कम करके पर्यावरण संतुलन को बनाये रखते हैं। इसके साथ-साथ वृक्ष मृदा का कटाव (मृदा अपरदन) को भी रोकते हैं। ये मृदा की उर्वराशक्ति को बढ़ाने एवं बनाए रखने में भी मददगार साबित हुए हैं। सहजन या ड्रमस्टिक प्लांट (मोरिंगा ओलिफेरा) भारतीय मूल का मोरिंगेसी परिवार का सदस्य है। सामान्यत: यह एक बहुवार्षिक, कमजोर तना और छोटी-छोटी पत्तियों वाला लगभग दस मीटर से भी ऊंचा पौधा है। यह कमजोर भूमि पर भी बिना सिंचाई के वर्षभर हरा-भरा और तेजी से बढ़ने वाला पौधा है। हाल के दिनों में सहजन का वर्ष में दो बार फलने वाला वार्षिक प्रभेद तैयार किया गया है। यह न सिर्फ उच्च उत्पादन देता है, बल्कि प्रोटीन, लवण, आयरन, विटामिन 'बी' और विटामिन 'सी' से भरपूर है। सहजन की वर्ष में दो बार फलने वाले उन्नत प्रजातियों में पी.के.एम.1, पी.के.एम. 2, कोएंबटूर 1 तथा कोयंबटूर 2 प्रमुख हैं।

पर्यावरण संरक्षण में अहम कृषिवानिकी

मधुमक्खी पालन

सारणी 1. उत्तर भारतीय परिस्थितियों के लिए आर्थिक विश्लेषण (प्रति हैक्टर/2.5 एकड़)

उद्यम/घटक	क्षेत्र प्रति इकाई	सकल आय (रुपये)	उत्पादन लागत (रुपये)	शुद्ध आय	रोजगार दिवस
फसल उत्पादन	0.7 हैक्टर	259336.0	118754.0	140582.0	150
दुग्ध उत्पादन	3 गाय (70 मी.)	575632.0	385682.0	189970.0	365
बत्तख पालन	35 पक्षी	57500.0	30432.0	27068.0	26
मत्स्य पालन	0.1 हैक्टर	81524.0	56385.0	35159.0	26
मुर्गीपालन	50 पक्षी	62455.0	36452.0	26003.0	26
फल उत्पादन	0.05 हैक्टर	18452.0	10255.0	8197.0	15
कृषिवानिकी	120 मीटर	4954	1536.0	3418.0	03
गोबर संचालित बायोगैस (केवीआईसी मॉडल)	50 मीटर	7452.0	3365.0	4087.0	12
चारदीवारी पर सेम उत्पादन फसल	0.03 हैक्टर	8458.0	2153.0	6305.0	05
कुल आय	1.0 हैक्टर	1085763.0	644974.0	440789.0	628

बागवानी

बागवानी फसलें खाद्य एवं पोषण सुरक्षा, ग्रामीण रोजगार पारिस्थितिकीय संतुलन तथा प्रसंस्करण उद्योग को कच्चा उत्पाद प्रदान करने में अहम भूमिका निभाती हैं। आर्थिक लाभ अर्जित करने एवं वैज्ञानिक ढंग से बागवानी करने के लिए उन्नत तकनीकें अपनाना आवश्यक है। समन्वित कृषि प्रणाली के 1.0 हैक्टर क्षेत्रफल में से 0.05 हैक्टर भाग में भाकृअनुप एवं कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा अनुमोदित बागवानी की नई तकनीकों एवं उन्नत प्रजातियों को शामिल किया जा सकता है। इनमें प्रमुख हैं-आम (पूसा श्रेष्ठ, पूसा प्रतिभा, पूसा लालिमा, पूसा पीताम्बर, पूसा अरुणिमा, आम्रपाली, दशहरी तथा अरुणिका), **अमरूद** (इलाहाबादी सफेदा, हिसार सफेदा, लखनऊ-49, ललित, श्वेता, अर्का मृदुला, अर्का अमूल्या, अर्का किरण, हिसार सुर्खा, रेड फ्लेस्ड, नासिक धारदार), **किन्नू** (पीएयू किन्नू-1, डेजी), **केला** (पूवन, चम्पा, अमृत सागर, बसराई ड्वार्फ, सफेद बेलची, लाल बेलची, हरी छाल, मालभोग, मोहनभोग, रोबस्टा और सब्जी प्रयोजनों के लिए मंथन, हजारा, अमृतमान, चम्पा, काबुली, बम्बई, हरी छाल, मुठिया, कैम्पियरगंज तथा रामकेला), **कटहल** (एनजे-1, एनजे-2, एनजे-3, एनजे-15, स्वर्ण मनोहर, स्वर्ण पूर्ति, रसदार, खजवा, सिंगापुरी, गुलाबी, रुद्राक्षी), **नीबू** (पूसा उदित, पूसा अभिनव, कागजी प्रामलिनी, विक्रम, चक्रधर, पीकेएम 1, चयन 49, सीडलेस लाइम, ताहिती स्वीट लाइम: मिथाचिक्रा, मिथोत्र लिंबा: यूरेका, लिस्बन, लखनऊ बीडलेस)। इन फसलों की उन्नत प्रजातियों एवं तकनीकों की जानकारी को सरल और सहज भाषा में किसानों तथा फसल उत्पादकों तक पहुंचाना अत्यंत आवश्यक है, ताकि वे इनको लाभ उठाकर उत्पादन, गुणवत्ता और आय-तीनों में वृद्धि कर सकें।

कुक्कुट पालन

मुर्गीपालन एक उभरता हुआ व्यवसाय है। यह किसानों को रोजगार पोषण और अच्छी आमदनी प्रदान करता है। इससे गरीबी उन्मूलन और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती है एवं इसमें कम लागत लगाकर अच्छा मुनाफा भी कमाया जा सकता है। इसके साथ ही इनके मलमूत्र को मछलियों के आहार के रूप में प्रयोग कर सकते हैं और लागत को कम कर सकते हैं। मुर्गीपालन अधिकांशत: तालाब की सतह से ऊपर करना चाहिए, जिससे उनका मलमूत्र सीधा तालाब में गिरे एवं मछलियां उसे ग्रहण कर सकें। भारत का 80-85 प्रतिशत मुर्गीपालन लघु किसानों द्वारा किया जाता है। मुर्गीपालन के लिए मुर्गी (कुक्कुट) की प्रमुख उन्नत किस्मों में कैरी देवेन्द्र, कैरी निर्भिक, असील, कड़कनाथ, ग्रामप्रिया, वनराजा, धनराजा, श्रीनिधि, पंजाब ब्राउन, नेकेडनेक, कालाहांडी, कलिंग ब्राउन का उल्लेख किया जा सकता है।

हैं। ये एक-दूसरे पर आधारित उद्यम है। शोध परिणाम यह दर्शाते हैं कि केवल धान-गेंहू फसल प्रणाली की अपेक्षा किसान यदि समन्वित कृषि प्रणाली मॉडल अपनाएं, तो अधिक आय अर्जित कर सकते हैं।

धान-गेहूं फसल प्रणाली की अपेक्षा सीमान्त किसान (<1 हैक्टर) अन्य कृषि उद्यमों का सामंजस्य करके जैसे दुग्ध उत्पादन, मछली पालन तथा मुर्गीपालन के द्वारा अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं, जबकि छोटे कृषक (2 हैक्टर) फसल उत्पादन, बागवानी के साथ-साथ दुग्ध उत्पादन, मछली पालन एवं कृषिवानिकी द्वारा 86 प्रतिशत अधिक लाभ कमा सकता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि समन्वित कृषि प्रणाली एक ऐसा मॉडल है, जिसके द्वारा संसाधनों का समुचित उपयोग, समय का सदुपयोग तथा लागत में कमी के साथ अधिक लाभ एवं वर्षभर रोजगार प्राप्त किया जा सकता है। यह मॉडल टिकाऊ उत्पादन एवं पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाने के लिए भी उत्तम विकल्प है। इस प्रकार ऐसी प्रणाली को देश के सभी सीमान्त एवं छोटे किसानों के बीच प्रसारित करना अनिवार्य है तथा विभिन्न माध्यमों से उनको लाभान्वित करना भी जरूरी है। इससे न केवल किसान की अधिक आमदनी एवं टिकाऊ उत्पादन उपलब्ध होगा, बल्कि इससे सामाजिक एवं आर्थिक स्तर में सुधार एवं सतत आजीविका उपलब्ध हो सकेगी।

मॉडल का प्रभाव

- मिट्टी के बेहतर स्वास्थ्य के साथ-साथ संसाधनों का कुशल उपयोग।
- वर्ष भर संतुलित आहार के साथ नियमित रोजगार दिवस (628 श्रम दिवस) एवं आय (4,40,789 लाख रुपये)।
- ग्रामीण युवाओं के लाभप्रद रोजगार के लिए एक आकर्षक विकल्प।

बागवानी आधारित समन्वित कृषि प्रणाली मॉडल

राजीव कुमार सिंह, एस.एस. राठौर, प्रवीण कुमार उपाध्याय, कपिला शेखावत, आदित्य सिंह और **ऋषभ सिंह चंदेल**

"भारत में आज भी 70 प्रतिशत से अधिक ग्रामीण जनसंख्या अपने जीविकोपार्जन के लिए खेती पर निर्भर है। इसके अलावा, लगभग 86 प्रतिशत किसान सीमान्त और लघुवर्गीय श्रेणी में आते हैं। इसके बावजूद आज भी कृषि को पर्याप्त रोजगार का साधन नहीं मानते। इसका मुख्य कारण कृषि में संसाधनों का बढ़ता मूल्य, उत्पादन लागत में वृद्धि, फसल का उचित मूल्य न मिलना और दिन-प्रतिदिन बढ़ती जनसंख्या के कारण खेतों के आकार का छोटा होना है। एक तरफ, हरित क्रांति की शुरुआत से लेकर अब तक संसाधनों की कमी (श्रमिक और सिंचाई) के कारण एकल फसल प्रणाली पर अधिक ध्यान केंद्रित किया गया है। वहीं दूसरी ओर, कुछ फसलों जैसे-धान और गेहूं को ही समर्थन मूल्य मिलने के कारण किसान लगातार एक ही प्रकार के फसल उत्पादन में लगे हुए हैं। परन्तु हमारी जरूरतें-धान्य के साथ-साथ दाल, तिलहन, सब्जियां, फल-फूल, दुग्ध, मछली और अंडे आदि की पूर्ति और वर्षभर रोजगार-एकल फसल प्रणाली से पूरी नहीं की जा सकती। इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि कृषि में फसल के साथ-साथ अन्य घटकों को भी सम्मिलित किया जाए। इससे किसान को सतत आय प्राप्त होगी और विभिन्न घटकों के अवशेषों का पुनर्चक्रण संसाधनों के रूप में किया जा सकेगा, जो पर्यावरण की दृष्टि से भी लाभकारी है।"

समन्वित कृषि प्रणाली से आशय ऐसी कृषि पद्धति से है, जिसमें फसल उत्पादन, सब्जी उत्पादन, फल उत्पादन, पशु पालन, बत्तख पालन, मुर्गीपालन, वानिकी तथा मधुमक्खी पालन आदि विभिन्न घटकों को इस प्रकार समेकित किया जाता है कि वे एक-दूसरे के पूरक बन सकें। इसके माध्यम से संसाधनों की क्षमता, उत्पादकता और लाभप्रदता में वृद्धि करते हुए पर्यावरण को सुरक्षित रखा जाता है।

यह प्रणाली स्व-सम्पोषित होती है, जिसमें विभिन्न अवशेषों का चक्रीय उपयोग और जल एवं पोषक तत्वों का निरंतर प्रवाह होता रहता है। परिणामस्वरूप:

- कृषि लागत में कमी आती है
- कृषक की आय में वृद्धि होती है
- और ग्रामीण स्तर पर सतत रोजगार के अवसर उपलब्ध होते हैं।

सस्य विज्ञान संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

एकीकृत कृषि प्रणाली के घटक

एकीकृत कृषि प्रणाली में प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन और मृदा की जीवन्तता बनाए रखना शामिल है, जिससे खेत टिकाऊ बन सके। इसके अन्तर्गत निम्न घटक शामिल हैं:

- **तापमान प्रबंधनः** मृदा को आच्छादित रखना, पेड़-पौधे और बाग लगाना और खेतों की मेड़ों पर झाड़ियां उगाना।
- **मृदा प्रबंधनः** मृदा को उपजाऊ बनाए रखना, रसायनों का आवश्यकतानुसार उपयोग, फसल अपशिष्ट का पलवार के रूप में उपयोग, जैविक और जैव उर्वरकों का उपयोग, फसलों को अदला-बदली करके बोना और विविधता बनाए रखना, मृदा की जरूरत से ज्यादा जुताई न करना और मृदा को जैविक पलवार से आच्छादित रखना।
- **जल उपयोग एवं संरक्षणः** वर्षा जल संग्रहण इकाई का निर्माण कर जल को संग्रहीत करके उपयोग में लाना।
- **कृषि में आत्मनिर्भरताः** धान्य, दलहन, तिलहन एवं सब्जी बीजों का अधिक से अधिक उत्पादन, वर्मीकम्पोस्ट और खेतों के लिए कम्पोस्ट खाद तैयार करना, वनस्पतियों से खाद बनाना।
- **पॉलीहाउस में सब्जियों एवं फूलों का उत्पादनः** बेमौसमी उत्पादन के लिए वहीं सब्जियां उपयुक्त होती हैं, जिनकी बाजार में मांग अधिक हो और जो अच्छी कीमत पर बिक सकें। मैदानी क्षेत्रों में शिमला मिर्च, टमाटर, खीरा, लौकी जैसी वर्गीय सब्जियां एवं झरबेरा आदि फसलें ली जा सकती हैं। फसलों का चयन क्षेत्र के आधार पर भिन्न हो सकता है।

कृषक परिवार की जरूरतों को पूर्ण करना

परिवार की आहार, चारा, ईंधन, रेशा और उर्वरक जैसी बुनियादी जरूरतों को खेत-खलिहानों से ही टिकाऊ आधार पर अधिकतम सीमा तक पूरा करने के लिए विभिन्न घटकों में समन्वय और सृजन करना।

पॉलीहाउस में झरबेरा की खेती

अवशेषों का पुनर्चक्रण

खेती से प्राप्त होने वाले अपशिष्ट उत्पादों का पुनर्चक्रण कर विभिन्न कार्यों में उपयोग करना।

सामाजिक आवश्यकताओं के लिए वर्षभर आमदनी

बिक्री को ध्यान में रखकर पर्याप्त

सारणी 1. पांच सदस्यीय परिवार के लिए खाद्य उत्पादों की आवश्यकता एवं उपलब्धता

खाद्य पदार्थ	आवश्यकता (श्रम प्रति दिन)	आवश्यकता) कि.ग्रा. (05 व्यक्ति प्रति वर्ष)	मॉडल से उपलब्धता (कि.ग्रा. प्रति वर्ष)
धान्य	400	730	731
दाल	80	146	172
तिलहन	30	55	188
सब्जी	200	365	7191
फल	100	183	5361
प्रोटीन	60	110	120 (1486 कि.ग्रा. मशरूम प्रति वर्ष)

सारणी 2. एक एकड़ के समन्वित कृषि प्रणाली मॉडल के विभिन्न घटकों का आर्थिक विश्लेषण

फसल प्रणाली/उद्यम	शुद्ध क्षेत्रफल (मी²)	उत्पादन लागत (रुपये)	शुद्ध आय (रुपये)
बेबीकॉर्न-सब्जी मटर-पछेती गेहूं-सूरजमुखी	400	6000	18992
लौकी-पत्तागोभी-हरी प्याज-पालक	400	7720	18080
लौकी-लहसुन-कद्दू	400	6160	9440
मक्का-तोरिया-पछेती गेहूं-मूंग	180	1602	4731
भिंडी-ब्रोकोली-लोबिया	180	2538	5130
मक्का-सलाद-लोबिया	180	2304	5382
लोबिया-गेंदा-सूरजमुखी	135	1782	8703
बेबीकॉर्न-ग्लैडियोलस-मूंग	135	6797	8468
पॉलीहाउसः (ककड़ी, टमाटर, शिमला मिर्च, झरबेरा) (स्थायी लागत+परिवर्तनशील लागत)	600	186000 (105000+81000)	146250
कृषि-वानिकी प्रणालीः सब्जियों के साथ अमरूद) अनार, किन्नू, फालसा, आंवला, करौंदा एवं नीबू (स्थायी लागत+परिवर्तनशील लागत)	1300	8200	8000
मशरूम उत्पादन (स्थायी लागत+परिवर्तनशील लागत)	50	79000 (30000+49000)	33000
मधुमक्खी पालन	10 (डिब्बे)	13200	6500
कुल योग	4000	321303	272676

फल और बागवानी

फल और बागवानी का उत्पादन लेने के लिए वही फल उपयुक्त होते हैं, जिनकी बाजार में मांग अधिक हो और जो अच्छी कीमत पर बिक सकें। मैदानी क्षेत्रों में आम, अमरूद, अनार, किन्नू, पपीता, फालसा, आंवला, करौंदा, नीबू तथा अंतःफसल (सब्जियां) आदि ली जा सकती हैं। फलों का चयन क्षेत्र के आधार पर भिन्न हो सकता है।

पॉलीहाउस में खीरे की खेती

उत्पादन करना और कृषि से संबंधित मधुमक्खी पालन, मशरूम की खेती, प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन आदि गतिविधियां संचालित करके परिवार के लिए वर्षभर आमदनी सुनिश्चित करना, ताकि परिवार की सामाजिक आवश्यकताएं जैसे-स्वास्थ्य, शिक्षा और अन्य सामाजिक गतिविधियां संपन्न हो सकें।

इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा उत्तर भारतीय परिस्थितियों में रहने वाले सीमांत कृषकों के लिए एक एकड़ (0.4 हैक्टर) सिंचित भूमि पर एक समन्वित कृषि प्रणाली मॉडल विकसित किया गया है, जिसका निम्न उद्देश्य है:

- किसानों की सुरक्षित आजीविका और संतुलित पोषण सुनिश्चित करना।
- स्थिर आय और रोजगार का सृजन करना।
- मौसम के बदलते परिवेश में मृदा स्वास्थ्य और पर्यावरण को सुदृढ़ करना।

भाकृअनुप द्वारा निर्देशित विभिन्न खाद्य उत्पादों जैसे-धान्य, दलहन, तिलहन, सब्जी, फल, प्रोटीन आदि को 5 सदस्यीय परिवार की जरूरतों की दर से उत्पादन करने के लिए फसल क्षेत्रों का आवंटन किया गया है, जिसका उल्लेख सारणी-1 में किया गया है।

समन्वित कृषि प्रणाली मॉडल को बनाने में इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि किसान अपनी जरूरतों की पूर्ति के साथ-साथ अधिक से अधिक मुनाफा भी कमा सकें। इसके लिए उन फसलों का चयन किया गया है, जिनका बाजार में उचित और अधिक मूल्य मिल सके, जैसे-सब्जियों के रूप में ब्रोकोली, लेट्यूस, हरी प्याज आदि।

सीमान्त किसानों के लिए उद्यानिकी भी एक महत्वपूर्ण विकल्प है। इसमें 3-5 वर्षों के बाद निरंतर फलों से आय अर्जित की जा सकती है। इसके साथ ही, दो वृक्षों के बीच में बची जगह में अंत:फसल के रूप में सरलतापूर्वक उत्पादन किया जा सकता है।

उदाहरणार्थ, इस मॉडल में आम, अमरूद, अनार, फालसा और आंवला के बीच मौसम के अनुसार पालक, लोबिया, धनिया और प्याज जैसी फसलें ली जा रही हैं।

इस मॉडल में यह पाया गया है कि जिन किसानों के पास एक एकड़ (0.4 हैक्टर) तक भूमि है, वे विकसित समन्वित कृषि प्रणाली मॉडल को अपनाकर वर्षभर में लगभग 2.72 लाख रुपये तक शुद्ध आय अर्जित कर सकते हैं। मशरूम उत्पादन भी इस मॉडल का एक अभिन्न अंग है, जिससे लगभग 33,000 रुपये सालाना तक शुद्ध आय प्राप्त की जा सकती है।

उक्त मॉडल में यदि पॉलीहाउस में बेमौसमी फूल और सब्जियां जैसे-खीरा, टमाटर, शिमला मिर्च आदि उगाई जाएं, तो 600 मीटर क्षेत्र से लगभग 1,86,250 रुपये की अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती है। इस मॉडल में वर्षभर विभिन्न फूलों की फसलें उपलब्ध रहती हैं, इसलिए मधुमक्खियों के 10 बॉक्स रखकर लगभग 6,500 रुपये प्रतिवर्ष की अतिरिक्त आय अर्जित की जा सकती है।

समन्वित कृषि प्रणाली मॉडल के लाभ

- कृषि के अनेक उपक्रमों के समन्वित उपयोग से टिकाऊ फसल उत्पादन एवं अधिक लाभ प्राप्त होता है।
- किसानों की घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति के अतिरिक्त कृषक परिवार को संतुलित आहार एवं नियमित रोजगार उपलब्ध होता है।
- विभिन्न कृषि उपक्रमों के अवशेष, अनुपयुक्त उत्पाद एवं कार्बनिक पदार्थ के पुन: उपयोग द्वारा उर्वरकों एवं रसायनों के प्रयोग पर निर्भरता कम होती है तथा भूमि उर्वराशक्ति में सुधार होता है।
- वातावरण प्रदूषण में कमी तथा उत्पादन की गुणवत्ता में वृद्धि होती है।
- प्राकृतिक आपदाओं जैसे-सूखा एवं बाढ़ इत्यादि के प्रकोप द्वारा हानि कम होती है।
- कृषि उत्पाद का उचित मूल्य प्राप्त होता है एवं किसानों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में सुधार होता है।

मशरूम उत्पादन

व्यावसायिक तौर पर यहां लगभग दस प्रकार के मशरूम का उत्पादन किया जाता है। इनमें प्रमुखत: बटन मशरूम, शिटाके मशरूम, ऑयस्टर या ढिंगरी मशरूम, पराल मशरूम/पैडिस्ट्रा तथा दूधिया मशरूम शामिल हैं।

बटन मशरूम

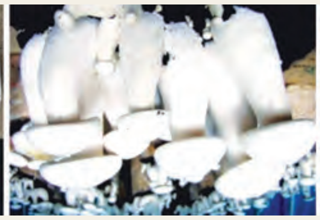

दूधिया मशरूम

ढिंगरी मशरूम

प्रत्येक मशरूम की वृद्धि के लिए तापमान की एक निश्चित सीमा होती है:

- बटन मशरूम और शिटाके मशरूम ठंडी जलवायु में उगते हैं और इनके लिए तापमान 20 डिग्री सेल्सियस से कम होना चाहिए।
- पराल, दूधिया और ऑयस्टर मशरूम की विभिन्न प्रजातियों को उगाने के लिए तापमान 20-35 डिग्री सेल्सियस होता है।

बटन मशरूम की खेती केवल शीतकालीन समय (4-5 महीनों) में की जाती है। ऐसी जलवायु में पराल मशरूम, दूधिया मशरूम और ऑयस्टर मशरूम आसानी से उगाए जा सकते हैं।

मधुमक्खी पालन

मधुमक्खी से भरे एक बक्से की कीमत लगभग पांच हजार रुपए होती है। खेती में मधुमक्खियों की विशेष भूमिका है। भूमिहीन किसानों के लिए भी मधुमक्खी पालन एक अच्छा व्यवसाय है। शहद उत्पादन के अलावा इसके कई अन्य फायदे हैं:

- फूलों की पैदावार में 30-40 प्रतिशत और तिलहन-दलहन की पैदावार में लगभग 10-20 प्रतिशत की वृद्धि होती है।
- बेहतर परागण के कारण फसलें भी एक ही समय पर पकती हैं।

इस क्षेत्र में खादी ग्रामोद्योग और कई अन्य संस्थाएं सहायता प्रदान कर रही हैं।

फसल विविधीकरण में तिलहनी फसलों की भूमिका

सुभाष बाबू[1], ऋषिराज[1], रूचिका चौधरी[2], सुदेश[1], संजय सिंह राठौर[1] और **सी.एच. श्रीनिवासराव[1]**

"भारतीय कृषि की जटिल चुनौतियों के समाधान हेतु फसल विविधीकरण को लंबे समय से एक प्रभावी नीति माना गया है। विशेष रूप से धान-गेहूं एकल फसल प्रणाली के प्रभुत्व ने मृदा उर्वरता में कमी, भूजल स्तर में कमी, पोषक तत्वों की असंतुलनता, कीट एवं रोग प्रकोप तथा पर्यावरणीय तनाव जैसी समस्याओं को जन्म दिया है। दूसरी पीढ़ी की इन चुनौतियों के साथ-साथ खाद्य तेलों की घरेलू आवश्यकता का 50 प्रतिशत से अधिक आयात पर निर्भर होना स्थिति को और गंभीर बना देता है। वर्तमान में भारत प्रतिवर्ष लगभग 140 लाख टन (लगभग 1.66 लाख करोड़ रुपये मूल्य का) खाद्य तेल आयात करता है, जो न केवल अर्थव्यवस्था पर भारी दबाव डालता है, बल्कि देश को वैश्विक बाजार की मूल्य अस्थिरताओं के प्रति भी संवेदनशील बना देता है। यह परिदृश्य तिलहनी फसलों को शामिल कर कृषि प्रणाली में विविधता लाने की आवश्यकता और प्रासंगिकता को स्पष्ट करता है, जिससे स्थिरता, लचीलापन और आत्मनिर्भरता को प्रोत्साहन मिलता है। भारतीय कृषि में तिलहन क्षेत्रफल और उत्पादन की दृष्टि से खाद्यान्नों के बाद दूसरा स्थान रखते हैं। देश में 9 प्रमुख तिलहनी फसलें-मूंगफली, तोरिया-सरसों, सोयाबीन, सूरजमुखी, तिल, कुसुम, रामतिल, अरंडी और अलसी लगभग 26-27 मिलियन हैक्टर क्षेत्र में उगाई जाती हैं, जो कुल फसल क्षेत्र का लगभग 14 प्रतिशत है। ये फसलें न केवल घरेलू उपयोग हेतु खाद्य तेल प्रदान करती हैं, बल्कि पशु आहार के लिए प्रोटीन युक्त खली, पेंट, सौंदर्य प्रसाधन, डिटर्जेंट तथा जैव-ईंधन उद्योगों के लिए भी कच्चा माल उपलब्ध करवाती हैं। इसके साथ ही, ये ग्रामीण रोजगार और किसानों की आय में भी उल्लेखनीय योगदान देती हैं।"

भारत वैश्विक स्तर पर तिलहन उत्पादन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। विश्व में देश का अरंडी, कुसुम, तिल और रामतिल उत्पादन में अग्रणी, जबकि मूंगफली में दूसरा, तथा रेपसीड-सरसों में तीसरा स्थान है। वर्ष 2022-23 में तिलहनों का रिकॉर्ड 413.5 लाख टन घरेलू उत्पादन होने के बावजूद, मांग और आपूर्ति के बीच असमानता बनी हुई है। यह स्थिति तिलहनी फसलों के साथ फसल विविधीकरण को अपनाने की आवश्यकता को और सशक्त रूप से रेखांकित करती है।

तिलहनी फसलों की फसल विविधीकरण के लिए उपयुक्तता

विविध फसल चक्र न केवल कीट एवं रोग चक्रों को तोड़ते हैं, बल्कि खरपतवार दबाव को कम करने तथा रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों पर निर्भरता घटाने में भी सहायक सिद्ध होते हैं। इससे पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा मिलता है और मृदा की दीर्घकालिक उत्पादकता बनी रहती है।

जल-दक्षता के दृष्टिकोण से भी तिलहन धान और गन्ने जैसी जल-प्रधान फसलों की तुलना में कहीं अधिक उपयुक्त हैं। इन्हें मात्र एक-तिहाई सिंचाई जल की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि ये फसलें वर्षा आधारित क्षेत्रों, लवणीय मृदा वाले भूभागों तथा जल अभावग्रस्त इलाकों के लिए विशेष रूप से अनुकूल विकल्प प्रस्तुत करती हैं।

आर्थिक दृष्टि से, तिलहनी फसलें किसानों की एकल फसल पर निर्भरता को कम करती हैं, श्रम आवश्यकताओं को पूरे वर्ष में संतुलित रूप से वितरित करती हैं और अतिरिक्त आय के अवसर प्रदान करती हैं। तिल एवं सूरजमुखी जैसी अल्पावधि तिलहन फसलें देर से वर्षा होने या मुख्य फसलों के असफल होने की स्थिति में कैच अथवा आकस्मिक फसल के रूप में सफलतापूर्वक उगाई जा सकती हैं।

इन फसलों से प्राप्त ऊर्जा-सघन तेल और प्रोटीन समृद्ध उप-उत्पाद न केवल घरेलू पोषण को सुदृढ़ बनाते हैं, बल्कि डेयरी एवं पोल्ट्री क्षेत्रों की आवश्यकताओं को भी पूरा करते हैं। इससे फसल एवं पशुधन आधारित उद्यमों का एकीकृत, स्थायी और अधिक लचीला कृषि-प्रणाली मॉडल विकसित होता है।

भारत की विविध कृषि जलवायु परिस्थितियां मौजूदा कृषि प्रणालियों में तिलहनों के एकीकरण के लिए अपार संभावनाएं प्रदान करती हैं। अतः तिलहनी फसलें फसल विविधीकरण के लिए न केवल पर्यावरणीय रूप से टिकाऊ हैं, बल्कि आर्थिक और पोषणीय दृष्टि से भी अत्यंत लाभकारी सिद्ध होती हैं।

तिलहन की खेती की बाधाएं

भारत में लगभग 76 प्रतिशत तिलहन क्षेत्र वर्षा पर निर्भर है, जिसके कारण यह फसल विशेष रूप से वर्षा की अनिश्चितता और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के प्रति संवेदनशील है। गुणवत्तापूर्ण बीजों की सीमित उपलब्धता, अकुशल विस्तार सेवाएं तथा

[1]भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली; [2]महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर

तिलहन के साथ धान-गेहूं फसल प्रणाली

पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और बिहार के कुछ हिस्सों में धान-गेहूं प्रणाली ने खाद्य सुरक्षा तो प्रदान की है, दीर्घकालिक समस्याएं भी उत्पन्न की हैं, जैसे-भूजल का ह्रास, मृदा स्वास्थ्य में गिरावट, कीटों का प्रकोप और सीमित कृषि आय।

तिलहनी फसलें, जैसे रेपसीड/सरसों, सूरजमुखी, कुसुम और अलसी, चावल-गेहूं प्रणाली में शामिल करने से कृषि-संबंधी, पर्यावरणीय और आर्थिक लाभ मिलते हैं। इस फसल प्रणाली के लिए आशाजनक विविधीकरण विकल्प निम्न हैं:

- मक्का-सरसों
- मक्का-सरसों-ग्रीष्मकालीन मूंग
- धान-सरसों
- धान-सरसों-ग्रीष्मकालीन मूंग
- धान-अलसी
- सोयाबीन-गेहूं

उन्नत फसल प्रबंधन पद्धतियों को अपर्याप्त अपनाना उत्पादकता वृद्धि में प्रमुख बाधाएं हैं। इसके अतिरिक्त, प्रसंस्करण, भंडारण और मूल्यवर्धन अवसंरचना की कमी के कारण कटाई के बाद होने वाले नुकसान उत्पादन लाभ को गंभीर रूप से कम कर देते हैं।

फसल विविधीकरण की नीतियां

तिलहनी फसलें भारत के कृषि परिदृश्य का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं, जो पोषण सुरक्षा, खाद्य तेलों की उपलब्धता और किसानों की आय में योगदान करती हैं। भूमि और जल संसाधनों पर बढ़ते दबाव के बीच, भूमि उपयोग का अनुकूलन और कृषि प्रणालियों में विविधता लाना समय की आवश्यकता बन गया है। तिलहनी फसलों को शामिल करने से उत्पादकता, स्थिरता और संसाधनों की दक्षता में उल्लेखनीय सुधार संभव है।

अंतर-फसल के माध्यम से भूमि उपयोग में वृद्धि

अनाज, दलहन और व्यावसायिक फसलों के साथ तिलहन की अंतर-फसल से भूमि और संसाधनों की जैविक दक्षता में वृद्धि होती है। यह विधि पोषक तत्वों, प्रकाश और नमी के सहक्रियात्मक उपयोग को प्रोत्साहित करती है और उत्पादन जोखिम को भी कम करती है। वैकल्पिक आय स्रोतों के सृजन के अलावा, ऐसी अंतर-फसल प्रणालियां मृदा उर्वरता के संरक्षण में भी सहायता करती हैं और वर्षा आधारित परिस्थितियों में उपज में स्थिरता प्रदान करती हैं।

गेहूं और सरसों

धान और अन्य परती भूमि का तिलहनी फसलों का उत्पादन करके उपयोग

परती भूमि में अल्पावधि तिलहनी फसलों को शामिल करके फसल गहनता बढ़ाने की अपार संभावनाएं हैं। इन फसलों के समावेश से न केवल मृदा की उर्वरता एवं स्वास्थ्य में सुधार होता है, बल्कि उत्पादकता और किसानों की आय भी बढ़ती है। कम पानी की आवश्यकता वाली अल्पावधि तिलहनी फसलें जैसे-सरसों, तोरिया, अलसी, मूंगफली, तिल और कुसुम लघु एवं सीमांत किसानों के लिए व्यावहारिक और लाभकारी विकल्प सिद्ध हो रही हैं।

धान-परती क्षेत्र मुख्यतः वर्षा आधारित कृषि-पारिस्थितिकीय तंत्रों में पाए जाते हैं, जहां गहरी जलोढ़ और तटस्थ से अम्लीय पी-एच मान वाली मृदा पाई जाती है। इन क्षेत्रों में टीआरएफए जैसी योजनाएं बिहार, पश्चिम बंगाल और छत्तीसगढ़ में तिलहनी फसलों के विस्तार को बढ़ावा दे रही हैं। अल्पावधि किस्में जैसे-सरसों, कुसुम और तिल, पूर्ववर्ती धान फसल की शेष नमी एवं सीमित सिंचाई के सहारे सफलतापूर्वक उगाई जा सकती हैं। इसी प्रकार मूंगफली की खेती ओडिशा, पश्चिम बंगाल और गुजरात के धान परती एवं नदी बेसिन क्षेत्रों में सफलतापूर्वक स्थापित हो चुकी है, जबकि तिल और सूरजमुखी की खेती पश्चिम बंगाल एवं अन्य पूर्वी राज्यों की परती भूमि में तेजी से विस्तार कर रही हैं।

पारंपरिक क्षेत्रों के अलावा विविधीकरण

तिलहन की खेती अब केवल पारंपरिक क्षेत्रों तक सीमित नहीं रही, बल्कि इसका विस्तार नए भौगोलिक क्षेत्रों और मौसमों तक हो रहा है, जिससे किसानों को अतिरिक्त आय के अवसर मिल रहे हैं। उदाहरणस्वरूप,

फसल विविधीकरण में तिलहनी फसलों से लाभ

- धान-गेहूं प्रणाली में आमतौर पर पाए जाने वाले कीट, रोग और खरपतवार के जोखिम को कम करता है।
- मृदा स्वास्थ्य में सुधार होता है। गहरी जड़ों वाली तिलहनी फसलें, जैसे-सरसों और मूंगफली, मृदा संरचना, वायु संचार और पोषक चक्र को बेहतर बनाती हैं।
- जल का कुशल उपयोग होता है। अधिकांश तिलहन को धान की तुलना में कम सिंचाई की आवश्यकता होती है।
- कम अवधि वाली फसलें, जैसे-तिल, सूरजमुखी और तोरिया, कई फसलचक्र में समाहित हो सकती हैं, जिससे भूमि उपयोग की अनुकूलता बढ़ती है।
- खाद्य तेलों की मजबूत मांग और लाभकारी कीमतों के कारण किसानों को उच्च लाभ मिलता है।
- आय के स्रोतों का विविधीकरण करके और एकल फसल पर निर्भरता घटाकर किसानों के जोखिम को कम किया जा सकता है।
- तिलहन प्रसंस्करण (पेराई, शोधन) और मूल्य श्रृंखला में रोजगार सृजन होता है।
- आयात प्रतिस्थापन के माध्यम से भारत के भारी खाद्य तेल आयात बिल को कम करने में मदद मिलती है।
- आहार विविधता में सुधार होता है। तिलहन प्रोटीन, आवश्यक वसायुक्त अम्ल, विटामिन और खनिजों से भरपूर होते हैं।
- कृषक परिवारों और समुदायों के लिए पोषण सुरक्षा को बढ़ावा देता है।
- फसल प्रणालियों में जैव विविधता बढ़ाता है।
- कम मीथेन उत्सर्जन के कारण धान की तुलना में कम कार्बन फुटप्रिंट होता है।

सूरजमुखी को अब गंगा के मैदानी क्षेत्रो में वसंत ऋतु की फसल और पश्चिम बंगाल तथा ओडिशा में रबी की फसल के रूप में सफलतापूर्वक उगाया जा रहा है।

मूंगफली उत्तर प्रदेश में रबी फसल के रूप में अपनाई जा रही है, जबकि मध्य प्रदेश, गुजरात और छत्तीसगढ़ में रबी मौसम में कुसुम की खेती को बढ़ावा मिला है। इसी तरह, सरसों का विस्तार आंध्र प्रदेश, तेलंगाना और कर्नाटक जैसे गैर पारंपरिक राज्यों तक

मूंग और सूरजमुखी

हो चुका है और सोयाबीन को भी तेलंगाना में प्रोत्साहित किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त, तेलंगाना, कर्नाटक, तमिलनाडु और हरियाणा में रबी मौसम की फसल के रूप में अरंडी का महत्व तेजी से बढ़ रहा है।

सारणी: अनाज, दलहन और व्यावसायिक फसलों के साथ उगाई जाने वाली तिलहनी फसलें

तिलहनी फसलें	अंतरफसल के साथ	राज्य
सोयाबीन	अरहर, मक्का, ज्वार, कपास, गन्ना, बागान	महाराष्ट्र, तेलंगाना, कर्नाटक
मूंगफली,	अरहर, कपास, बाजरा, लोबिया, मक्का, तिल, अरंडी, गन्ना, बागान फसलें	आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र
सरसों	चना, मसूर	राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश
कुसुम	चना, धनिया, रबी ज्वार	आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़
अलसी	गेहूं, चना	उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, महाराष्ट्र
सूरजमुखी	मूंगफली, अरहर, सोयाबीन	कर्नाटक, महाराष्ट्र
अरंडी	मूंगफली, अरहर, ग्वार, मूंग	तेलंगाना, तमिलनाडु

तिलहन विकास कार्यक्रम

भारत सरकार ने तिलहन उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए समय-समय पर अनेक योजनाएं और नीतिगत पहलें लागू की हैं। इनका विकास कालक्रम इस प्रकार है:

- **वर्ष 1966-1969:** मूंगफली का अधिकतम उत्पादन कार्यक्रम
- **वर्ष 1970-1974:** मूंगफली, अरंडी, रामतिल, रेपसीड-सरसों, सोयाबीन और सूरजमुखी पर प्रदर्शन
- **वर्ष 1974-1975:** गहन तिलहन विकास कार्यक्रम (आईओडीपी)
- **वर्ष 1985-1986:** राष्ट्रीय तिलहन विकास परियोजना (एनओडीपी)
- **वर्ष 1986:** तिलहन प्रौद्योगिकी मिशन (टीएमओ) का शुभारंभ; एनओडीपी का पुनर्गठन
- **वर्ष 1990-1991:** एनओडीपी और आईओडीपी का विलय कर तिलहन उत्पादन कार्यक्रम (ओपीपी) शुरू
- **वर्ष 2004-2014:** एकीकृत तिलहन, दलहन, पाम ऑयल और मक्का पर केंद्रित योजना (आई.एस.ओ.पी.ओ.एम.)
- **वर्ष 2012-2014:** आर.के.वी.वाई. के अंतर्गत पाम ऑयल क्षेत्र विस्तार (ओ.पी.ए.ई.)
- **वर्ष 2014-2015:** राष्ट्रीय मिशन ऑन ऑयल सीड्स एंड ऑयल पाम (एनएमओओपी), जिसमें तीन मिनी मिशन शामिल थे-एमएम-1: तिलहन, एमएम-2: पाम ऑयल, एमएम-3: वृक्षजनित तिलहन
- **वर्ष 2018-2019:** एन.एम.ओ.ओ.पी. का राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (एन.एफ.एस.एम.) में विलय, और एन.एफ.एस.एम.-तिलहन, एन.एफ.एस.एम.-पाम ऑयल, एन.एफ.एस.एम.-टी.बी.ओ. के रूप में कार्यान्वयन
- **वर्ष 2024:** राष्ट्रीय खाद्य तेल मिशन-तिलहन (एनएमईओ-तिलहन), सात वर्षो (वर्ष 2024-25 से 2030-31) के लिए 10,103 करोड़ रुपये की योजना। इसका लक्ष्य तिलहन उत्पादन को 390 से बढ़ाकर 697 लाख टन करना है। मिशन का फोकस रेपसीड-सरसों, मूंगफली, सोयाबीन, सूरजमुखी, तिल और द्वितीयक तेलों पर है। इसकी मुख्य नीतियों में उच्च उपज वाले बीज, जीनोम संपादन, चावल की परती भूमि का उपयोग, अंतर-फसल और फसल विविधीकरण शामिल हैं।

तिलहन क्षेत्र की बाधाओं को दूर करने के लिए एक सर्व-समावेशी दृष्टिकोण आवश्यक है। इसमें तकनीकी हस्तक्षेप, अनुकूल नीतियां, बुनियादी ढांचे में निवेश और किसानों की संस्थागत सुदृढ़ता शामिल हो। भविष्य में खाद्य तेलों में राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता प्राप्त करने हेतु तिलहन आधारित फसल विविधीकरण की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होगी। इसके लिए धान.परती और मक्का परती जैसे गैर पारंपरिक क्षेत्रों में तिलहन विस्तार में कुशल जल प्रणाली, अंतरफसल और क्रमिक फसल मॉडल, उन्नत बीज प्रणालियां, तथा मशीनीकरण और सूक्ष्म सिंचाई तकनीकों को बढ़ावा देना अनिवार्य है। इसके साथ ही, मूल्य संवर्धन, ब्रांडिंग और कृषि प्रसंस्करण में निवेश किसानों की लाभप्रदता को सुदृढ़ करेगा, जबकि स्थिर मूल्य विनियमन और प्रभावी खरीद व्यवस्थाएं लघु किसानों को संगठित मूल्य श्रृंखला से जोड़ने में मदद करेंगी।

किसानों को क्षमता निर्माण और प्रौद्योगिकी अपनाने को प्रोत्साहित करने के लिए किसान क्षेत्रीय विद्यालयों, विस्तार कार्यक्रमों और डिजिटल प्लेटफॉर्मों की भूमिका निर्णायक होगी। यदि वैज्ञानिक अनुसंधान, नीतिगत पहलों और किसानों की सक्रिय भागीदारी को एक साथ जोड़ा जाए, तो तिलहन आधारित विविधीकरण न केवल उच्च उत्पादन और बेहतर पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करेगा, बल्कि आयात पर निर्भरता को कम करते हुए एक पारिस्थितिक रूप से टिकाऊ कृषि प्रणाली की नींव भी रखेगा।

दलहन उत्पादकता वृद्धि से आत्मनिर्भरता

नरेंद्र कुमार, मोहम्मद हाशिम, आदर्श कुमार, मनमोहन देव और **सी.पी. नाथ**

"भारत विश्व की सबसे बड़ी जनसंख्या वाला देश है और यहां खाद्य एवं पोषण सुरक्षा एक महत्वपूर्ण चुनौती बनती जा रही है। बीते दशकों में देश ने अनाज उत्पादन में आत्मनिर्भरता हासिल कर ली है, जिससे कैलोरी उपलब्धता बढ़ी है। किंतु शरीर के विकास, प्रतिरक्षा और मानसिक स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त एवं गुणवत्तापूर्ण प्रोटीन की उपलब्धता अति आवश्यक है। प्रोटीन सुरक्षा केवल प्रोटीन की मात्रा तक सीमित नहीं है, बल्कि उसके स्रोत, गुणवत्ता, पोषण संतुलन और सबके लिए समान पहुंच को भी समाहित करता है। देश में प्रोटीन सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए दलहन एक प्रमुख खाद्य समूह है। यह न केवल प्रोटीन उपलब्ध करवाता है, बल्कि पोषण सुरक्षा, मृदा की उर्वरता, जलवायु सहनशीलता और किसानों की आय वृद्धि में भी योगदान देता है। दलहन केवल प्रोटीन ही नहीं, बल्कि रेशा (फाइबर), प्रतिरोधी स्टार्च, सूक्ष्म पोषक तत्व (आयरन, जिंक, फोलेट) तथा हृदय और चयापचय स्वास्थ्य से जुड़े जैव-सक्रिय यौगिक भी प्रदान करते हैं, जो इन्हें स्वस्थ आहार और टिकाऊ कृषि-पर्यावरणीय प्रणालियों की धुरी बनाते हैं।"

वर्तमान में भारत में प्रोटीन की खपत अनुशंसित स्तर से कम है, जिसके कारण कुपोषण और पोषण संबंधी असंतुलन की समस्या बनी हुई है। ऐसी स्थिति में दलहन उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि न केवल आत्मनिर्भरता की दिशा में सहायक होगी बल्कि भारत को वैश्विक स्तर पर प्रोटीन सुरक्षा में एक अग्रणी राष्ट्र के रूप में स्थापित कर सकती है।

हालांकि, प्रोटीन सुरक्षा के लिए एक प्रणालीगत दृष्टिकोण आवश्यक है। इसमें उपज स्थिरता और अनुकूलता हेतु उन्नत किस्मों का विकास, उन्नत बीज, बेहतर कृषि तकनीक एवं मशीनीकरण द्वारा उत्पादन अंतर को पाटना, सिंचाई और विस्तार सेवाओं में निवेश, मूल्य एवं जोखिम प्रबंधन, कटाई उपरांत हानि में कमी, तथा ऐसी मांग-आधारित नीतियां शामिल हों जो उपभोक्ताओं को पोषण-समृद्ध खाद्य उत्पादों, विशेषकर दलहनों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करें।

भाकृअनुप-भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर-208024 (उत्तर प्रदेश)

प्रोटीन सुरक्षा में दलहन का महत्व

दालें न केवल उच्च गुणवत्ता का प्रोटीन प्रदान करती हैं, बल्कि इनमें आवश्यक अमीनो अम्ल, रेशा, खनिज और सूक्ष्म पोषक तत्व भी प्रचुर मात्रा में होते हैं। दालों में सामान्यतः 21-28 प्रतिशत तक प्रोटीन पाया जाता है, जो अनाजों से कहीं अधिक है। इनमें लाइसिन प्रचुर मात्रा में पाया जाता है, जो अनाजों के साथ मिलकर सम्पूर्ण प्रोटीन उपलब्ध करवाता है तथा अनाजों में पाए जाने वाले मेथियोनीन को संतुलित करता है। इससे दोनों को साथ खाने पर आहारिक प्रोटीन की गुणवत्ता बेहतर होती है। प्रोटीन के अतिरिक्त दलहन में आयरन, जिंक, कैल्शियम, फाइबर और सूक्ष्म पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं (सारणी-1)। इन मानकों से स्पष्ट है कि

सस्ती और सुलभ दालें, भारतीय जनसंख्या के आहार नियोजन में प्रोटीन सुरक्षा सुनिश्चित करने का सबसे प्रमुख साधन हैं।

देश में दालों की अनुमानित मांग और उत्पादन

वर्ष 2019-20 में जहां दलहन उत्पादन लगभग 24 मिलियन टन रहा, वहीं मांग लगभग 26 मिलियन टन थी। वर्ष 2030-31 तक उत्पादन बढ़कर लगभग 32 मिलियन टन और मांग लगभग 35 मिलियन टन तक पहुंचने का अनुमान है। वर्ष 2047-48 में उत्पादन लगभग 48 मिलियन टन और मांग लगभग 50 मिलियन टन आंकी गई है। यह प्रवृत्ति दर्शाती है कि दलहन उत्पादन में निरंतर सुधार हो रहा है, किंतु पूर्ण आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए सतत प्रयास आवश्यक हैं।

दलहन उत्पादन में चुनौतियां

भारत विश्व का सबसे बड़ा दलहन उत्पादक और उपभोक्ता होने के बावजूद, प्रति हैक्टर उत्पादकता संभावित स्तर से काफी पीछे है। देश में दलहन उत्पादन में अनेक बाधाएं हैं, जिसके कारण आत्मनिर्भरता प्राप्त करना कठिन रहा है। प्रमुख चुनौतियां इस प्रकार हैं:

कम उत्पादकता

दलहनों की आनुवंशिक उपज क्षमता कम है तथा औसत उत्पादकता विश्व की दलहन उत्पादकता से कम है। कीट/रोग, जलवायु प्रतिकूलताओं और जंगली पशुओं जैसे नीलगाय जैसी समस्याओं के कारण फसल विफलता एवं उपज अस्थिरता बनी रहती है।

वर्षा पर निर्भरता

भारत में लगभग 70 प्रतिशत दलहनी फसलें वर्षा-आधारित (बारानी) क्षेत्रों में होती हैं। असमान, अल्प या अनियमित वर्षा के कारण अंकुरण, फूल आने और दाना भरने की अवस्थाओं में उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

मृदा उर्वरता, असंतुलित पोषण और असंगठित जोत

दलहन उत्पादन में मृदा का क्षय, असंतुलित पोषक तत्वों (जैसे-बोरॉन, जिंक, मॉलिब्डनम) की कमी और कार्बनिक उत्पादों का अभाव उत्पादन सीमित करते हैं। भूमि क्षरण और घटती जैविक उर्वरता से उत्पादकता में कमी रही है।

मसूर एवं अलसी की अंत:फसल प्रणाली

सारणी 1. दालों का पोषण मान (प्रति 100 ग्राम)

दलहनी फसल	ऊर्जा (कि. कैलोरी)	प्रोटीन (ग्राम)	वसा (ग्राम)	कार्बोहाइड्रेट (ग्राम)	कुल आहारीय फाइबर (प्रतिशत)
चना	368	21.0	5.7	61	22.7
अरहर	342	21.7	1.49	62	15.5
उड़द	347	24.0	1.6	63.4	16.2
मूंग	345	25.0	1.1	62.6	16.3
मसूर	346	27.2	1.0	60	11.5
मटर	345	25.1	0.8	61.8	13.4
राजमा	345	23.0	1.3	62.7	17.7
लोबिया	346	28.0	0.3	63.4	18.2
कुल्थी	321	23.6	2.3	59.1	15.0
मोठबीन	330	24.0	1.5	61.9	..

कीट एवं रोग समस्या

दलहनी फसलें विभिन्न कीट एवं रोगों से गंभीर रूप से प्रभावित होती हैं। जैसे-चने में हेलिकोवर्पा, अरहर में उकठा रोग, उड़द और मूंग की फसलों में पीला मोजैक वायरस तेजी से फैलकर पूरी फसल को नष्ट कर सकता है, जिसके परिणामस्वरूप उत्पादकता में काफी हानि होती है। भंडारण के दौरान दालों को विशेष रूप से भृंग नामक कीट भारी नुकसान पहुंचाते हैं।

उन्नत बीज की कमी तथा किस्मों का प्रसार

हाल के वर्षों में दलहनी फसलों के लिए उन्नत, उच्च उत्पादक एवं विभिन्न जैविक एवं अजैविक तनावों को सहन करने वाली किस्मों के विकास में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। परन्तु समय पर बीज की आपूर्ति न होना तथा इसके साथ ही किसानों में जागरूकता और तकनीकी जानकारी का अभाव भी इन किस्मों के व्यापक स्तर पर अपनाने में बाधा उत्पन्न करता है।

किसानों की प्राथमिकता

अधिकांश किसान अपनी आय को अधिकतम करने के उद्देश्य से फसल चयन में आर्थिक दृष्टिकोण को प्राथमिकता देते हैं। इसी कारण वे दलहनों की अपेक्षा गेहूं, धान या अन्य नकदी फसलों की ओर अधिक झुकाव रखते हैं। नकदी और खाद्य फसलों को प्राथमिकता मिलने से दलहन पीछे रह जाती हैं। इसके अतिरिक्त, गेहूं और धान जैसी मुख्य अनाज फसलें न्यूनतम समर्थन मूल्य पर आसानी से बिक जाती हैं। परिणामस्वरूप, दलहनी फसलें अक्सर किसानों की प्राथमिक फसलों की सूची से पीछे छूट जाती हैं।

प्रोटीन की आवश्यकता और वर्तमान स्थिति

भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद के अनुसार, एक सामान्य वयस्क व्यक्ति को प्रतिदिन अपने शरीर के भार के प्रति कि.ग्रा. पर लगभग 0.8 से 1.0 ग्राम प्रोटीन की आवश्यकता होती है। भारत में वर्तमान में औसतन प्रति व्यक्ति प्रोटीन खपत लगभग 50-55 ग्राम प्रतिदिन आंकी गई है। यह मात्रा विकसित देशों की तुलना में काफी कम है, जहां औसत खपत 70-90 ग्राम प्रतिदिन तक है। ग्रामीण और आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों में प्रोटीन की उपलब्धता और गुणवत्ता दोनों ही अपर्याप्त हैं। इसके परिणामस्वरूप बच्चों में कुपोषण और वृद्धि अवरोध तथा महिलाओं में एनीमिया जैसी गंभीर समस्याएं व्यापक रूप से देखी जाती हैं। अत: भारत में प्रोटीन सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए पौष्टिक आहार की उपलब्धता और जागरूकता दोनों को बढ़ाना अति आवश्यक है।

बाजार और मूल्य अस्थिरता

दलहन की कीमतों में भारी उतार-चढ़ाव किसानों के लिए अनिश्चितता उत्पन्न करता है। दलहनी फसलें अक्सर तेजी और मंदी के दौर से गुजरती हैं। इससे क्षेत्र विस्तार और तकनीकी निवेश हतोत्साहित होते हैं।

मशीनीकरण और श्रम-दोहन

दलहन उत्पादन में मशीनीकरण की कमी एक बड़ी चुनौती बनी हुई है। छोटे और बिखरे हुए खेतों के कारण बुआई, कटाई एवं गहाई के लिए उपयुक्त कृषि यंत्रों का उपयोग सीमित रहता है तथा दलहन की अधिकांश खेती हाथ से होती है। इस वजह से श्रम पर अत्यधिक निर्भरता बनी रहती है। इससे लागत बढ़ जाती है और कटाई-पश्चात ह्रास भी अधिक हो जाता है।

भंडारण और प्रसंस्करण अवसंरचना की कमी

दलहनी फसलों की कटाई के बाद भंडारण और प्रसंस्करण सुविधाओं की समुचित व्यवस्था न होने के कारण किसानों को हानि उठानी पड़ती है। आर्द्र मानसून के दौरान पर्याप्त भंडारण, प्रसंस्करण ढांचे और किसान उत्पादक समूहों की कमी से हानि अधिक होती है और परिणामस्वरूप गुणवत्ता प्रभावित होती है।

दलहन उत्पादन को सुदृढ़ बनाने के लिए तकनीकी नवाचार

दलहन उत्पादन बढ़ाने के लिए एक बहुआयामी दृष्टिकोण आवश्यक है। इसमें तकनीकी, संस्थागत और नीतिगत उपाय शामिल हों। आनुवंशिकी×कृषि-प्रबंधन× सेवाओं का एक सुसंगठित पैकेज अपनाने से दलहन उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। इसके साथ ही फसल की सहनशीलता और लचीलापन भी सुदृढ़ किया जा सकता है।

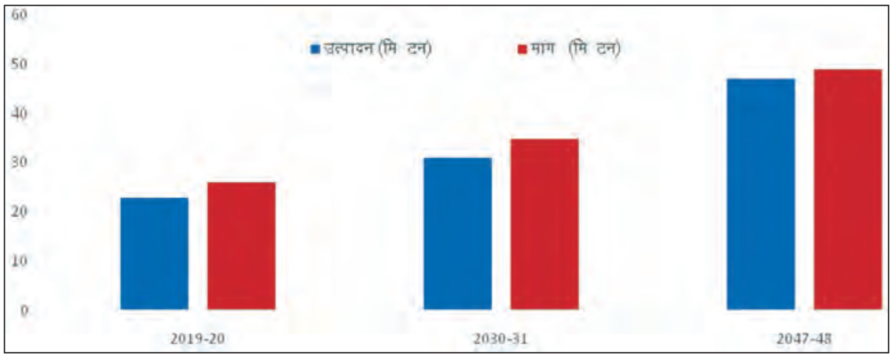

देश में दालों की अनुमानित मांग और उत्पादन

आनुवंशिक प्रगति, उन्नत तथा सहनशील किस्मों का विकास

भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर-प्रजनन कार्यक्रम ने उच्च उत्पादकता क्षमता, शीघ्र परिपक्वता तथा प्रमुख प्रतिकूलताओं के प्रति सहनशीलता वाली किस्मों की एक सशक्त शृंखला विकसित की है। हाल के वर्षों में अल्पावधि, सूखा सहनशील, रोग-प्रतिरोधी और उच्च उपज देने वाली किस्मों का विकास किया गया है।

फसल विविधीकरण और अंत:फसल प्रणाली

फसल विविधीकरण और अंत:फसल प्रणाली अपनाने से मृदा की संरचना और पोषक तत्वों का संतुलन सुधरता है। पूर्वी भारत के धान-परती क्षेत्रों में, शीघ्र पकने वाली किस्में और अवशिष्ट मृदा नमी के उपयोग से रबी दलहनों की खेती संभव है, जिससे बिना अधिक सिंचाई की आवश्यकता के अतिरिक्त उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

एकीकृत फसल एवं कीट प्रबंधन

जलवायु-स्मार्ट कृषि पद्धतियां जैसे-टर्मिनल हीट से बचाव हेतु समय से बुआई, सीडड्रिल के माध्यम से अनुकूल पौध संख्या की स्थापना, तथा मल्चिंग एवं नमी संरक्षण तकनीकों का अनुप्रयोग करने से उपज में वृद्धि होती है। एकीकृत कीट प्रबंधन से रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता घटती है तथा कीटजनित क्षति में उल्लेखनीय कमी आती है।

संरक्षण कृषि पद्धति

संरक्षण कृषि पद्धतियों को अपनाने से दलहन उत्पादन में स्थिरता और वृद्धि दोनों संभव है। इसमें न्यूनतम जुताई से मृदा की संरचना सुरक्षित रहती है और नमी संरक्षण में मदद मिलती है। फसल अवशेषों का उचित प्रबंधन मृदा की उर्वरता को बनाए रखता है तथा खरपतवारों पर नियंत्रण में सहायक होता है।

यांत्रिकीकरण और फसल कटाई तकनीक

यांत्रिकीकरण के अंतर्गत आधुनिक हार्वेस्टर और थ्रेशर का उपयोग फसल प्रबंधन को अधिक कुशल बनाता है, जिससे समय की बचत होती है। इंटरकल्चर ऑपरेशन के लिए छोटे-छोटे उपकरणों को प्रयोग में लाना चाहिए, जिससे निराई में आसानी हो एवं रसायनों का प्रयोग कम हो सके। श्रम पर निर्भरता घटने से लागत कम आती है और किसानों को आर्थिक लाभ मिलता है।

डिजिटल परामर्श और बाजार जानकारी

मोबाइल आधारित परामर्श सेवाएं, जिनमें मौसम पूर्वानुमान, पोषण एवं कीट प्रबंधन से संबंधित निर्णय सहायता और बाजार संकेत शामिल हों, किसानों को खेती के कार्यों और उपज बिक्री को सही समय पर करने में मदद करती हैं। इन सेवाओं को ई-नाम प्लेटफॉर्म और किसान उत्पादक संगठनों (एफपीओ) की सामूहिक विपणन व्यवस्था से जोड़ने पर किसानों को बेहतर मूल्य प्राप्त होता है और मजबूरी में की जाने वाली उपज बिक्री की समस्या कम होती है।

भारत में प्रोटीन सुरक्षा केवल खाद्य उत्पादन की समस्या नहीं है, बल्कि यह एक सामाजिक, आर्थिक और पोषण संबंधी चुनौती भी है। भारत में प्रोटीन सुरक्षा सुनिश्चित करने और आत्मनिर्भरता की दिशा में दलहन की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। दलहन न केवल प्रोटीन का किफायती स्रोत है, बल्कि यह कृषि और पर्यावरणीय स्थिरता का भी आधार है। हालांकि उत्पादन में कई चुनौतियां व्याप्त हैं। तकनीकी नवाचार, सरकारी समर्थन और किसानों की सक्रिय भागीदारी से भारत वर्ष 2030 तक दलहन उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त कर सकता है। इस दिशा में वैज्ञानिक शोध, नीतिगत प्रोत्साहन और किसानों की जागरूकता तीनों का समन्वय आवश्यक है।

पोषक तत्व प्रबंधन

समेकित पोषण प्रबंधन में जैविक खाद, जैव उर्वरक और रासायनिक उर्वरकों का संयोजन शामिल है, जो मृदा की उर्वरता और पोषक तत्वों की दक्षता बढ़ाता है। विशेष उपायों में फॉस्फोरस घुलनशील सूक्ष्मजीव, राइजोबियम उपचार और जिंक एवं बोरॉन जैसे सूक्ष्म पोषक तत्व शामिल हैं, जो दलहन की वृद्धि और उत्पादन बढ़ाने में सहायक हैं। दलहनी फसलों में सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए राइजोबियम, फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु (पीएसबी) तथा माइकोराइजा जैसे जैव उर्वरकों का प्रयोग किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, सल्फर तथा बोरॉन की आपूर्ति उन क्षेत्रों में आवश्यक है जहां बोरॉन की कमी पाई जाती है।

खाद्य एवं पोषण सुरक्षा में बढ़ता श्री अन्न का महत्व

सी. तारा सत्यवती[1] और **महेश कुमार**[2]

"भारत ने वैश्विक खाद्य और पोषण सुरक्षा के स्थायी समाधान के रूप में श्री अन्न (मिलेट्स) को विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया। इसकी विशेषताओं को देखते हुए इसे पारंपरिक 'कदन्न' या 'मोटा अनाज' की बजाय 'श्री अन्न' नाम दिया गया, जिसका अर्थ है 'श्रेष्ठ अन्न'। ये फसलें न केवल जलवायु परिवर्तन की चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में उगाई जा सकती हैं, बल्कि ये खाद्य और पोषण सुरक्षा के साथ-साथ पशु-पक्षियों के लिए चारा और औद्योगिक उपयोगों में भी सक्षम हैं। भारत के नेतृत्व में वर्ष 2023 को अंतर्राष्ट्रीय श्री अन्न वर्ष के रूप में मनाया गया। सरकार द्वारा श्री अन्न अपनाने के लिए प्रेरित करते हैं। इस क्रम में, भारतीय श्री अन्न अनुसंधान संस्थान को वैश्विक उत्कृष्टता केंद्र के रूप में उन्नत किया गया, ताकि सतत कृषि के माध्यम से विश्व को लाभान्वित किया जा सके। जलवायु परिवर्तन, घटते संसाधन और बढ़ते तापमान की चुनौतियों से निपटने हेतु इस संस्थान को श्री अन्न और प्राचीन अनाज पर अंतर्राष्ट्रीय पहल 'महर्षि' का सचिवालय बनाया गया। यह पहल विश्वस्तरीय अनुसंधान सहयोग और सतत कृषि के प्रसार को प्रोत्साहित करेगी।"

श्री अन्न की खेती कम संसाधनों में संभव है और यह सतत कृषि का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है। ये फसलें विविध जलवायु और फसल प्रणालियों में अनुकूल हैं। जैव विविधता एवं खाद्य भंडार को समृद्ध करती हैं, जहां अन्य फसलों का उत्पादन संभव नहीं है वहां ये फसलें कम वर्षा, शुष्क और कठोर परिस्थितियों में ये उगती हैं। आदिवासी और पहाड़ी क्षेत्रों के लिए ये प्रमुख खाद्य फसलें हैं और ग्रामीण संस्कृति से गहराई से जुड़ी हुई हैं।

[1]निदेशक; [2]सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी (राजभाषा), भाकृअनुप-भारतीय श्री अन्न अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद

'महर्षि' पहल

अप्रैल वर्ष 2023 में वाराणसी में आयोजित जी20 देशों के कृषि प्रमुख वैज्ञानिकों (कृप्रवैबै) की बैठक का उद्देश्य टिकाऊ, लचीली और लाभदायक कृषि-खाद्य प्रणालियों के लिए विज्ञान-आधारित समाधान को बढ़ावा देना था। भारत ने इस बैठक में 'श्री अन्न और अन्य प्राचीन अनाज पर अंतर्राष्ट्रीय अनुसंधान पहल (महर्षि)' प्रस्तावित किया, जिसका लक्ष्य जलवायु-अनुकूल और पौष्टिक अनाजों पर अनुसंधान सहयोग और जागरूकता बढ़ाना है। यह पहल संयुक्त राष्ट्र द्वारा घोषित 'अंतर्राष्ट्रीय श्री अन्न वर्ष 2023' का पूरक है। जी20 राष्ट्रों, आमंत्रित देशों और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों ने महर्षि पहल का समर्थन करते हुए श्री अन्न को जलवायु-स्मार्ट और स्वास्थ्यवर्धक फसलें बताया। पहल का उद्देश्य अनुसंधान निष्कर्षों का प्रसार, अंतरालों की पहचान और वैश्विक सहयोग के लिए तंत्र विकसित करना है। इसके तहत आंकड़ों के आदान-प्रदान और मुफ्त जानकारी साझा करने हेतु ऑनलाइन पोर्टल बनाए जाएंगे। सभी देशों ने सहमति दी कि महर्षि सचिवालय भारतीय श्री अन्न अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद में स्थापित किया जाएगा।

जलवायु अनुकूलता और बहुपयोगिता के कारण श्री अन्न भारतीय कृषि के सतत विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

कंगनी

भारत-श्री अन्न का प्रमुख उत्पादक

वर्ष 2023-24 में भारत में लगभग 13.1 मिलियन हैक्टर क्षेत्र से लगभग 17.5 मिलियन टन श्री अन्न का उत्पादन किया गया, जो राष्ट्रीय खाद्यान्न का लगभग 5.27 प्रतिशत है। बाजरे का उत्पादन सबसे अधिक रहा (10.7 मिलियन टन), इसके बाद ज्वार (4.17 मिलियन टन), रागी (1.6 मिलियन टन) और लघु श्री अन्न (0.44 मिलियन टन)का उत्पादन हुआ। ये फसलें अनाज और चारे दोनों के लिए उगाई जाती हैं। श्री अन्न को बढ़ावा देने और इसकी अतिरिक्त मांग को पूरा करने के लिए, कृषि और किसान कल्याण विभाग ने वर्ष 2018-19 से राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन के अंतर्गत 14 राज्यों के 212 जिलों में पौष्टिक अनाज (मिलेट्स) पर एक उप-मिशन कार्यान्वित किया। भारत (एपीईडीए) ने निर्यात वर्ष 2024-25 में लगभग 1,46,000 मीट्रिक टन श्री अन्न का निर्यात किया, जिसकी कीमत 70.89 मिलियन अमेरिकी डॉलर थी।

जलवायु अनुकूल

श्री अन्न मानव जाति, विशेषकर शुष्क भूमि के सीमांत किसानों के लिए विश्वसनीय खाद्य फसलें हैं। ये फसलें जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूल हैं और कठोर परिस्थितियों में भी स्थायी उत्पादन सुनिश्चित करती हैं। कम अवधि की सी4 फसलें होने के कारण ये कम वर्षा, खराब मृदा, ऊंचाई भिन्नताओं और सीमित संसाधनों में भी अच्छी उपज देती हैं। बाजरा, ज्वार, रागी, कोदो, कंगनी और सावां जैसी फसलें 200-600 मि.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगती हैं।

सूखा, गर्मी और लवणता के प्रति सहिष्णु ये फसलें पानी और पोषक तत्वों का कुशल उपयोग करती हैं और जलवायु परिवर्तन की परिस्थितियों में खाद्य सुरक्षा का विश्वसनीय स्रोत हैं।

ज्वार

जैविक और पर्यावरण अनुकूल

श्री अन्न फसलें कीटों के आक्रमणों से अत्यधिक प्रतिरोधी और पर्यावरण अनुकूल हैं। इन्हें उगाने के लिए न्यूनतम पानी, रसायन और प्रबंधन की आवश्यकता होती है। मिश्रित फसल प्रणाली में ये पंक्तियां फलीदार फसलों की सुरक्षा में सहायक होती हैं।

ये फसलें सीमांत भूमि और कठोर जलवायु में भी उगती हैं, जहां अन्य फसलें असफल रहती हैं। उदाहरण के लिए, राजस्थान में बाजरा, कर्नाटक और महाराष्ट्र में ज्वार तथा कोदो, कंगनी और सावां जैसी लघु श्री अन्न फसलें कम वर्षा में भी स्थायी उपज देती हैं। जलवायु लचीलापन और कम लागत के कारण, श्री अन्न आज भी धान-गेहूं के प्रभुत्व वाले क्षेत्रों में अपनी महता बनाए हुए हैं।

खाद्य सुरक्षा से पोषण सुरक्षा

राष्ट्रीय श्री अन्न वर्ष 2018 के दौरान, विश्व में पहली बार भाकृअनुप-अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान कार्यक्रम ने खाद्य सुरक्षा के साथ-साथ पोषण सुरक्षा की दिशा में ऐतिहासिक कदम उठाया। बाजरे के संवर्धन मानदंड, कृष्य-किस्म/किस्म पहचान और लोकार्पण नीति में सूक्ष्म पोषक तत्वों (आयरन: 42 पीपीएम, जिंक: 32 पीपीएम) के मानक स्तर प्रस्तुत किए गए।

इसके बाद, बाजरे का सेवन करने वाले ग्रामीण और शहरी लोगों के लिए पोषण सुरक्षा बढ़ाने हेतु देश में 35 बाजरा संकर किस्में लोकार्पित की गई, जिनमें आयरन और जिंक के मानक स्तर से अधिक या उसके बराबर पोषण गुण सुनिश्चित किए गए।

श्री अन्न अंतर्राष्ट्रीय वर्ष-2023

भारत के प्रस्ताव के आधार पर, संयुक्त राष्ट्र महासभा (यूएनजीए) ने वर्ष 2023 को अंतर्राष्ट्रीय श्री अन्न वर्ष (आईवाईएम) के रूप में घोषित किया। इस अवसर को एक 'जन आंदोलन' बनाने और भारत को 'श्री अन्न के लिए वैश्विक हब' के रूप में स्थापित करने के प्रधानमंत्री के दृष्टिकोण के अनुरूप, केंद्र सरकार के सभी मंत्रालय/विभाग, राज्य/केंद्र शासित प्रदेश, किसान, स्टार्ट-अप, निर्यातक, खुदरा व्यवसायी और अन्य हितधारक श्री अन्न के लाभों के बारे में जागरूकता फैलाने और प्रचार में सक्रिय रहे।

जन-सामान्य तक श्री अन्न पहुंचाने और विभिन्न मंत्रालयों/विभागों की भागीदारी के माध्यम से आईवाईएम वर्ष 2023 को एक जन आंदोलन बनाने के लिए भारत सरकार ने निम्न सात सूत्र अपनाएं:

चेना

- उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि (कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय)
- पोषण और स्वास्थ्य लाभ (स्वास्थ्य मंत्रालय/भारतीय खाद्य संरक्षा एवं मानक प्राधिकरण)
- मूल्य संवर्धन, प्रसंस्करण और व्यंजन विधि विकास (खाद्य प्रसंस्करण उद्योग और पर्यटन मंत्रालय)
- उद्यमिता, स्टार्टअप और सामूहिक विकास (वाणिज्य मंत्रालय और किसान कल्याण मंत्रालय)
- ब्रांडिंग, लेबलिंग और प्रचार सहित जागरूकता निर्माण (सभी मंत्रालय)
- अंतर्राष्ट्रीय आउटरीच-(वाणिज्य मंत्रालय और विदेश मंत्रालय)
- श्री अन्न को मुख्यधारा में लाने के लिए नीतिगत हस्तक्षेप-(खाद्य और सार्वजनिक वितरण विभाग तथा कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय)

वैश्विक श्री अन्न सम्मेलन

वर्ष 2023 में नई दिल्ली स्थित पूसा के राष्ट्रीय कृषि विज्ञान परिसर में 'वैश्विक श्री अन्न सम्मेलन' का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन के अंतर्गत चार दिवसीय प्रदर्शनी-सह-क्रेता-विक्रेता बैठक आयोजित की गई। इसमें 50 से अधिक घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय खरीदार, निर्यातक, स्टार्टअप और प्रसंस्करणकर्ता शामिल हुए। सौ से अधिक स्टालों में श्री अन्न आधारित 'रेडी टू कुक' और 'रेडी टू ईट' उत्पाद प्रदर्शित किए गए, और अंतर्राष्ट्रीय शेफ्स ने पाक कला सत्र प्रस्तुत किए। इस प्रदर्शनी में किसान उत्पादक संगठन, स्वयं सहायता समूह, विद्यालय, कृषि विश्वविद्यालय, ग्राम पंचायतें, सेवा केंद्र, सहकारी संस्थान और भारतीय प्रवासी समुदाय की व्यापक भागीदारी रही।

उद्घाटन सत्र के पश्चात श्री अन्न पर मंत्रीस्तरीय गोलमेज सम्मेलन आयोजित किया गया, जिसमें गुयाना, मॉरीशस, श्रीलंका, सूडान, सूरीनाम और जाम्बिया के मंत्री तथा अन्य देशों के प्रतिनिधि शामिल हुए। सम्मेलन में

भारत सरकार और विश्व खाद्य कार्यक्रम के बीच वर्ष 2023-2027 तक सहयोग हेतु एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए गए।

श्री अन्न वैश्विक उत्कृष्टता केंद्र

भाकृअनुप-भारतीय श्री अन्न अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद को श्री अन्न में अनुसंधान एवं विकास के लिए 'श्री अन्न वैश्विक उत्कृष्टता केंद्र' के रूप में उन्नत किया गया। इस केंद्र के माध्यम से निम्न क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित करने की परिकल्पना की गई है:

- श्री अन्न के औद्योगिक उपयोग जैसे-जैव ईंधन, मल्चिंग, ब्रूइंग, फीड आदि के लिए मार्गदर्शन और समर्थन।
- वैश्विक उद्यमियों के पोषण हेतु श्री अन्न मूल्य श्रृंखला और व्यापार सुविधा।
- अंतर्राष्ट्रीय ज्ञान विनिमय और कौशल विकास हब के माध्यम से श्री अन्न अनुसंधान एवं विकास आदान-प्रदान।
- वैश्विक श्री अन्न जनन द्रव्य संवर्धन और दीर्घकालिक भंडारण सुविधा की स्थापना।
- वैश्विक फसल सुधार प्रौद्योगिकी नवाचार सुविधा।
- पोषण और खाद्य सुरक्षा के लिए अंतर्राष्ट्रीय रेफरल प्रयोगशाला का विकास।

वैश्विक आवश्यकताओं के अनुरूप प्रक्रियाओं को परिष्कृत करने के लिए अन्य देशों की विशेषज्ञता का उपयोग किया जाएगा।

श्री अन्न के उत्पादन, जागरूकता और खपत को बढ़ावा देने के लिए भारतीय श्री अन्न अनुसंधान संस्थान द्वारा 'श्री अन्न फसल कैफे' और उन्नत उत्पादन एवं मूल्य संवर्धन प्रौद्योगिकियों के प्रक्षेत्र प्रदर्शन किए जा रहे हैं। विभिन्न राज्य सरकारों जैसे-ओडिशा, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, छत्तीसगढ़ और असम ने मिलेट्स मिशन आरंभ किया है। इससे श्री अन्न की खेती, खरीद, वितरण और पीडीएस एवं मध्याह्न आहार में इसके उपयोग को प्रोत्साहित किया जा सके। भाकृअनुप-भाश्रीअनुसं, बीज निगमों और कृषि विश्वविद्यालयों ने किसानों को बीज उपलब्ध करवाए और उत्पादों का प्रदर्शन किया।

ग्रामीण आजीविका और पोषण सुरक्षा के लिए श्री अन्न को पुनर्जीवित कर खाद्य विविधता बढ़ाना आवश्यक है। इसके लिए टिकाऊ, बाजारोन्मुख प्रौद्योगिकियों का विकास, उत्पादकता वृद्धि, मूल्य संवर्धन, प्रसंस्करण और विपणन सुधार जरूरी हैं। नीति समर्थन, किसान उत्पादक संगठनों, फार्म-गेट प्रसंस्करण, विपणन मंचों और निर्यात अवसरों के माध्यम से किसानों की आय और रोजगार बढ़ाकर श्री अन्न आधारित सतत, पोषक और पर्यावरण-अनुकूल खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती है।

बाजरा

अत्यधिक पौष्टिक खाद्यान्न

श्री अन्न आज 'सुपरफूड' के रूप में उभर रहे हैं। अनेक वैज्ञानिक शोध इनके पोषण, स्वास्थ्य और जलवायु लाभों को प्रमाणित कर रहे हैं। अन्य खाद्य फसलों की तुलना में इनका पोषण प्रोफाइल अधिक समृद्ध है और ये किसानों के लिए आय बढ़ाने तथा जलवायु अनुकूल खेती के लिए श्रेष्ठ विकल्प हैं। श्री अन्न में जटिल कार्बोहाइड्रेट, आहारीय रेशा, प्रोटीन, फेनोलिक यौगिक और पादप-रसायन प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। ये आयरन, जिंक, कैल्शियम, मैग्नीशियम, नियासिन, बी$_6$ और फोलिक अम्ल के प्राकृतिक स्रोत हैं। उदाहरण के लिए, रागी कैल्शियम का उत्कृष्ट स्रोत है (300-350 मि.ग्रा./100 ग्राम), जबकि बाजरा और सावां आयरन और ऊर्जा के अच्छे स्रोत हैं। इनमें उपस्थित प्रतिऑक्सीकारक तत्व तनाव को कम कर प्रतिरक्षा प्रणाली को सशक्त बनाते हैं। कम ग्लाइसेमिक सूचकांक के कारण श्री अन्न मधुमेह, मोटापा और जीवनशैली जनित रोगों के नियंत्रण में सहायक हैं। महामारी विज्ञान अध्ययनों से भी इनके सेवन से कैंसर की घटनाओं में कमी पाई गई है। वर्तमान में शहरी और अर्द्धशहरी क्षेत्रों में श्री अन्न आधारित 'रेडी टू कुक' और 'रेडी टू ईट' उत्पादों की मांग तेजी से बढ़ रही है, जिससे इनका महत्व और भी बढ़ गया है।

रागी

धान-परती प्रणाली में पोषण एवं आजीविका हेतु सतत विविधीकरण

राघवेंद्र सिंह, मोहम्मद आरिफ, मेराज आलम अंसारी, अमृत लाल मीणा, कमलेश कुमार और **सुनील कुमार**

"भारत में धान परती भूमि का क्षेत्र अत्यंत विशाल है, जो कृषि उत्पादन, खाद्य एवं पोषण सुरक्षा के दृष्टिकोण से अपार संभावनाएं समेटे हुए है। वर्तमान में इस भूमि पर नमी की कमी, जलभराव, मृदा उर्वरता में कमी, तकनीकी ज्ञान का अभाव और विपणन से जुड़ी कठिनाइयां प्रमुख चुनौतियों के रूप में सामने हैं। धान की कटाई के बाद भूमि को खाली छोड़ देने से मृदा की उत्पादकता में निरंतर कमी आती है तथा किसानों की आय सीमित रह जाती है। इन समस्याओं के समाधान के रूप में लघु अवधि वाली दलहनी, तिलहनी, सब्जियों एवं चारा फसलों की खेती एक उपयोगी विकल्प सिद्ध हो सकती है। ये फसलें कम समय में तैयार होकर किसानों को अतिरिक्त आय, पोषण एवं मृदा उर्वरता में सुधार का अवसर प्रदान करती हैं। इसके साथ ही, फसल विविधीकरण एवं समेकित कृषि प्रणाली जैसे फसल-पशुपालन-बागवानी-मत्स्य पालन मॉडल भूमि उपयोग दक्षता बढ़ाने, मृदा स्वास्थ्य सुधारने और किसानों की आय दोगुनी करने में सहायक हो सकते हैं। सरकार द्वारा संचालित विभिन्न योजनाएं, जैसे राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन, प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना और राष्ट्रीय कृषि विकास योजना आदि, इन परती भूमि क्षेत्रों में उत्पादकता बढ़ाने के साथ-साथ किसानों को तकनीकी एवं वित्तीय सहयोग प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।"

धान देश की एक प्रमुख खाद्यान्न फसल है, जिसे खरीफ मौसम में लगभग सभी राज्यों में बोया जाता है। धान की कटाई के बाद देश के अनेक क्षेत्रों में भूमि खाली छोड़ दी जाती है, जिसे 'धान परती भूमि' कहा जाता है। यह भूमि कृषि की दृष्टि से अत्यंत मूल्यवान है। इसका उचित उपयोग कर न केवल अतिरिक्त कृषि उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है, बल्कि किसानों की आय, पोषण सुरक्षा तथा मृदा उर्वरता में भी उल्लेखनीय सुधार किया जा सकता है।

भाकृअनुप-भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान, मोदीपुरम, मेरठ-250110 (उत्तर प्रदेश)

राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन एकीकृत कृषि क्लस्टर

- ग्रामीण विकास मंत्रालय ने वर्ष 2020 में एकीकृत कृषि क्लस्टर योजना की शुरुआत की।
- यह योजना 21 राज्यों में लागू है।
- इसमें महिला स्व-सहायता समूहों और किसान उत्पादक संगठनों को जोड़ा गया है।
- किसानों को सामूहिक रूप से धान-परती क्षेत्रों में दलहन, तिलहन, सब्जी और पशुपालन आधारित मॉडल अपनाने हेतु प्रेरित किया जाता है।

वर्तमान में देश में लगभग 37.92 मिलियन हैक्टर भूमि परती है। इसमें से लगभग 86 प्रतिशत क्षेत्र रबी मौसम में और 14 प्रतिशत क्षेत्र खरीफ मौसम में बिना फसल के रह जाता है। इनमें से सबसे अधिक हिस्सा धान-परती प्रणाली से संबंधित है, जो लगभग 10.29 मिलियन हैक्टर क्षेत्र में फैला हुआ है। धान-परती क्षेत्रों का प्रभावी उपयोग करने के लिए लघु अवधि की फसलों या फसल प्रणालियों को अपनाना आवश्यक है। इन फसलों की विशेषता यह है कि ये कम समय में पककर तैयार हो जाती हैं। मृदा में उपलब्ध अवशिष्ट नमी का उपयोग कर लेती हैं तथा किसानों को आर्थिक और पोषण दोनों दृष्टियों से लाभ पहुंचाती हैं।

धान-परती क्षेत्र की वर्तमान स्थिति और प्रवृत्तियां

धान-परती क्षेत्र मुख्यत: पूर्वी भारत के छत्तीसगढ़, झारखंड, बिहार, ओडिशा, असोम और पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों में फैले हुए हैं। इन क्षेत्रों में वर्षा आधारित खेती प्रमुख है। पिछले दो दशकों में खरीफ परती का क्षेत्र लगभग 29 प्रतिशत घटा है, परंतु रबी परती का क्षेत्र 60 प्रतिशत बढ़ा है। यह दर्शाता है कि किसान खरीफ मौसम में धान तो बोते हैं, परंतु रबी में सिंचाई की कमी, तकनीकी मार्गदर्शन की अनुपलब्धता और जोखिम की वजह से भूमि खाली छोड़ देते हैं।

धान-परती प्रणाली में संभावित लघु अवधि फसलें/फसल प्रणालियां

धान-परती भूमि का सदुपयोग करने के

लिए सबसे उपयुक्त विकल्प है, लघु अवधि वाली फसलों को अपनाना। इन फसलों की खासियत यह है कि ये कम समय में तैयार हो जाती हैं, अधिक सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती और मृदा में मौजूद शेष नमी का उपयोग कर सकती हैं।

- **दलहनी फसलें:** दलहनी फसलें धान-परती क्षेत्रों के लिए अत्यंत उपयुक्त मानी जाती हैं। इनमें खेसारी, मसूर, चना और मटर प्रमुख हैं। इन फसलों को अपनाने से किसानों को दोहरा लाभ मिलता है: पहला, ये प्रोटीनयुक्त दाल उपलब्ध करवाकर पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करती हैं और दूसरा, इनकी जड़ों में मौजूद राइजोबियम जीवाणु वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर कर मृदा की उर्वरता बनाए रखती हैं।
- धान-परती में उतेरा विधि (धान की खड़ी फसल में ही अगली फसल का बीज बोना) विशेष रूप से सफल रही है। इस पद्धति में धान पकने से कुछ सप्ताह पहले ही दलहनी फसलों का बीज खेत में डाल दिया जाता है। विभिन्न अनुसंधानों से यह स्पष्ट हुआ है कि धान-उतेरा मसूर प्रणाली से लगभग 8.1 टन/हैक्टर धान समतुल्य उत्पादन दर्ज किया गया है।
- **तिलहनी फसलें:** धान-परती भूमि में तिलहनी फसलें जैसे-सरसों, सूरजमुखी, तिल और मूंगफली अत्यंत लाभकारी सिद्ध हो सकती हैं। इन फसलों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये कम अवधि में पककर तैयार हो जाती हैं और किसानों को शीघ्र आय का अवसर प्रदान करती हैं। यदि धान-परती क्षेत्रों में तिलहनी फसलों का विस्तार किया जाए, तो न केवल किसानों की आमदनी बढ़ेगी बल्कि देश खाद्य तेल आत्मनिर्भरता की दिशा में भी एक महत्वपूर्ण कदम आगे बढ़ा सकेगा।

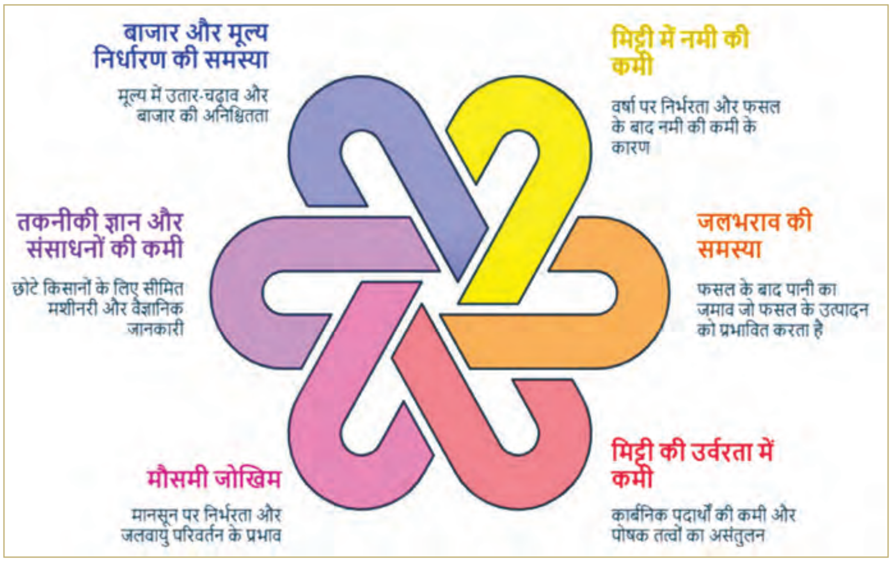

धान-परती क्षेत्रों में खेती की प्रमुख चुनौतियां

- **सब्जियां और बागवानी:** धान-परती भूमि में सब्जियों और बागवानी फसलों की खेती किसानों के लिए अत्यंत लाभकारी विकल्प है। आलू, गाजर, पत्तागोभी, भिंडी, प्याज और टमाटर जैसी फसलें धान की कटाई के बाद आसानी से उगाई जा सकती हैं। इसके अलावा, केला, अमरूद, पपीता और नीबू जैसे फलदार पौधे खेत की मेड़ों पर लगाकर किसान दीर्घकालिक आय प्राप्त कर सकते हैं।
- **चारा फसलें:** धान-परती भूमि का एक अन्य महत्वपूर्ण उपयोग चारा उत्पादन के रूप में किया जा सकता है। जई, बरसीम और नेपियर घास जैसी फसलें इन क्षेत्रों में आसानी से उगाई जा सकती हैं। चारा फसलें बोने से पशुपालन को मजबूती मिलती है और किसानों को दूध उत्पादन के माध्यम से नियमित आय प्राप्त होती है।

धान-परती क्षेत्रों में खेती की प्रमुख चुनौतियां

धान-परती भूमि का उपयोग करना आसान नहीं है। यद्यपि ये क्षेत्र कृषि उत्पादन की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, फिर भी इनके दोहन में कई प्रकार की प्राकृतिक, तकनीकी और सामाजिक-आर्थिक चुनौतियां सामने आती हैं। यदि इन चुनौतियों की सही पहचान कर ली जाए तो इनके समाधान हेतु उपयुक्त नीतियां बनाई जा सकती हैं। ये चुनौतियां निम्न प्रकार हैं:

- **मृदा में नमी की कमी:** अधिकांश धान-परती क्षेत्र वर्षा आधारित होते हैं और वहां सिंचाई की कोई स्थायी व्यवस्था उपलब्ध नहीं होती। अतः धान की कटाई के बाद खेत में जो नमी बची होती है, वह कुछ ही हफ्तों में समाप्त हो जाती है।
- **जलभराव की समस्या:** धान-परती क्षेत्रों की एक बड़ी चुनौती जलभराव भी है। धान की खेती में लंबे समय तक पानी भरकर रखा जाता है। कटाई के बाद भी कई बार खेतों की निचली सतह पर पानी जमा रहता है।
- **मृदा की उर्वरता में कमी:** लगातार भूमि को परती छोड़ने से उसमें कार्बनिक पदार्थ की मात्रा घटने लगती है।
- **तकनीकी ज्ञान और संसाधनों की कमी:** धान-परती क्षेत्रों के अधिकांश किसान छोटे और सीमांत किसान हैं। इनके पास न तो पर्याप्त मशीनरी होती है और न ही वैज्ञानिक जानकारी।
- **बाजार और मूल्य निर्धारण का जोखिम:** धान के बाद यदि किसान दलहन, तिलहन या सब्जियां बोते भी हैं, तो उनकी सबसे बड़ी चिंता रहती है-उत्पाद का बाजार और उचित मूल्य।

सरकारी योजनाएं और नीतिगत समर्थन

धान-परती भूमि का उत्पादक उपयोग सुनिश्चित करने के लिए भारत सरकार और विभिन्न राज्य सरकारों ने कई योजनाएं और नीतियां लागू की हैं। इन योजनाओं का मुख्य उद्देश्य किसानों को तकनीकी सहयोग, आर्थिक सहायता और बाजार तक पहुंच प्रदान करना है, ताकि वे परती भूमि पर भी लाभकारी खेती कर सकें:

पूर्वी भारत में धान-परती क्षेत्रों को लक्षित करना

- राष्ट्रीय कृषि विकास योजना की एक उप-योजना, जिसे वर्ष 2016-17 में शुरू किया गया।

- यह योजना पूर्वी भारत के धान-परती क्षेत्रों में दलहनी एवं तिलहनी फसलों की खेती को बढ़ावा देती है।
- इस योजना के अंतर्गत प्रति गांव 5 लाख रुपये तक की राशि समूह प्रक्षेत्र प्रदर्शनों एवं बीज तथा उपकरण जैसे कृषि उपादनों के लिए दी जाती है।

व्यापक धान-परती प्रबंधन कार्यक्रम

- ओडिशा सरकार द्वारा रबी वर्ष 2023-24 में लागू।
- इसका उद्देश्य राज्य में दलहन उत्पादन को बढ़ावा देना है, ताकि खाद्य सुरक्षा और पोषण संबंधी चुनौतियों का समाधान हो सके तथा किसानों की आय में सुधार किया जा सके।

राष्ट्रीय सतत कृषि मिशन वर्षा आधारित क्षेत्र विकास

भारत सरकार के कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय द्वारा संचालित राष्ट्रीय सतत कृषि मिशन का एक उप-अंग है वर्षा आधारित क्षेत्र विकास। इसका लक्ष्य है-वर्षा आधारित खेती को टिकाऊ और लाभकारी बनाना।

- इस योजना के अंतर्गत 1.7 मिलियन हैक्टर क्षेत्र को कवर किया गया है।
- यह योजना 16 राज्यों में लागू की गई है।
- इसमें किसानों को समेकित कृषि प्रणाली अपनाने हेतु वित्तीय सहायता और तकनीकी मार्गदर्शन दिया जाता है।

धान-परती में लघु-फसलीय प्रणाली हेतु नीतियां

धान-परती क्षेत्रों का सही उपयोग तभी संभव है जब इसके लिए वैज्ञानिक नीति अपनाई जाए। इसके लिए निम्न नीतियां अपनाई जा सकती हैं:

नीतिगत सहयोग

- धान-परती क्षेत्र में लघु-फसलीय प्रणालियों को बढ़ावा दने के लिए विशेष योजनाएं और प्रोत्साहन कार्यक्रम अवश्य किए जा सकते हैं।
- राज्य स्तर पर क्षेत्र-विशिष्ट विशिष्ट मॉडल विकसित किए जा सकते हैं जैसे पूर्वी भारत में दलहन-तिलहन आधारित प्रणाली और तटीय क्षेत्रों में मत्स्य पालन आधारित एकीकृत मॉडल।

क्षमता निर्माण और प्रशिक्षण

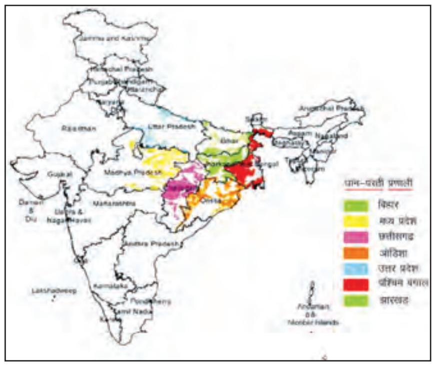

धान-परती क्षेत्रों की वर्तमान स्थिति और प्रवृत्तियां

- किसानों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम, खेत प्रदर्शन और किसान मेले आयोजित करने चाहिए।
- महिला किसानों और युवाओं को परती भूमि प्रबंधन में शामिल करना चाहिए।

अनुसंधान और विकास

- ऐसी कम अवधि वाली किस्मों का विकास करना जो धान कटाई के बाद बची हुई नमी में उगाई जा सकें।
- जलवायु-अनुकूल और रोग-प्रतिरोधी किस्में विकसित करना।

आधुनिक तकनीक का उपयोग

- मोबाइल ऐप और डिजिटल प्लेटफॉर्म से किसानों को रियल-टाइम सलाह देना।
- ड्रोन तकनीक से बीज छिड़काव और उर्वरक प्रबंधन।

बाजार प्रबंधन और मूल्य संवर्धन

- किसानों को एफपीओ और सहकारी समितियों से जोड़कर सामूहिक विपणन की सुविधा देना।
- प्रसंस्करण इकाइयां स्थापित कर मूल्य संवर्धन करना, जैसे-दाल मिल, तेल निकालने की इकाई, सब्जी प्रसंस्करण इकाई आदि।

सतत और पर्यावरणीय दृष्टिकोण

- परती भूमि में जैविक खेती, वर्मीकम्पोस्ट और पोषक तत्व पुनर्चक्रण को बढ़ावा देना।
- खेत की मेड़ों पर बहुपयोगी वृक्ष (जैसे-बांस, सहजन, नीम) लगाकर कार्बन पुनर्चक्रण और जैव विविधता संरक्षण को प्रोत्साहित करना।
- जल संरक्षण तकनीकें जैसे-रेन वॉटर हार्वेस्टिंग, जलकुंड आदि अपनाना।

सामुदायिक और क्लस्टर आधारित मॉडल

- व्यक्तिगत स्तर के बजाय सामूहिक आधारित मॉडल को बढ़ावा देना।
- इससे किसान सामूहिक रूप से संसाधन साझा कर सकते हैं, जैसे-मशीनरी, बीज और सिंचाई साधन।

धान-परती प्रणाली में संभावित समेकित कृषि प्रणाली मॉडल

धान-परती भूमि को स्थायी रूप से उत्पादक बनाने के लिए केवल एक फसल ही पर्याप्त नहीं है। इसके लिए समेकित कृषि प्रणाली सबसे प्रभावी विकल्प है। समेकित कृषि प्रणाली में फसल, पशुपालन, मत्स्य पालन, बागवानी और कृषिवानिकी को एक साथ जोड़ा जाता है। इससे भूमि का अधिकतम उपयोग होता है और किसानों को आय के अनेक स्रोत प्राप्त होते हैं:

- **जलभराव क्षेत्र में समेकित कृषि प्रणाली:** धान-परती भूमि के कुछ हिस्से अक्सर जलभराव से प्रभावित रहते हैं, जहां परंपरागत खेती सीमित हो जाती है। ऐसे क्षेत्रों में धान के साथ मछली पालन, बत्तख पालन तथा केला या अमरूद की फसलों का समावेश करके सफल मॉडल विकसित किए गए हैं। शोधों से पाया गया है कि इन प्रणालियों को अपनाने वाले किसानों को लगभग 3.14 लाख रुपये प्रतिवर्ष तक की शुद्ध आय प्राप्त हो सकती है।
- **वर्षा-आश्रित क्षेत्रों में समेकित कृषि प्रणाली:** ऐसे क्षेत्रों में धान की खेती को पशुपालन या बकरी पालन एवं धान के साथ सब्जी उत्पादन से जोड़ा जा सकता है। अध्ययन बताते हैं कि इन प्रणालियों को अपनाने वाले किसानों को लगभग 3.79 लाख रुपये प्रतिवर्ष तक की आय हुई है।
- **तटीय क्षेत्रों में समेकित कृषि प्रणाली:** तटीय क्षेत्रों की धान-परती भूमि प्रायः उच्च लवणता और जलभराव की समस्या से प्रभावित रहती है। ऐसी स्थिति में धान की खेती को झींगा या खारे पानी की मछली पालन के साथ जोड़ना किसानों के लिए अत्यधिक लाभकारी विकल्प है। इसके अतिरिक्त, नारियल और खजूर जैसे नमक सहनशील फलदार वृक्षों का समावेश इस प्रणाली को और सुदृढ़ बनाता है।
- **पहाड़ी ढलवां क्षेत्रों में समेकित कृषि प्रणाली:** इन धान-परती भूमि वाले क्षेत्रों में धान की खेती को अदरक या हल्दी जैसी मसालेदार फसलों, मत्स्य पालन तथा पशुपालन के साथ जोड़कर एक प्रभावी संयोजन विकसित किया जा सकता है। अध्ययन से पता चला है कि इस प्रणाली को अपनाने वाले किसानों को लगभग 5.55 लाख रुपये प्रतिवर्ष तक की आय प्राप्त हुई है।

संरक्षण कृषि के बुनियादी सिद्धान्त, तकनीकी लाभ एवं चुनौतियां

राकेश कुमार[1], रघुबर साहू[2], संजीव कुमार[3], प्रवीण कुमार उपाध्याय[4], राजीव कुमार सिंह[5] और **संजय सिंह राठौर[6]**

संरक्षण कृषि टिकाऊ और पर्यावरण अनुकूल खेती की प्रणाली है, जो मृदा, जल और जैव विविधता को संरक्षित रखते हुए उत्पादन को स्थिर और दीर्घकालिक बनाती है। यह न्यूनतम जुताई, फसल अवशेष प्रबंधन और फसल विविधीकरण जैसे मूलभूत सिद्धान्तों पर आधारित है। संरक्षण कृषि अपनाने से मृदा और जल का संरक्षण, लागत में कमी, उत्पादन की स्थिरता, पर्यावरण संरक्षण और कार्बन संचयन जैसे अनेक लाभ मिलते हैं। हालांकि, प्रारंभिक लागत, यंत्रों की उपलब्धता और किसानों में जागरूकता जैसी चुनौतियां भी इस प्रणाली के विस्तार में बाधक बन सकती हैं। इसके बावजूद, संरक्षण कृषि किसानों की आय बढ़ाने और कृषि को टिकाऊ, आत्मनिर्भर एवं पर्यावरण अनुकूल बनाने में एक प्रभावी साधन साबित होती है।

संरक्षण कृषि प्रौद्योगिकियों में न्यूनतम मृदा विक्षोभ, फसल अवशेषों के माध्यम से स्थायी मृदा आवरण और उच्च उत्पादकता प्राप्त करने के लिए फसलचक्र शामिल हैं। भारत में, संरक्षण-आधारित कृषि प्रौद्योगिकियों के विकास, परिशोधन और प्रसार के प्रयास लगभग दो दशकों से चल रहे हैं। विशेष रूप से सिंधु-गंगा के मैदानों में धान-गेहूं फसल पद्धति के अंतर्गत गेहूं में बिना जुताई के प्रयास किए गए हैं।

[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान), फसल अनुसंधान विभाग, भाकृअनुप का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना-800014 (बिहार); [2]सहायक प्राध्यापक-सह-कनीय वैज्ञानिक, सस्य विज्ञान विभाग; [3]सहायक प्राध्यापक-सह-कनीय वैज्ञानिक, पौधा रोग विज्ञान विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर-813210 (बिहार); [4]वैज्ञानिक, [5]प्रधान वैज्ञानिक एवं [6]अध्यक्ष, सस्य विज्ञान संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

संरक्षण कृषि की प्रौद्योगिकियां उत्पादन लागत कम करने, पानी और पोषक तत्वों की बचत करने, पैदावार बढ़ाने, फसल विविधीकरण बढ़ाने,संसाधनों के कुशल उपयोग में सुधार लाने और पर्यावरण को लाभ पहुंचाने के अवसर प्रदान करती हैं। हालांकि, संरक्षण कृषि प्रौद्योगिकियों को बढ़ावा देने में

अभी भी कुछ बाधाएं हैं, जैसे विशेष रूप से लघु और मध्यम स्तर के किसानों के लिए उपयुक्त बीजों की कमी, संरक्षण कृषि के उपयोग और पशुओं के चारे के बीच फसल अवशेषों की प्रतिस्पर्धा, फसल अवशेषों को जलाना, कुशल और वैज्ञानिक जनशक्ति की उपलब्धता और जुताई के बारे में पूर्वाग्रह या मानसिकता पर नियंत्रण पाना। इस क्षेत्र में संरक्षण कृषि को बढ़ावा देने के लिए नीतिगत ढांचे और नीतियों को विकसित करने की आवश्यकता है।

यह लेख पारंपरिक कृषि प्रणालियों को लगातार अपनाने के कारण उभरती चिंताओं की समीक्षा करता है और भारत में संरक्षण कृषि के लिए बाधाओं, संभावनाओं, नीतिगत मुद्दों और अनुसंधान आवश्यकताओं का विश्लेषण करता है। बढ़ती आबादी के लिए खाद्य सुरक्षा प्राप्त करना और प्राकृतिक संसाधनों के ह्रास, जलवायु परिवर्तनशीलता के नकारात्मक प्रभावों, उपादानों की बढ़ती लागत और अस्थिर खाद्य कीमतों के वर्तमान परिदृश्य में कृषि प्रणालियों को बनाए रखते हुए गरीबी उन्मूलन देश के सामने प्रमुख चुनौतियां हैं।

संरक्षण कृषि अन्तर्गत बीज उत्पादन हेतु गेहूं (एच.डी.-2976) का प्रत्यक्षण

उपरोक्त चुनौतियों के अलावा, कृषि प्रणालियों के गैर-स्थायित्व संकेतक, जैसे-मृदा क्षरण, मृदा कार्बनिक उत्पादों में कमी, लवणीकरण आदि शामिल हैं। ये मुख्य रूप से निम्न के कारण होते हैं:

- गहन जुताई के कारण मृदा कार्बनिक उत्पादों में कमी, मृदा संरचनात्मक क्षरण, जल अपरदन, वायु अपरदन, जल अंत:स्यंदन दर में कमी, सतह का जमाव एवं पपड़ी बनना तथा मृदा संघनन।
- कार्बनिक उत्पादों की अपर्याप्त वापसी।
- एकल फसल, पारंपरिक कृषि के असंवहनीय पहलुओं (जैसे-मृदा की जुताई, सभी जैविक उत्पादों को हटाना, एकल कृषि) को समाप्त करके कृषि पद्धतियों में आमूल-चूल परिवर्तन, प्राकृतिक संसाधनों को बनाए रखते हुए भविष्य में उत्पादकता में वृद्धि के लिए महत्वपूर्ण है।

संरक्षण कृषि की अवधारणा वैश्विक स्तर पर कृषि की स्थिरता की चिंताओं के जवाब में विकसित होकर दुनियाभर में लगातार बढ़ रही है और दुनिया की लगभग 8 प्रतिशत कृषि योग्य भूमि (124.8 मिलियन हैक्टर) को आच्छादित कर रही है। संरक्षण कृषि एक संसाधन-संरक्षण कृषि उत्पादन प्रणाली है। इसका उद्देश्य तीनो परस्पर संबंधित सिद्धान्तों का अनुपालन करते हुए प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण को आधार मानकर उत्पादन गहनता और उच्च पैदावार प्राप्त करना है। कृषि उत्पादन में अत्यधिक आधुनिक मशीनों का प्रयोग होने के कारण मृदा अपरदन, सतही और भूमिगत जल प्रदूषण और अधिक जल उपभोग

संरक्षण कृषि की संभावनाएं

संरक्षण कृषि को बढ़ावा देने की निम्न संभावनाएं हैं:

- **उत्पादन लागत में कमी:** यह शून्य-जुताई तकनीक को तेजी से अपनाने में योगदान देने वाला एक प्रमुख कारक है। अध्ययनों से पता चला है कि गेहूं उत्पादन की लागत 2,000 से 3,000 रुपये प्रति हैक्टर कम हो जाती है। लागत में कमी का श्रेय डीजल, श्रम और इनपुट लागत, विशेष रूप से शाकनाशियों की बचत को दिया जाता है।
- **खरपतवारों का कम प्रकोप:** अधिकांश अध्ययनों से पता चलता है कि शून्य-जुताई अपनाने पर गेहूं में एक प्रमुख खरपतवार, फैलेरिस माइनर का प्रकोप कम हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप शाकनाशियों का उपयोग कम हो जाता है।
- **पानी और पोषक तत्वों की बचत:** शून्य-जुताई से रोपण और विशेष रूप से लेजर लेवलिंग और क्यारियों में रोपी गई फसलों से पानी (20-30 प्रतिशत तक) और पोषक तत्वों की काफी बचत होती है। पारंपरिक जुताई की तुलना में बिना जुताई वाली मृदा में पानी की मात्रा अधिक होने से पिछली अवधि के दौरान पानी का वाष्पीकरण कम होने का संकेत मिलता है।
- **पर्यावरणीय लाभ:** शून्य-जुताई और सतही प्रबंधित फसल अवशेष प्रणालियों वाली संरक्षण कृषि, फसल अवशेषों को जलाने से बचने का एक उत्कृष्ट अवसर है, जो ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन करते हैं। फसल अवशेषों को जलाने से पौधों के पोषक तत्वों की भी काफी हानि होती है, जिन्हें उचित प्रबंधन से पुनर्चक्रित किया जा सकता है। फसल अवशेषों को बड़े पैमाने पर जलाना एक गंभीर स्वास्थ्य संकट है।
- **फसल विविधीकरण के अवसर:** संरक्षित कृषि प्रणालियों को अपनाने से फसल विविधीकरण के अवसर मिलते हैं। फसलचक्र और कृषिवानिकी प्रणालियां, जब उपयुक्त स्थानिक और कालिक स्वरूप में अपनाई जाती हैं, तो प्राकृतिक पारिस्थितिक प्रक्रियाओं को और बेहतर बना सकती हैं।
- **संसाधन सुधार:** बिना जुताई के फसल अवशेषों के सतही प्रबंधन के साथ संयोजन करने से ऐसी प्रक्रियाएं शुरू होती हैं, जिनसे अवशेषों के धीमे अपघटन से मृदा संरचनात्मक सुधार होता है और पौधों के पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण और उपलब्धता बढ़ती है। सतही अवशेष गीली घास के रूप में कार्य करते हैं,मृदा तापमान को नियंत्रित करते हैं, वाष्पीकरण को कम करते और जैविक गतिविधि में सुधार करते हैं।

की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है।

इसके अलावा, यह भूमि संसाधन क्षरण, वन्यजीव और जैव विविधता में कमी, कम ऊर्जा दक्षता और ग्लोबल वार्मिंग की समस्याओं में योगदान के लिए भी जिम्मेदार है। इसलिए, संरक्षण कृषि, मृदा के ऊर्ध्वाधर विक्षोभ (शून्य और संरक्षण जुताई) के बिना, फसल अवशेष प्रबंधन और आवरण फसलों के साथ, वार्षिक और बारहमासी फसलों की खेती करने का एक तरीका है, ताकि स्थायी मृदा आवरण और मृदा सतह पर कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में वृद्धि हो सके।

यह पारंपरिक कृषि की तुलना में वैश्विक पर्यावरण (मृदा, वायु, जल और जैव विविधता) पर खेती के रूढ़िवादी तरीके के अत्यंत लाभकारी प्रभावों पर जोर देता है। इसके अलावा, यह इन पर्यावरणीय पहलुओं पर वैज्ञानिकों के दृष्टिकोण से संबंधित वास्तविक कमियों या अनिश्चितताओं को भी प्रस्तुत करता है।

यह सतही और भूजल संसाधनों को प्रदूषण से बचाता है और नकारात्मक जलवायु प्रभावों को भी कम करता है। इस प्रकार, संरक्षण कृषि उत्कृष्ट मृदा उर्वरता प्रदान करती है और धन, समय और जीवाश्म ईंधन की भी बचत करती है। यह पारंपरिक कृषि का एक कुशल विकल्प है, जो इसकी कमियों को कम करता है।

धान परती भूमि पर संरक्षण कृषि के अन्तर्गत दलहन एवं तिलहन फसलों का प्रत्यक्षण

सारणी 1. पारंपरिक और संरक्षण कृषि प्रणालियों की विशेषताएं

पारंपरिक कृषि	संरक्षण कृषि
प्रकृति पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हुए भूमि पर खेती	प्राकृतिक प्रक्रियाओं में न्यूनतम हस्तक्षेप
अत्यधिक यांत्रिक जुताई और मृदा अपरदन	बिना जुताई या अत्यधिक कम जुताई (जैविक जुताई)
तेज हवा और मृदा अपरदन	कम हवा और मृदा अपरदन
अवशेषों को जलाना या हटाना (खुली सतह)	अवशेषों का सतही प्रतिधारण (स्थायी रूप से ढका हुआ)
जल अंत:स्यंदन दर कम होती है	जल अंत:स्यंदन दर अधिक होती है
बाह्य-स्थान पर गोबर खाद/खाद का उपयोग	यथास्थान पर कार्बनिक उत्पादों/खाद का उपयोग
हरी खाद (समावेशी)	भूरी खाद/आवरण फसलें (सतह प्रतिधारण)
स्थापित खरपतवारों को नष्ट करता है, लेकिन अधिक खरपतवार बीजों को अंकुरित होने के लिए उत्तेजित करता है	शुरुआती चरणों में खरपतवार एक समस्या होते हैं, लेकिन समय के साथ कम हो जाते हैं
कृषि मशीनरी का मुक्त संचालन, मृदा का अधिक संघनन होता है	नियंत्रित यातायात, ट्रामलाइन में संघनन, फसल क्षेत्र में कोई संघनन नहीं होता है

विविध फसलचक्र

फसलचक्र न केवल मृदा सूक्ष्मजीवों को विविध आहार प्रदान करने के लिए आवश्यक है, बल्कि मृदा की विभिन्न परतों में उन पोषक तत्वों की खोज के लिए भी आवश्यक है, जो गहरी परतों में रिस गए हैं और जिन्हें फसलचक्र द्वारा पुनर्चक्रित किया जा सकता है। इसके अलावा, फसलों के चक्र में विविधता से मृदा वनस्पति और जीव विविध होते हैं। भारत में, पिछले कुछ वर्षों में, शून्य जुताई और संरक्षित कृषि को अपनाने से लगभग 1.5 मिलियन हैक्टर भूमि को आच्छादित किया गया है। सिंधु-गंगा के मैदानों की धान-गेहूं फसल पद्धति में प्रमुख संरक्षित कृषि आधारित प्रौद्योगिकियों को अपनाया जा रहा है, जिसमे शून्य-जुताई गेहूं भी है। अन्य फसलों और फसल प्रणालियों में, पारंपरिक कृषि आधारित फसल प्रबंधन प्रणालियां धीरे-धीरे गहन जुताई से शून्य-जुताई कार्यों में बदलाव के दौर से गुजर रही हैं। भारत में, संरक्षित कृषि प्रौद्योगिकियों को अपनाने और बढ़ावा देने का प्रयास किसानों द्वारा तेजी से किया जा रहा है। भारत में प्रौद्योगिकियों का प्रसार सिंधु-गंगा के मैदानों के सिंचित क्षेत्रों में हो रहा है, जहां धान-गेहूं की फसल प्रणाली प्रमुख है। संरक्षण प्रौद्योगिकियों के विकास और प्रचार का ध्यान धान-गेहूं प्रणाली में गेहूं की बुआई के लिए जीरो-टिल सीड-कम-फर्टिलाइजर ड्रिल पर रहा है। अन्य उपायों में ऊंची क्यारियों में रोपण प्रणालियां, लेजर उपकरण से भूमि समतलीकरण, अवशेष प्रबंधन पद्धतियां, चावल-गेहूं प्रणाली के विकल्प आदि शामिल हैं। शून्य-जुताई विधि (जीरो-टिल ड्रिल) अपनाकर गेहूं बोए गए क्षेत्र में तेजी से वृद्धि हो रही है, और वर्तमान में भारत के सिंधु-गंगा के मैदानी क्षेत्रों के चावल-गेहूं उगाने वाले क्षेत्रों में 25-30 प्रतिशत गेहूं की बुआई शून्य-जुताई विधि से की जाती है।

संरक्षण कृषि के सिद्धान्त

संरक्षण कृषि उचित योजना और कार्यान्वयन प्रक्रियाओं के लिए मूलत: तीन सिद्धान्तों पर कार्य करती है, जो निम्नवत हैं:

- **न्यूनतम यांत्रिक मृदा विक्षोभ:** इस प्रक्रिया को 'जैविक जुताई' कहा जा सकता है और यह यांत्रिक जुताई के अनुकूल नहीं है। न्यूनतम मृदा विक्षोभ जड़-क्षेत्र में श्वसन गैसों का इष्टतम अनुपात बनाए रखता है। कार्बनिक उत्पादों का मध्यम ऑक्सीकरण, जल संचलन, प्रतिधारण और नि:सरण के लिए सरंध्रता प्रदान करता है। खरपतवार के बीजों के पुन: संपर्क और उनके अंकुरण को सीमित करता है।
- **स्थायी जैविक मृदा आवरण:** एक स्थायी मृदा आवरण, वर्षा और धूप के हानिकारक प्रभावों से मृदा की रक्षा करने, मृदा में सूक्ष्म और स्थूल जीवों को आहार की निरंतर आपूर्ति प्रदान करने और पौधों की जड़ों सहित मृदा

जीवों की इष्टतम वृद्धि और विकास के लिए मृदा में सूक्ष्म जलवायु को बदलने के लिए महत्वपूर्ण है। बदले में, यह मृदा एकत्रीकरण, मृदा जैविक गतिविधि, मृदा जैव विविधता और कार्बन संचयन में सुधार करता है।

संरक्षण कृषि को अपनाने में बाधाएं

किसानों के दृष्टिकोण में बदलाव लाने के लिए, मृदा को नुकसान पहुंचाने वाली जुताई की प्रक्रियाओं से हटकर, बिना जुताई जैसी टिकाऊ उत्पादन प्रणालियों की ओर किसानों, तकनीकी विशेषज्ञों, विस्तारवादियों और शोधकर्ताओं का मानसिक परिवर्तन आवश्यक है। हालांकि, यह ध्यान देने योग्य है कि संरक्षण कृषि को अपनाने में संभवतः सबसे महत्वपूर्ण कारक जुताई के बारे में पूर्वाग्रह या मानसिकता पर काबू पाना है। यह तर्क दिया जाता है कि किसानों को यह विश्वास दिलाना कि कम जुताई या बिना जुताई के भी सफल खेती संभव है, बड़े पैमाने पर संरक्षण कृषि को बढ़ावा देने में एक बड़ी बाधा है। निम्न कुछ महत्वपूर्ण कारण हैं, जो संरक्षण कृषि को व्यापक स्तर पर अपनाने में बाधा उत्पन्न करते हैं:

लघु और मध्यम स्तर के किसानों के लिए उपयुक्त बीजों का अभाव

यद्यपि नो-टिल प्रणाली में गेहूं बोने के लिए मशीनरी विकसित करने और उसे बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण प्रयास किए गए हैं। फिर भी विभिन्न फसलों और फसल क्रमों के लिए लक्षित गुणवत्तापूर्ण मशीनरी के विकास, मानकीकरण और प्रचार में तेजी लाने के प्रयासों की आवश्यकता होगी।

पशु आहार और ईंधन के लिए फसल अवशेषों का व्यापक उपयोग

विशेष रूप से वर्षा आधारित परिस्थितियों में, विभिन्न फसलों के कम जैव उत्पादन के कारण किसानों को फसल अवशेषों की कमी का सामना करना पड़ता है। फसल अवशेषों के लिए संरक्षित कृषि पद्धति और पशु आहार के बीच प्रतिस्पर्धा होती है। वर्षा आधारित परिस्थितियों में संरक्षित कृषि को बढ़ावा देने में यह एक बड़ी बाधा है।

फसल अवशेषों को जलाना

अगली फसल की समय पर बुआई के लिए और संरक्षित कृषि प्रणालियों के अंतर्गत बुआई के लिए मशीनरी के बिना, किसान अवशेषों को जलाकर समय पर फसल बोना पसंद करते हैं। उत्तर भारत में धान-गेहूं प्रणाली में यह एक आम बात हो गई है। इससे इस क्षेत्र में पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न होती हैं।

संरक्षित कृषि की संभावनाओं के बारे में जानकारी का अभाव

इसका अर्थ है कि संरक्षित कृषि में सभी प्रकार की प्रथाओं, जिनमें रोपण और कटाई, जल और पोषक तत्व प्रबंधन, रोग और कीट नियंत्रण आदि शामिल हैं, को नई प्रणालियों के संदर्भ में विकसित, मूल्यांकन और मिलान करने की आवश्यकता है।

भाकृअनुप-आर.वी.ई.आर. पटना परिसर में संरक्षण कृषि पद्धतियों के मूल्यांकन का प्रयोगात्मक परीक्षण

एकीकृत दृष्टिकोण

संरक्षण कृषि, अनुसंधान एवं विकास के लिए एक नया प्रतिमान प्रस्तुत करती है, जो केवल उत्पादन बढ़ाने तक सीमित न होकर उत्पादकता, संसाधन संरक्षण, मृदा गुणवत्ता और पर्यावरणीय संतुलन को एकीकृत दृष्टिकोण से जोड़ती है। यह प्रणाली संसाधन क्षरण के नकारात्मक चक्र को रोकने और उलटने के साथ-साथ खेती की लागत घटाने, संसाधन-उपयोग दक्षता बढ़ाने और कृषि को अधिक प्रतिस्पर्धी एवं टिकाऊ बनाने का अवसर प्रदान करती है। इसके प्रभावी विकास और प्रसार के लिए वैज्ञानिकों को प्रणालीगत दृष्टिकोण अपनाना होगा, किसानों और अन्य हितधारकों के साथ साझेदारी मजबूत करनी होगी तथा ज्ञान एवं सूचना-साझाकरण तंत्र को सुदृढ़ करना होगा। सार रूप में, संरक्षण कृषि सतत उत्पादकता वृद्धि और दीर्घकालीन कृषि स्थिरता की कुंजी है।

'खेती' पत्रिका के 'सफलता गाथा' विशेषांक के लिए लेख आमंत्रण

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की लोकप्रिय मासिक पत्रिका 'खेती' का जुलाई, 2026 अंक 'सफलता गाथा विशेषांक' के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। इस संदर्भ में कृषि वैज्ञानिकों तथा प्रगतिशील किसानों से सफलता गाथाएं आमंत्रित की जाती हैं।

लेख मौलिक, अप्रकाशित तथा किसी नवाचार, तकनीकी हस्तांतरण या अभिनव कृषि प्रयोग की सफलता पर आधारित होना चाहिए। लेख अधिकतम 300 शब्दों का सचित्र एवं सरल भाषा में होना चाहिए। इसके साथ लेखक का संक्षिप्त परिचय (नाम, पता, ईमेल, मोबाइल नंबर आदि) भी संलग्न होना चाहिए

लेख की सॉफ्ट कॉपी पोर्टल epatrika.icar.org.in पर 31 जनवरी 2026 तक ऑनलाइन भेज सकते हैं।

प्राकृतिक खेती का भविष्य में योगदान

भवानी शंकर मीणा[1], **श्रवण कुमार यादव**[1], **शांति कुमार शर्मा**[2] और **एस.एन. मीणा**[1]

"रसायनों पर बढ़ती निर्भरता ने मृदा की उर्वरता, भौतिक और जैविक गुणों को गंभीर रूप से प्रभावित किया है। परिणामस्वरूप मृदा की उत्पादकता घट रही है, सूक्ष्मजीवों की संख्या कम हो रही है और पोषक तत्वों का प्राकृतिक चक्रण बाधित हो रहा है। इसके साथ ही, रासायनिक अवशेषों के कारण भू-जल और सतही जल प्रदूषित हो रहे हैं, जिससे मानव और पशु स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। इस संदर्भ में प्राकृतिक खेती एक अत्यंत उपयोगी, पर्यावरण-अनुकूल और किफायती विकल्प के रूप में उभर रही है। यह न केवल मृदा के स्वास्थ्य को पुनर्स्थापित करती है, बल्कि जल संरक्षण, कार्बन संचयन और पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने में भी मदद करती है। इसके साथ ही, इससे किसानों की उत्पादन लागत घटती है, उनकी आय बढ़ती है और कृषि की दीर्घकालिक स्थिरता सुनिश्चित होती है।"

वर्तमान पीढ़ी के लिए आहार, आजीविका और बेहतर जीवन सुनिश्चित करने के प्रयास में वर्ष 1960 के दशक में कृषि पर विशेष ध्यान दिया गया। इस दौरान उत्पादकता बढ़ाने, औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित करने और उन्नत बीज, उर्वरक, रासायनिक कीटनाशक, सिंचाई, वृद्धि नियामक एवं आधुनिक मशीनों के उपयोग पर जोर दिया गया। इससे आधुनिक या व्यावसायिक कृषि का विकास हुआ, जो अधिकतर उच्च उत्पादन पर आधारित थी। इसे 'भारत में हरित क्रांति' कहा गया। रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक और अनियंत्रित उपयोग ने कृषि प्रणाली को कई चुनौतियों का सामना करने के लिए मजबूर कर दिया है।

यदि वर्तमान कृषि पद्धतियों में सुधार नहीं किया गया, तो आने वाले वर्षों में मृदा की गुणवत्ता, जैव विविधता और खाद्य सुरक्षा पर गंभीर संकट उत्पन्न हो सकता है। इस प्रकार आवश्यक है कि हम टिकाऊ कृषि प्रणालियों को अपनाएं, जो रासायनिक निर्भरता को घटाकर प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण पर आधारित हों।

[1]कृषि अनुसंधान केंद्र, उम्मेदगंज, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा; [2]सहायक महानिदेशक (मानव संसाधन प्रबंधन), भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

प्राकृतिक खेती

प्राकृतिक खेती, जिसे जीवाणुओं पर आधारित खेती भी कहा जाता है, यह एक ऐसी कृषि प्रणाली है, जिसमें रासायनिक उपादनों का उपयोग नहीं किया जाता। यह खेती मुख्यतः सूक्ष्मजीवों और केंचुओं के सक्रिय संपर्क पर आधारित होती है। इस प्रणाली में फसल उत्पादन कम लागत में होता है और किसानों को बाहर से खाद की आवश्यकता नहीं पड़ती, जिससे उनकी उत्पादन लागत 40-50 प्रतिशत तक कम हो सकती है। प्राकृतिक खेती न केवल किसानों की आय बढ़ाने में सहायक है, बल्कि मृदा, जल, जैव विविधता और पर्यावरण के संरक्षण में भी महत्वपूर्ण योगदान देती है।

प्राकृतिक खेती के प्रमुख घटक

- मृदा में न्यूनतम हस्तक्षेप।
- बहुफसल/मिश्रित फसल प्रणाली अपनाना।
- फसल विविधता को बढ़ावा देना।
- पौधे एवं पशु आधारित जैव उत्पादों का प्रयोग।
- देसी बीज और उन्नत किस्मों का उपयोग।
- बीजामृत से बीज उपचार करके बीजजनित रोगों की रोकथाम।
- मृदा को ढकना (आच्छादन) और अंत:फसल पद्धति अपनाना।
- जीवामृत और घनजीवामृत से सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ाना और फसलों को पोषण उपलब्ध करवाना।
- मेड़ एवं नाली विधि से वैकल्पिक सिंचाई, जिससे मृदा में पानी और हवा का संतुलन बना रहे।
- ब्रॉड बेड फर्रो और फर्रो रिज प्रणाली से बिजाई, जिससे खरपतवार कम हों और नमी बनी रहे।
- प्राकृतिक तरीकों से कीट नियंत्रण।
- मुख्य फसल के चारों ओर ट्रैप फसल (जैसे: गेंदा, तुलसी, अरंडी, भिंडी, ज्वार, सूरजमुखी) लगाकर कीटों से सुरक्षा करना।

प्राकृतिक खेती में उपयोग होने वाला प्रमुख आदान

जीवामृत

- यह एक प्रकार का जीवाणु संवर्धन कल्चर है, जिसे गाय के गौमूत्र और गोबर से तैयार किया जाता है। यह मृदा में सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ाकर उसकी उर्वरता सुधारने में मदद करता है।

सामग्री

- 10 कि.ग्रा. ग्राम देसी गाय का ताजा गोबर
- 10 लीटर गौमूत्र
- 2 कि.ग्रा. गुड़
- 2 कि.ग्रा. दाल का आटा (चना, उड़द, मूंग)
- 200 लीटर पानी
- 1 कि.ग्रा. मिट्टी (वट वृक्ष के नीचे की)

जीवामृत बनाने की विधि

सर्वप्रथम एक प्लास्टिक का ड्रम लेकर उसमें 200 लीटर पानी डालें। पानी में 10 कि.ग्रा. ग्राम देसी गाय का गोबर, 10 लीटर गौमूत्र और 2 कि.ग्रा. गुड़ मिलाएं। इसके बाद 2 कि.ग्रा. बेसन और 500 ग्राम मिट्टी (वट वृक्ष या खेत के मेड़ के नीचे की) डालें और डंडे से 10 मिनट तक अच्छी तरह हिलाएं। ड्रम को जालीदार कपड़े से ढक दें। अगले 48 घंटे तक सुबह और शाम 15 मिनट के लिए घोल हिलाएं। ड्रम को छाया में रखें, जहां पर सीधे धूप न लगे। 48 घंटे बाद जीवामृत तैयार हो जाएगा। ध्यान दें कि तैयार जीवामृत केवल सात दिनों तक प्रयोग के लिए सुरक्षित है।

उपयोग

- प्रति एकड़ 200 लीटर जीवामृत को सिंचाई के बहते पानी में बूंद-बूंद टपकाएं।
- फसलों और पौधों पर 10 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।
- फसल के पूरे जीवनकाल में 15-20 दिनों के अंतराल पर 2-3 बार प्रयोग करें।

बीजामृत (बीज शोधन)

बीज शोधन से बीजों के अंकुरित होने की क्षमता बढ़ जाती है। इससे बीज जल्दी और अधिक मात्रा में अंकुरित होते हैं, जड़ें तेजी से बढ़ती हैं और भूमि तथा पौधों पर रोगों का प्रकोप कम होता है।

सामग्री

100 कि.ग्रा. बीज हेतु

- 5 कि.ग्रा. गाय का गोबर
- 5 लीटर गाय का गौमूत्र

जीवामृत बनाने की विधि

नीमास्त्र

उपयोग

नीमास्त्र रस चूसने वाले कीट और छोटी इल्लियों के नियंत्रण हेतु उपयोगी है।

सामग्री (एक एकड़ के लिए):

- **नीम की हरी पत्तियां/सूखे फल/निम्बोली:** 5 कि.ग्रा.
- **गौमूत्र:** 5 लीटर
- **देसी गाय का गोबर:** 2 कि.ग्रा.
- **पानी:** 100 लीटर

विधि

नीम की पत्तियों या निम्बोली को कूट लें। कूटी हुई सामग्री को पानी में मिलाएं। इसमें गौमूत्र और गोबर मिला दें। घोल को लकड़ी के डंडे से सुबह और शाम घड़ी की सुई की दिशा में घोलें। मिश्रण को 48 घंटे तक बोरी से ढककर छाया में रखें। 48-96 घंटे बाद मिश्रण को कपड़े से छानकर एक एकड़ फसल पर छिड़काव करें।

उपयोग

7-10 दिनों के अंतराल पर 5 प्रतिशत नीमास्त्र का छिड़काव करने से रस चूसने वाले कीट और छोटे आकार के कीट प्रभावी तरीके से नियंत्रित होते हैं। इसकी वैधता तीन महीने तक होती है।

प्राकृतिक खेती के मुख्य उद्देश्य

- प्राकृतिक वनस्पतियों और जीवों का संरक्षण।
- पोषक तत्वों के पुनर्चक्रण को बढ़ावा देकर मृदा की उर्वरता बनाए रखना।
- फसल उत्पादन की विविधता बनाए रखना।
- प्राकृतिक संसाधनों (मृदा, हवा, पानी) का कुशल उपयोग।
- पशुधन एकीकरण और स्थानीय नस्लों को बढ़ावा देना।
- खेत पर उत्पादित प्राकृतिक उपादनों का उपयोग।
- कृषि उत्पादन की आदान लागत कम करना।
- किसानों की आय और अर्थव्यवस्था में सुधार।

सामग्री | गोबर की गांठ को रातभर पानी में लटकाना | गोबर का पानी निचोड़ना

चूना मिलाना | गौमूत्र मिलाना | तैयार बीजामृत

बीजामृत बनाने की विधि

- 10 लीटर पानी
- 100-250 ग्राम चूना
- 100-150 ग्राम मेड़ की मृदा

विधि

देसी गाय के 5 कि.ग्रा. गोबर को कपड़े में बांधकर गांठ बना लें और 10 लीटर पानी में लटकाकर 12 घंटे तक डुबोकर रखें। प्राप्त घोल में से 1 लीटर घोल लेकर इसमें 100-250 ग्राम चूना मिलाएं और रातभर के लिए रख दें।

सुबह गोबर वाली गांठ को निचोड़कर पानी में इसका पूरा घोल निकाल लें। अब इस पानी में 100-150 ग्राम खेत के मेड़ की मिट्टी डालकर तेजी से हिलाएं। इस घोल में 5 लीटर गौमूत्र मिलाएं। आखिरी में इसमें चूना पानी डालें और घोल को अच्छी तरह से हिलाएं। बीजामृत बुआई के 24 घंटे पहले तैयार करें।

उपयोग

बीजामृत तैयार हो जाने के बाद बीजों के ऊपर फैलाएं। प्रति कि.ग्रा. बीज लगभग 50 मि.ली. बीजामृत छिड़कें और हाथ से बीजों पर परत चढ़ाएं। बीजों को छाया में सुखाएं और फिर बोएं। बीजामृत 48 घंटे तक अधिक प्रभावी रहता है और इसकी क्षारीय प्रकृति बीजों की सुरक्षा में सहायक होती है।

ब्रह्मास्त्र

इसका उपयोग कीट और सुंडी, इल्लियों आदि कीटों के नियंत्रण के लिए किया जाता है।

सामग्री

- 10 लीटर गौमूत्र
- 5 कि.ग्रा. नीम की पत्तियां
- 2 कि.ग्रा. करंज की पत्तियां
- 2 कि.ग्रा. सीताफल की पत्तियां
- 2 कि.ग्रा. बेल के पत्ते
- 2 कि.ग्रा. अरंडी के पत्ते
- 2 कि.ग्रा. धतूरा के पत्ते

ब्रह्मास्त्र

घनजीवामृत

एक एकड़ के लिए आवश्यक सामग्री

- **देसी गाय का गोबर:** 200 कि.ग्रा.
- **गुड़:** 1 कि.ग्रा.
- **दलहन का आटा:** 2 कि.ग्रा.
- **वट वृक्ष की मिट्टी:** 1 कि.ग्रा.
- **गौमूत्र:** 10 लीटर

विधि

सभी आदानों को अच्छी तरह मिलाकर गूंथकर एक गाढ़ा मिश्रण बनाएं। आवश्यकतानुसार इसमें थोड़ा-थोड़ा गौमूत्र मिलाएं। इसे 2-4 दिनों तक छाया में ढककर रखें और समय-समय पर इसमें थोड़ा पानी छिड़कें। इसके बाद में इसे बारीक पीसकर खेत में प्रयोग करें। यह तैयार घनजीवामृत बुआई से पहले और खड़ी फसल में प्रयोग किया जा सकता है।

सारणी: जैविक एवं प्राकृतिक खेती में पोषक तत्व प्रबंधन क्रियाओं का चने की उपज एवं आर्थिक विश्लेषण औसत 6 वर्ष (2018-19 से 2023-24)

पोषक तत्व प्रबंधन	उपज (क्विं./है.)	कुल लागत (रु./है.)	अतिरिक्त लागत	सकल आय (रु./है.)	अतिरिक्त सकल आर्थिक आय (रु./है.)	वृद्धिशील लाभ-लागत अनुपात (आईबीसीआर)
जैविक खेती: 75 प्रतिशत नाइट्रोजन (3 टन प्रति हैक्टर गोबर की खाद)+1250 मि.ली. प्रति हैक्टर एनपीके तरल जैव उर्वरक, गोबर की खाद में मिलाकर बुआई के समय प्रयोग एवं गौमूत्र 10 प्रतिशत का पर्णीय छिड़काव 25, 50 और 75 दिनों पर प्रयोग।	22.7	30635	2475	149820	34320	13.87
जैविक खेती: 50 प्रतिशत नाइट्रोजन (2 टन प्रति हे गोबर की खाद)+50 प्रतिशत नाइट्रोजन (1 टन प्रति हैक्टर वर्मीकम्पोस्ट) एवं वर्मीवाश 10 प्रतिशत का पर्णीय छिड़काव 25, 50 और 75 दिनों पर प्रयोग।	22.58	31043	2883	149028	33528	11.63
प्राकृतिक खेती: जीवामृत 500 लीटर प्रति हैक्टर बुआई के समय, 25 एवं 50 दिनों पर प्रयोग	20.77	30160	2000	137082	21582	10.79

प्राकृतिक खेती के लाभ

- भूमि की उपजाऊ क्षमता में वृद्धि।
- सिंचाई अंतराल बढ़ना और प्रति सिंचाई पानी की मात्रा में कमी।
- उत्पादन लागत में कमी।
- फसलों की उत्पादकता में वृद्धि।
- जैविक उत्पादों की बढ़ती मांग से किसानों की आय में वृद्धि।
- बाजार पर उपादनों की निर्भरता में कमी।
- जैविक उत्पाद रसायनमुक्त, एंटीऑक्सीडेंट, विटामिन और खनिजों से भरपूर।
- टिकाऊ फसल उत्पादन।
- भूमि के जलस्तर में वृद्धि।
- मृदा, खाद्य पदार्थ और पानी में होने वाले प्रदूषण में कमी।
- फसल उत्पादन की लागत में कमी और आय में वृद्धि।

प्राकृतिक खेती में काम आने वाले आदान

विधि

सर्वप्रथम 10 लीटर देसी गौमूत्र लें। इसमें 5 कि.ग्रा. नीम के पत्तों का अर्क, 2 कि.ग्रा. सीताफल के पत्तों का अर्क, 2 कि.ग्रा. करंज के पत्तों का अर्क, 2 कि.ग्रा. बेल के पत्तों का अर्क, 2 कि.ग्रा. अरंडी के पत्तों का अर्क तथा 2 कि.ग्रा. धतूरा के पत्तों का अर्क मिला लें। फिर इस घोल को उबालें। उबलने के बाद घोल को 48 घंटे तक स्थिर रखें। फिर घोल को छानकर स्टोर कर लें। सभी चूषक कीटों, फलीछेदक, फलछेदक आदि को नियंत्रित करने के लिए फसलों पर तैयार ब्रह्ममस्त्र का छिड़काव करें।

अग्निास्त्र

उपयोग

छिड़काव के लिए 100 लीटर पानी में 5 लीटर बह्मास्त्र का घोल लें। चने और उड़द में बड़े आकार के बोरर को नियंत्रित करने के लिए बह्मास्त्र का 5 प्रतिशत छिड़काव प्रभावी पाया गया है। इसकी वैधता 6 महीने तक होती है।

अग्निास्त्र

पेड़ के तने या डंठलों में रहने वाले कीट, फलियों में रहने वाली सुंडियां, कपास के डोडा में लगने वाली सुंडियां तथा सभी प्रकार की बड़ी सुंडियां और इल्लियों के लिए अग्निास्त्र उपयोगी है।

सामग्री (एक एकड़)

- **नीम के पत्ते:** 5 कि.ग्रा.
- **गौमूत्र:** 20 लीटर
- **तम्बाकू पाउडर:** 500 ग्राम

प्राकृतिक खेती पर शोध

स्वस्थ उपज

- **तीखी हरी मिर्च की चटनी:** 500 ग्राम
- **देसी लहसुन की चटनी:** 500 ग्राम

विधि

कूटे हुए नीम के पत्तों, तम्बाकू पाउडर, हरी मिर्च की चटनी और लहसुन की चटनी को गौमूत्र में मिलाकर धीमी आंच पर उबालें। मिश्रण को 48 घंटे तक ठंडा होने दें। इस मिश्रण को सुबह और शाम लकड़ी के डंडे से घोलें। 48 घंटे बाद घोल को कपड़े से छानकर एक बर्तन में रखें।

उपयोग

अग्निास्त्र का 5 प्रतिशत छिड़काव 7-10 दिनों के अंतराल पर करने से सभी प्रकार के कीट नियंत्रण में प्रभावी होता है। इसकी वैधता 3 महीने तक होती है, इसलिए इसे 3 महीने के भीतर ही उपयोग कर लें।

अनुसंधान परिणाम

कृषि अनुसंधान केन्द्र उम्मेदगंज, कोटा में प्राकृतिक खेती पर अनुसंधान के शोध के परिणाम सारणी में दिये गये हैं।

किण्वित जैविक खाद से पर्यावरण संतुलन एवं स्वस्थ उपज

विशाल त्यागी, प्रवीण कुमार उपाध्याय, कपिला शेखावत, मोना नगरगडे, राजीव कुमार सिंह और **संजय सिंह राठौर**

"किण्वित जैविक खाद एक उन्नत प्रकार की जैविक खाद है, जिसे कृषि अवशेषों, गोबर, हरी खाद, फलों/सब्जियों के अपशिष्ट तथा अन्य कार्बनिक उत्पादों को नियंत्रित परिस्थितियों में लाभकारी सूक्ष्मजीवों (जैसे बैक्टीरिया, फफूंद और एक्टिनोमायसीट्स) की सहायता से किण्वन प्रक्रिया द्वारा तैयार किया जाता है। संपीड़ित बायोगैस संयंत्रों में इसी प्रकार के कृषि और जैविक अपशिष्टों का एनारोबिक अपघटन किया जाता है। इस प्रक्रिया से मुख्य उत्पाद के रूप में बायोगैस प्राप्त होती है, जिसे रसोई गैस, वाहन ईंधन या औद्योगिक ऊर्जा उत्पादन में उपयोग किया जा सकता है। इससे जीवाश्म ईंधन पर निर्भरता कम होती है और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कमी आती है। सह-उत्पाद के रूप में उत्पन्न अवशिष्ट द्रव्य को परिष्कृत कर किण्वित जैविक खाद में परिवर्तित किया जाता है। इस प्रकार तैयार किण्वित जैविक खाद न केवल पौधों के लिए पोषक तत्वों का समृद्ध स्रोत होती है, बल्कि मृदा स्वास्थ्य को दीर्घकालिक रूप से सुधारने और सतत कृषि को बढ़ावा देने में भी अत्यंत प्रभावी सिद्ध होती है।"

भारत में बढ़ती जनसंख्या, बदलती जीवनशैली एवं खानपान की आदतें तथा उच्च उत्पादकता वाली फसल किस्मों के प्रयोग के कारण कृषि में उर्वरकों की मांग लगातार बढ़ रही है। वर्ष 2023 में भारतीय खाद्य बाजार का मूल्य लगभग 1046.85 अरब रुपये था, जो वर्ष 2030 तक 5.7 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर के साथ 1543.15 अरब रुपये तक पहुंचने का अनुमान है। इस बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाशयुक्त रासायनिक उर्वरकों का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है। किंतु रासायनिक खादों के असंतुलित प्रयोग से मृदा उर्वराशक्ति कमजोर मृदा अम्लीकरण, भूजल एवं सतही जल प्रदूषण, उत्पादन लागत में वृद्धि तथा मृदा की भौतिक एवं जैविक संरचना पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

इससे कृषि की दीर्घकालिक उत्पादकता और पारिस्थितिकीय संतुलन दोनों प्रभावित होते हैं। ऐसे में फसल अवशेषों और जैविक संसाधनों से तैयार की गई खादें (जैसे-किण्वित जैविक खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद) रासायनिक खादों पर आंशिक निर्भरता कम कर सकती हैं। भारत में हर वर्ष लगभग 500-700 मिलियन

सस्य विज्ञान संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली-110012

आर्थिक लाभ

- एफओएम के उपयोग से रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता घटती है, जिससे लागत कम हो सकती है।
- मृदा की प्राकृतिक उर्वरता और पोषण क्षमता बढ़ने से दीर्घकालिक उत्पादन लागत स्थायी रूप से कम रहती है।
- एफओएम में मुख्य और सूक्ष्म पोषक तत्व संतुलित रूप में उपलब्ध, जिससे कम उर्वरक देने पड़ते हैं इस प्रकार लागत कम लगती है।
- फसल की उपज और गुणवत्ता में वृद्धि से बाजार मूल्य और उच्च आय में सुधार होता है।
- कृषि-अवशेषों का एफओएम में रूपांतरण करने से अतिरिक्त आर्थिक अवसर उत्पन्न होते हैं।
- जलधारण क्षमता बढ़ने से फसल तनाव में भी बेहतर उत्पादन देती है, जिससे नुकसान कम और लागत-लाभ अनुपात बढ़ता है।
- रोजगार सृजन और ग्रामीण आय में वृद्धि से समाज और अर्थव्यवस्था पर अतिरिक्त लाभ।

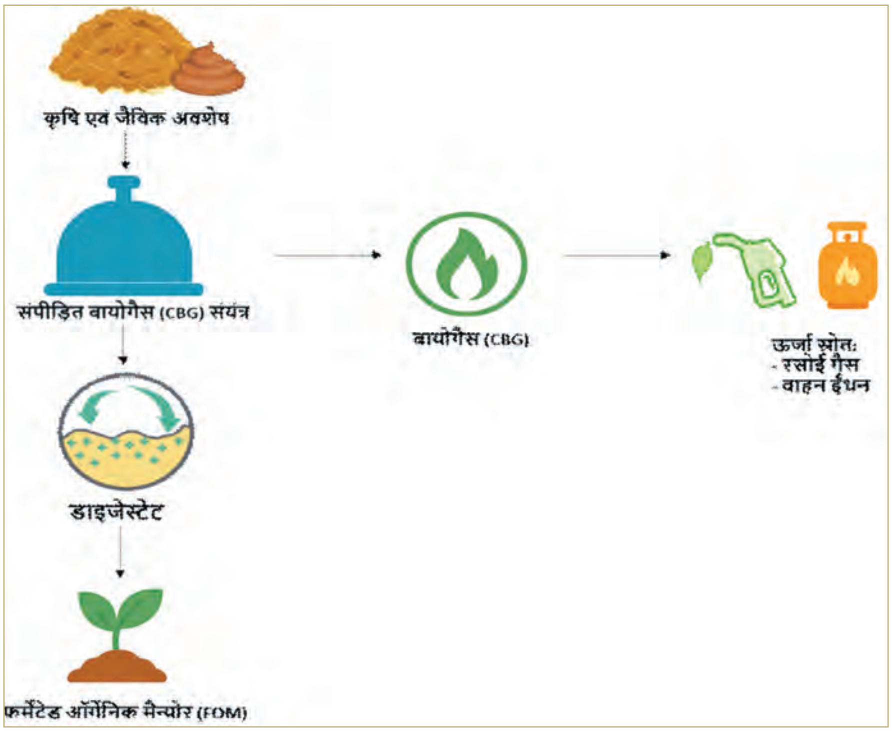

किण्वित जैविक खाद (एफओएम) निर्माण की प्रक्रिया

टन फसल अवशेष उत्पन्न होते हैं, जिनका बड़ा हिस्सा (लगभग 92 मिलियन टन) या तो जलाकर नष्ट कर दिया जाता है अथवा अनुपयोगी रह जाता है।

फसल अवशेषों का दहन न केवल मृदा स्वास्थ्य, जलवायु परिवर्तन एवं मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है, बल्कि वायुमंडलीय गुणवत्ता को भी गंभीर रूप से प्रभावित करता है। इस प्रक्रिया से ग्रीनहाउस गैसें जैसे कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन तथा कार्बन मोनोऑक्साइड के अतिरिक्त नाइट्रोजन ऑक्साइड तथा हैलोजन यौगिक जैसी हानिकारक गैसों का उत्सर्जन होता है, जो वायु प्रदूषण एवं वैश्विक तापमान वृद्धि का प्रमुख कारण हैं।

वर्ष 2040 तक वैश्विक ऊर्जा मांग में 48 प्रतिशत तक वृद्धि का अनुमान है, जिसमें चीन और भारत प्रमुख योगदानकर्ता होंगे। यदि जीवाश्म ईंधनों पर निर्भरता इसी प्रकार जारी रही तो वर्ष 2050 तक लगभग 87 गीगाटन कार्बन डाइऑक्साइड समतुल्य उत्सर्जन संभावित है, जो जलवायु परिवर्तन की तीव्रता को और बढ़ाएगा।

वर्तमान में भारत अपने कच्चे तेल की आवश्यकता का लगभग 85 प्रतिशत आयात करता है, जिससे ऊर्जा सुरक्षा पर गहरा दबाव बढ़ रहा है। इस उच्च जीवाश्म ईंधन उपभोग और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन ने एशिया में वायु गुणवत्ता को गंभीर रूप से प्रभावित किया है, जिसके परिणामस्वरूप श्वसन एवं अन्य दीर्घकालिक रोगों की घटनाओं में वृद्धि हो रही है।

भारत सरकार ने ऊर्जा सुरक्षा और पर्यावरणीय स्थिरता सुनिश्चित करने हेतु कच्चे तेल के आयात पर निर्भरता को 10 प्रतिशत तक घटाने का लक्ष्य रखा है। इस चुनौतीपूर्ण परिदृश्य में, धान के पुआल जैसे कृषि अवशेषों का जैव-ईंधन एवं संपीड़ित बायोगैस उत्पादन हेतु उपयोग एक टिकाऊ और बहुआयामी समाधान के रूप में उभर रहा है।

संपीड़ित बायोगैस उत्पादन से प्राप्त

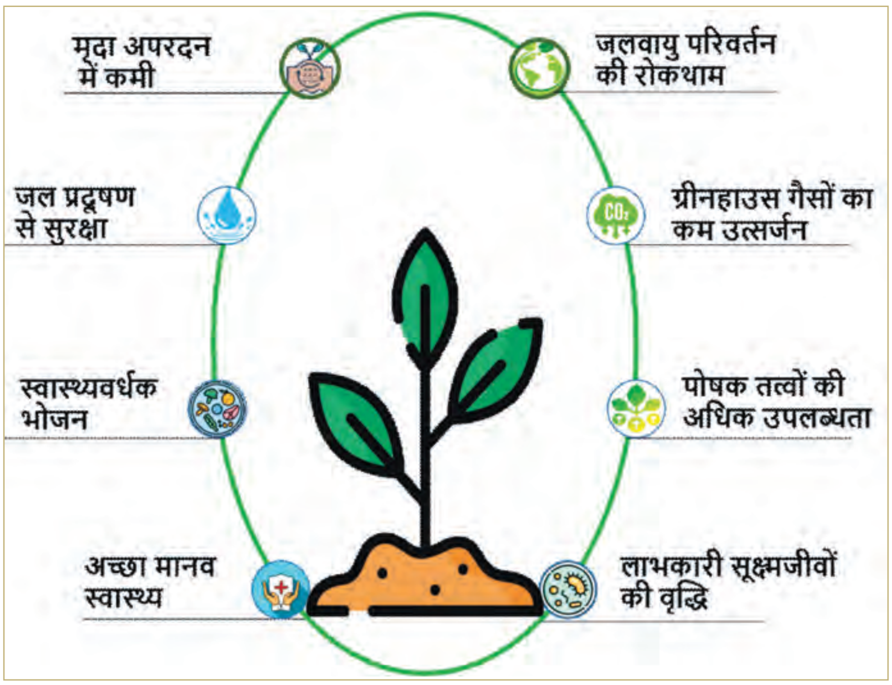

किण्वित जैविक खाद के लाभ

अवशिष्ट को परिष्कृत कर फर्मेंटेड ऑर्गेनिक मैन्योर (एफओएम) में बदला जा सकता है, जो मृदा संरचना, जलधारण क्षमता एवं लाभकारी सूक्ष्मजीवों को प्रोत्साहित कर उर्वरता में वृद्धि करता है। परिणामस्वरूप, यह रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम करता है, मृदा क्षरण को घटाता है तथा दीर्घकालिक कृषि स्थिरता को बढ़ावा देता है।

इस प्रकार, एफओएम का उपयोग न केवल रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम करता है, बल्कि मृदा क्षरण को घटाकर, कार्बन फुटप्रिंट को कम करके और कृषि की दीर्घकालिक स्थिरता को बढ़ावा देकर भारत की खाद्य एवं ऊर्जा सुरक्षा सुनिश्चित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

किण्वित जैविक खाद का मृदा में जल अवशोषण पर प्रभाव

किण्वित जैविक खाद से लाभ

एफओएम नियंत्रित किण्वन द्वारा तैयार की जाती है जो न केवल मृदा की भौतिक, रासायनिक और जैविक विशेषताओं को सुधारती है, बल्कि फसल उत्पादन, पोषण गुणवत्ता और पर्यावरणीय स्थिरता पर भी सकारात्मक प्रभाव डालती है। इस प्रकार, एफओएम का उपयोग टिकाऊ कृषि प्रणाली की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

फसल उत्पादन पर लाभ

- फसलों की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाती है और कीट एवं रोग प्रकोप कम करती है।
- दीर्घकालिक रूप से उपज स्थिरता एवं उच्च गुणवत्ता वाली पैदावार सुनिश्चित करती है।
- पौधों की प्रतिरक्षा प्रणाली को सक्रिय करती है। इसके परिणामस्वरूप पौधे जैविक (कीट एवं रोग) तथा अजैविक (सूखा, लवणता, अनियमित तापमान) तनावों को बेहतर ढंग से सहन कर पाते हैं।
- बीज अंकुरण तेज और समान रूप से होता है, जिससे फसल की प्रारंभिक वृद्धि मजबूत होती है।
- फसल की गुणवत्ता में सुधार और पोषक तत्वों की उच्च उपलब्धता के कारण उच्च गुणवत्ता वाला उत्पादन।
- फलों और सब्जियों की पोषण गुणवत्ता (जैसे-प्रोटीन, विटामिन, खनिज एवं एंटीऑक्सीडेंट्स की मात्रा) में वृद्धि करती है। साथ ही यह उनके स्वाद, बनावट और सुगंध को भी बेहतर बनाती है।

हरित समाधान

किण्वित जैविक खाद (एफओएम) केवल एक पोषक तत्व स्रोत ही नहीं, बल्कि आधुनिक कृषि में सतत विकास का आधार स्तंभ है, जो मृदा की उर्वरता, जलधारण क्षमता और जैविक सक्रियता को बढ़ाकर किसानों को कम लागत में बेहतर उत्पादन उपलब्ध करवाती है, जबकि ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कमी, कार्बन अवशोषण में वृद्धि और कृषि अवशेष प्रबंधन के माध्यम से पर्यावरणीय संतुलन को भी मजबूत बनाती है। यह किसानों की आय में वृद्धि का मार्ग प्रशस्त करती है। जैविक प्रमाणन से उन्हें निर्यात बाजारों में उच्च मूल्य प्राप्त होता है। अतः सतत, लाभकारी और पर्यावरण-संतुलित कृषि प्रणाली की स्थापना हेतु यह आवश्यक है कि एफओएम को मुख्यधारा में लाने के लिए उचित नीतिगत समर्थन, जागरूकता प्रसार, तकनीकी नवाचार और किसान-हितैषी प्रशिक्षण कार्यक्रमों को प्राथमिकता दी जाए। इन संगठित प्रयासों से भारतीय कृषि न केवल आत्मनिर्भर और टिकाऊ बनेगी, बल्कि वैश्विक स्तर पर भी अपनी प्रतिस्पर्धात्मक बढ़त को बढ़ा सकेगी। इससे यह साबित होता है कि किण्वित जैविक खाद (एफओएम) सिर्फ खाद नहीं, बल्कि सतत, समृद्ध और हरित भविष्य की कुंजी है।

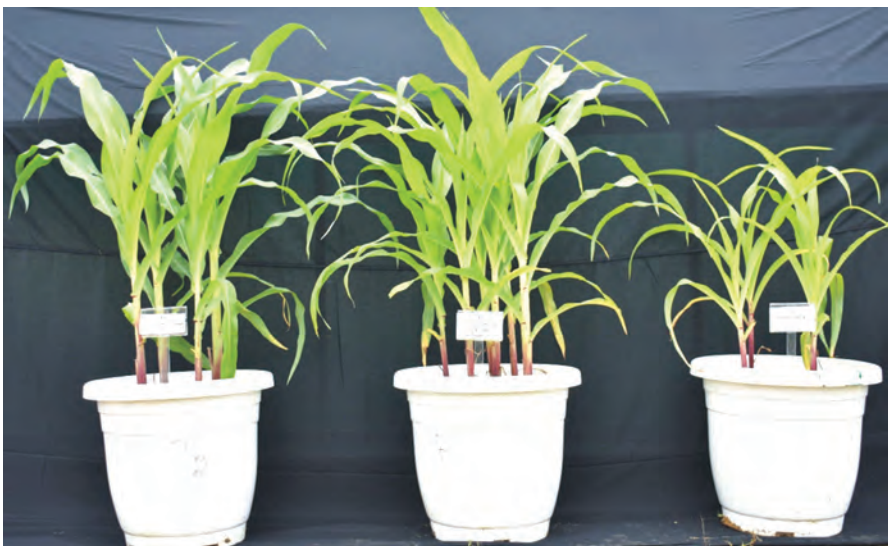

किण्वित जैविक खाद का मक्का की वृद्धि पर प्रभाव

- एफओएम के प्रयोग से उत्पादों की जीवन अवधि लंबी होती है, जिससे भंडारण एवं परिवहन के दौरान गुणवत्ता बनी रहती है। परिणामस्वरूप किसान अपनी उपज के लिए उच्च बाजार मूल्य प्राप्त कर सकते हैं।

पर्यावरण पर प्रभाव

- एफओएम के उपयोग से रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम होती है, जिससे नाइट्रस ऑक्साइड के उत्सर्जन में कमी आती है।
- प्रतिवर्ष उत्पन्न कृषि-अवशेषों का प्रभावी उपयोग वायु प्रदूषण की समस्या को कम करता है।
- पोषक तत्वों का अपक्षय कम होता है, जिससे भूजल में नाइट्रेट और फॉस्फेट प्रदूषण नियंत्रित रहता है।

किण्वित जैविक खाद के अंतर्गत मूंग की फसल

- फसल अवशेषों के जलाने की प्रथा समाप्त होने से वायु प्रदूषण और स्मॉग जैसी समस्याएं कम होती हैं।
- प्राकृतिक संसाधनों का टिकाऊ उपयोग बढ़ता है और पारिस्थितिक तंत्र संतुलन कायम रहता है।
- संपीड़ित बायो-गैस उत्पादन से जीवाश्म ईंधन की खपत कम होती है और स्वच्छ, नवीनीकरणीय ऊर्जा उपलब्ध होती है।
- मृदा में कार्बनिक कार्बन बढ़ने से कार्बन स्टॉक में सुधार होता है और जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभाव कम होते हैं।

किण्वित जैविक खाद का सतत विकास लक्ष्यों में योगदान

किण्वित जैविक खाद मृदा स्वास्थ्य सुधार, सतत कृषि प्रथाओं को बढ़ावा, और पर्यावरणीय संरक्षण के माध्यम से सतत विकास लक्ष्यों में बहुआयामी योगदान प्रदान करती है:

किण्वित जैविक खाद (एफओएम) का सतत विकास लक्ष्यों में योगदान

- **सतत विकास लक्ष्य 2-भूख मिटाना:** मृदा की संरचना और उर्वरता में सुधार से किण्वित जैविक खाद कृषि उत्पादकता बढ़ाती है, जिससे खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित होती है और रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता घटती है।
- **सतत विकास लक्ष्य 6-स्वच्छ जल और स्वच्छता:** किण्वित जैविक खाद की उपयोगिता से मृदा में जलधारण क्षमता बढ़ती है, जिससे जल संरक्षण में सुधार होता है और जल गुणवत्ता सुरक्षित रहती है। इसके प्रयोग से रासायनिक उर्वरकों की मांग कम होती है, जिससे जल प्रदूषण में कमी आएगी।
- **सतत विकास लक्ष्य 7-किफायती और स्वच्छ ऊर्जा:** जैविक अवशेषों से बायोगैस उत्पादन और रासायनिक उर्वरकों की कम खपत के माध्यम से ऊर्जा दक्षता और स्वच्छ ऊर्जा का लक्ष्य प्राप्त होता है।
- **सतत विकास लक्ष्य 9-उद्योग, नवाचार और अवसंरचना:** किण्वित जैविक खाद आधारित टिकाऊ कृषि प्रथाएं नवाचार को बढ़ावा देती हैं और उत्पादन प्रक्रियाओं में तकनीकी सुधार सुनिश्चित करती हैं।
- **सतत विकास लक्ष्य 12-जिम्मेदार खपत और उत्पादन:** जैविक अवशेषों का पुनर्चक्रण, अपशिष्ट निपटान में कमी, और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन नियंत्रण के माध्यम से सतत उत्पादन प्रोत्साहित होगा।
- **सतत विकास लक्ष्य 13-जलवायु कार्रवाई:** मृदा में कार्बन संचयन बढ़ाकर किण्वित जैविक खाद जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभावों को कम करती है और सतत कृषि प्रणालियों को सशक्त बनाती है।

स्वस्थ मृदा के लाभ

किण्वित जैविक खाद का उपयोग मृदा की उर्वरता और स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह खाद मृदा के भौतिक, रासायनिक तथा जैविक गुणों को संतुलित ढंग से सुधारती है। इससे दीर्घकालिक रूप से कृषि उत्पादकता में वृद्धि होती है और सतत कृषि की दिशा में योगदान मिलता है।

- मृदा में कार्बन और ह्यूमस की मात्रा बढ़ती है। इससे मृदा की संरचना सुधारती है और सघनता कम होकर जड़ विकास के लिए अनुकूल वातावरण बनता है।
- जल उपयोग दक्षता में वृद्धि होती है।
- मृदा में सूक्ष्मजीवों की संख्या और जैव विविधता बढ़ती है। इससे जैविक गतिविधि, पोषक तत्वों का चक्रण और प्राकृतिक उर्वरता बनी रहती है।
- मृदा क्षरण और कटाव कम होते हैं।
- मृदा का तापमान और संरचना स्थिर रहती है, जिससे पौधों की वृद्धि पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
- मृदा का पी-एच संतुलित होता है, जिससे अम्लीय या क्षारीय मृदा की समस्याओं का समाधान होता है।
- मुख्य पोषक और सूक्ष्म पोषक तत्व उपलब्ध होते हैं।
- पोषक तत्व धीरे-धीरे मुक्त होते हैं, जिससे लंबे समय तक पोषण उपलब्धता सुनिश्चित होती है।
- मृदा की सकारात्मक आयनिक क्षमता बढ़ती है, जिससे पोषक तत्व अधिक समय तक उपलब्ध रहते हैं।
- मृदा की जलधारण क्षमता में वृद्धि, जिससे फसल सूखा और असमय वर्षा जैसी जलवायु संबंधी चुनौतियों का बेहतर सामना कर सकती है।

कीटों का प्राकृतिक प्रबंधन

श्रवण एम. हलधर

"रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता ने तत्कालीन समस्याओं का समाधान तो किया, लेकिन इसके दीर्घकालीन परिणाम गंभीर रहे हैं। इससे मृदा, जल और वायु में रसायनों का संचय हुआ, जिससे पारिस्थितिकी तंत्र में असंतुलन बढ़ा। कीट अब इन रसायनों से प्रतिरोधी हो रहे हैं और किसानों को बार-बार नई, अधिक विषैली दवाइयों का उपयोग करना पड़ता है। अत्यधिक विषैले कीटनाशकों की सिफारिश नहीं की जानी चाहिए। अक्सर किसान ज्यादा मुनाफा कमाने के लिए कीटनाशकों के असर को समाप्त होने का इंतजार नहीं करते और जल्द ही फसल को बाजार में बेच देते हैं। इस वजह से कीटनाशकों का अवशेष उनमें रह जाता है, जो स्वास्थ्य के लिए गंभीर जोखिम का कारण बनता है। इसलिए फसलों में कीटनाशकों का प्रयोग करते हुए ज्यादा सावधानी बरतनी चाहिए। कीटनाशकों का बार-बार अनुप्रयोग होने से कीटों में प्रतिरोधिता विकसित होने लगती है। इससे वातावरण प्रभावित होता है और कीटों के प्राकृतिक शत्रु नष्ट हो रहे हैं। इन समस्याओं से बचने के लिए प्राकृतिक कीट प्रबंधन साधनों को अपनाना आवश्यक है। अतः रसायन नहीं, बल्कि प्राकृतिक कीट प्रबंधन ही टिकाऊ और सुरक्षित समाधान प्रदान कर सकता है।"

प्राकृतिक कीट प्रबंधन एक ऐसी पद्धति है, जिसमें जैविक उपायों का उपयोग करके कीटों का नियंत्रण किया जाता है। यह न केवल पर्यावरण को सुरक्षित रखती है, बल्कि किसानों की लागत को भी घटाती है। यह पद्धति किसानों को टिकाऊ खेती, बेहतर उत्पादन और पर्यावरण संरक्षण तीनों का लाभ एक साथ प्रदान करती है।

प्रधान वैज्ञानिक, भाकृअनुप-राष्ट्रीय समेकित नाशीजीव प्रबंधन अनुसंधान संस्थान, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110068

रासायनिक नियंत्रण की समस्याएं

- **पर्यावरणीय प्रदूषणः** रसायन मृदा की उर्वराशक्ति को कमजोर करते हैं और जल स्रोतों को दूषित करते हैं।
- **कीट प्रतिरोधः** बार-बार छिड़काव से कीट में जैविक प्रतिरोध विकसित हो जाता है।
- **मानव स्वास्थ्य जोखिमः** कृषि श्रमिकों और उपभोक्ताओं में स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं बढ़ती हैं।
- **आर्थिक बोझः** लगातार महंगे रसायनों की खरीद और नई दवाइयों की खोज किसानों की आय पर संकट बनती है।

प्राकृतिक कीट प्रबंधन

गर्मियों में खेत की गहरी जुताई

कीटों के प्रबंधन में सबसे प्रभावी तरीका खेत की सफाई करना होता है। फल मक्खी, चितकबरी सुंडी, लाल कद्दू बीटल, हाडा बीटल आदि के प्रजनन चक्र और संख्या वृद्धि को तोड़ने के लिए गर्मी के दिनों में

खेत की गहरी जुताई करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त पौधों और फलों के क्षतिग्रस्त भागों को हटाकर नष्ट कर देना चाहिए।

फसल की पंक्तिवार और मिश्रित बुआई

एक ही क्षेत्र में दो या तीन विभिन्न फसलों को एक साथ बोना चाहिए। इससे कीटों द्वारा नुकसान कम होता है। पंक्ति और मिश्रित फसल बोने से खेत की उर्वराशक्ति बढ़ जाती है और पौधे की बढ़वार अच्छी होती है।

ट्रैप फसल उगाना

मुख्य फसल के चारों ओर कीटों से अतिसंवेदनशील या पसंदीदा फसल उगाने को ट्रैप फसल कहते हैं। इससे मुख्य फसल को कीटों से बचाया जा सकता है। गेंदा फसल को अरहर के चारों ओर उगाने से फलीछेदक कीट का प्रकोप कम होता है।

पक्षियों के बैठने का स्टैंड

पक्षी कीटों के लार्वा के शिकारी होते हैं। चने के खेत में पक्षियों के बैठने के स्टैंड लगाने से एवियन पक्षी फलीछेदक के लार्वा को खाते हैं। इससे फसल को कीट से होने वाला नुकसान कम होता है। पके हुए चावल के साथ पानी से भरे एक मिट्टी के बर्तन को स्टैंड की चोटी पर रखने से पक्षी आकर्षित होते हैं।

फसल की पंक्तिवार और मिश्रित बुआई

फेरोमोन ट्रैप द्वारा कीट नियंत्रण

फेरोमोन ट्रैप फल मक्खी के प्रबंधन में अत्यंत प्रभावी है। ये ट्रैप नर मक्खी को आकर्षित करते हैं। इसके अंदर कीटनाशक रखा जाता है, जिससे आकर्षित होकर अंदर आने वाले नर कीट नष्ट हो जाते हैं। परिणामस्वरूप मादा कीट को मेटिंग के लिए नर उपलब्ध नहीं हो पाता और इनकी संख्या नियंत्रित हो जाती है। फेरोमोन ट्रैप के उदाहरण: क्यू लुर, मिथाइल यूजेनॉल, ट्राइमेड लुर आदि।

फेरोमोन ट्रैप

फेरोमोन ट्रैप का उपयोग

- **कीट का पता लगाने के लिए:** प्रति एकड़ 2 से 3 फेरोमोन ट्रैप खेतों में लगाकर कीटों की उपस्थिति और उनकी तीव्रता के बारे में पता लगाया जा सकता है। नर की संख्या के आधार पर नियंत्रण उपायों के समय और आवृत्ति निर्धारित की जाती है।
- **मास ट्रैपिंग:** सेक्स फेरोमोन ट्रैप का उपयोग कीटों की संख्या को सीधे कम करने के लिए किया जाता है। इसके उपयोग से नर कीट की संख्या कम हो जाती है और मादा को संभोग के लिए नर नहीं मिल पाता है। इस प्रकार इन कीटों की प्रजनन क्षमता प्रभावित होती है।

कीटों को एकत्रित कर नष्ट करना

इस विधि में कीट के लार्वा को हाथों से एकत्रित कर, नष्ट कर दिया जाता है। इससे कीटों को ई.टी.एल. के नीचे स्तर पर रखा जा सकता है। इनमें चने की सुंडी, तम्बाकू की इल्ली, चितकबरी सुंडी आदि हानिकारक कीट शामिल हैं।

प्राकृतिक अर्क द्वारा कीट का नियंत्रण

इस विधि में प्राकृतिक पौधों से अर्क तैयार किया जाता है और उस अर्क से कीट का नियंत्रण किया जाता है। जैसे: मवेशी गोबर+गौमूत्र, नीम के बीज का अर्क; तम्बाकू अर्क एवं मिर्च+लहसुन अर्क आदि।

फल को पेपर या प्लास्टिक से ढकना

पौधे के फलों को 2-3 दिनों के अंतराल पर दो परत पेपर या प्लास्टिक से बांधना चाहिए। इससे फल मक्खी अपने अण्डे फलों पर नहीं दे पाती है। इस प्रबंधन से 40-58 प्रतिशत तक फलों को नुकसान होने से बचाया जा सकता है। इस प्रबंधन का उपयोग कद्दूवर्गीय फसलों जैसे-तरबूज, खरबूज, ककड़ी, लौकी, तोरई, कद्दू आदि में किया जाता है।

प्रिडेटर

मवेशी गोबर+गौमूत्र अर्क का छिड़काव

यह अर्क किसानों को कीटों के प्रकोप को कम करने के अलावा पौधों की बढ़वार भी करता है। इस अर्क का छिड़काव शाम 4.00 बजे के बाद करना चाहिए। इस अर्क के छिड़काव से रस चूसने वाले कीटों को कम किया जा सकता है। फसल के पूरे सीजन में इस अर्क का दो या तीन बार छिड़काव करना लाभकारी है।

तैयार करने की विधि

इसे बनाने के लिए 3-5 कि.ग्रा. मवेशी गोबर के साथ 3-5 लीटर गौ मूत्र मिश्रित कर एक टैंक में ढक्कन के साथ चार दिनों के लिए छोड़ दिया जाता है। इसके बाद पारदर्शी कपड़े के माध्यम से इस मिश्रण को छाना जाता है। इसमें 200-250 ग्राम चूना डाला जाता है, जिससे इसकी अम्लता कम हो जाती है। इस अर्क में 50-80 लीटर पानी मिलाकर एक एकड़ भूमि में छिड़काव किया जाता है।

तम्बाकू का अर्क

तम्बाकू का उपयोग मुख्यत: सिगरेट,

कीट का प्रकोप

बीड़ी और चबाने के लिए किया जाता है। लेकिन इसमें उत्कृष्ट कीटनाशक गुण भी पाएं जाते हैं। प्राचीन समय से किसान इसका उपयोग कीटों के नियंत्रण के लिए करते रहे हैं। हालांकि इसके उपयोग से लाभकारी कीटों को नुकसान पहुंचने के कारण इसका प्रयोग सीमित कर दिया गया है।

तैयार करने की विधि

250 ग्राम तम्बाकू को 4 लीटर पानी में आधे घंटे तक उबाला जाता है। इसके बाद इसे मलमल के कपड़े से छाना जाता है। इसमें 30 ग्राम साबुन डालकर अच्छी तरह घोला जाता है। छिड़काव के लिए इस अर्क का एक भाग लेकर उसमें 4 भाग पानी मिलाना आवश्यक है।

मिर्च+लहसुन का अर्क

मिर्च और लहसुन का अर्क बनाकर फसल के कीटों का प्रभावी नियंत्रण किया जा सकता है। इसकी दुर्गंध से मादा कीट अपने अण्डे नहीं दे पाती है। कीट पौधे को इस अर्क के तीखेपन की वजह से खा नहीं पाता है और मर जाता है।

तैयार करने की विधि

इसे तैयार करने के लिए 3-4 कि.ग्रा. हरी मिर्च और 400-700 ग्राम लहसुन लेकर इन्हें अलग से पीसा जाता है। हरी मिर्च को 8-10 लीटर पानी में और लहसुन 150-200 मि.ली. मिट्टी के तेल में घोला जाता है। दोनों को अलग-अलग छाना जाता है। इसके बाद दोनों को मिलाकर 50 ग्राम साबुन डालकर छाना जाता है। एक भाग अर्क का और 4 भाग पानी मिलाकर पौधों पर छिड़काव लाभकारी है।

जैविक नियंत्रण

कीटों और रोगों का नियंत्रण जैविक तरीकों से करने का अर्थ है, जीवित जीवों के प्रयोग से फसलों को कीटों से होने वाले नुकसान से बचाना। कुछ बायोकंट्रोल एंजेट्स इस प्रकार हैं:

पैरासिटॉइड्स: ये ऐसे जीव हैं, जो अपने अंडे मेजबान के शरीर में या उनके ऊपर रखते हैं और मेजबान के शरीर में ही अपना जीवनचक्र पूरा करते हैं। परिणामस्वरूप, होस्ट की मृत्यु हो जाती है। एक पैरासिटॉइड्स का जीवन मेजबान के विकास चक्र पर निर्भर करता है। इसके आधार पर वह अपना जीवनचक्र पूरा करता है। उदाहरण के लिए, अंडा, लार्वा, प्यूपा, अंडा-लार्वा और लार्वा-प्यूपा पैरासिटॉइड्स। इनमें *ट्राइकोगामा, अपेंटेल्स, बैराकॉन, चेलनस, ब्राकैमेरिया, सूडोगॉनोटोपस* आदि पैरासिटाइल विभिन्न प्रजातियां शामिल हैं।

भृंग

प्रीडेटर्स

ये स्वतंत्र रूप से रहने वाले जीव होते हैं, जो आहार के लिए दूसरे जीवों पर निर्भर रहते हैं। उदाहरण: मकड़ियां, ड्रैगन मक्खियां, डेमसेल मक्खी, लेडी बर्ड, भृंग, क्रायसोपा प्रजातियां एवं पक्षी आदि।

रोगाणु: ये सूक्ष्मजीव होते हैं, जो दूसरे जीवों में रोग का संचार कर देते हैं, परिणामस्वरूप दूसरे जीव मर जाते हैं। रोगाणु के बड़े समूह, फंगी, वायरस और बैक्टीरिया होते हैं। कुछ संक्रामक कीटों में कुछ नेमाटोड्स रोग उत्पन्न कर देते हैं।

कीट प्रतिरोधक पौधे लगाना

कीट प्रतिरोधक पौधे समन्वित कीट प्रबंधन में एक महत्वपूर्ण घटक हैं। ये पौधे किसी भी तरह प्रतिकूल पर्यावरण प्रभाव उत्पन्न करते हैं और किसानों को कोई अतिरिक्त लागत भी वहन नहीं करनी पड़ती है। अत: अधिक उपज देने वाले पौधों और कीट प्रतिरोधी फसल किस्मों को उगाना चाहिए जैसे-टिण्डा की अर्का टिण्डा एवं कद्दू की अर्का सूर्यमुखी जैसी किस्में कीट प्रतिरोधकता के लिए उपयुक्त मानी जाती है।

रासायनिक कीटनाशक केवल तात्कालिक राहत देते हैं, लेकिन इनकी दीर्घकालिक लागत बहुत अधिक होती है। प्राकृतिक कीट प्रबंधन टिकाऊ, सुरक्षित और किफायती विकल्प है, जो पारिस्थितिकी तंत्र, किसानों और समाज-तीनों के हित में काम करता है। अब समय आ गया है कि रसायन नहीं, बल्कि प्रकृति के सिद्धान्तों का समर्थन करें और सतत कृषि पद्धतियों को अपनाएं।

नीम की निम्बोली का अर्क (एन.एस.के.ई. 5 प्रतिशत)

फसल पर नीम की निम्बोली के अर्क का छिड़काव करना लाभकारी होता है। इससे पौधे की पत्तियों में दुर्गंध आती है और कीट उस पत्ती को खा नहीं पाता है। साथ ही अर्क की दुर्गंध से कीट अपने अण्डे पत्तियों पर नहीं दे पाता है।

तैयार करने की विधि: इस अर्क को बनाने के लिए 5 कि.ग्रा. निम्बोली को चक्की से महीन पाउडर बनाकर 20 लीटर पानी में रातभर के लिए भिगोया जाता है। दूसरे दिन इस मिश्रण को सूती कपड़े से छानकर इसमें 80 लीटर पानी मिलाकर खेत में छिड़काव करना लाभकारी माना जाता है।

सिफारिश

- नीम की निम्बोली तोड़ने के बाद छाया में सुखाएं।
- आठ महीनों से अधिक पुरानी निम्बोली का उपयोग न करें।
- अर्क का छिड़काव शाम के समय करना चाहिए।

ट्रैप फसल का उपयोग लाभकारी

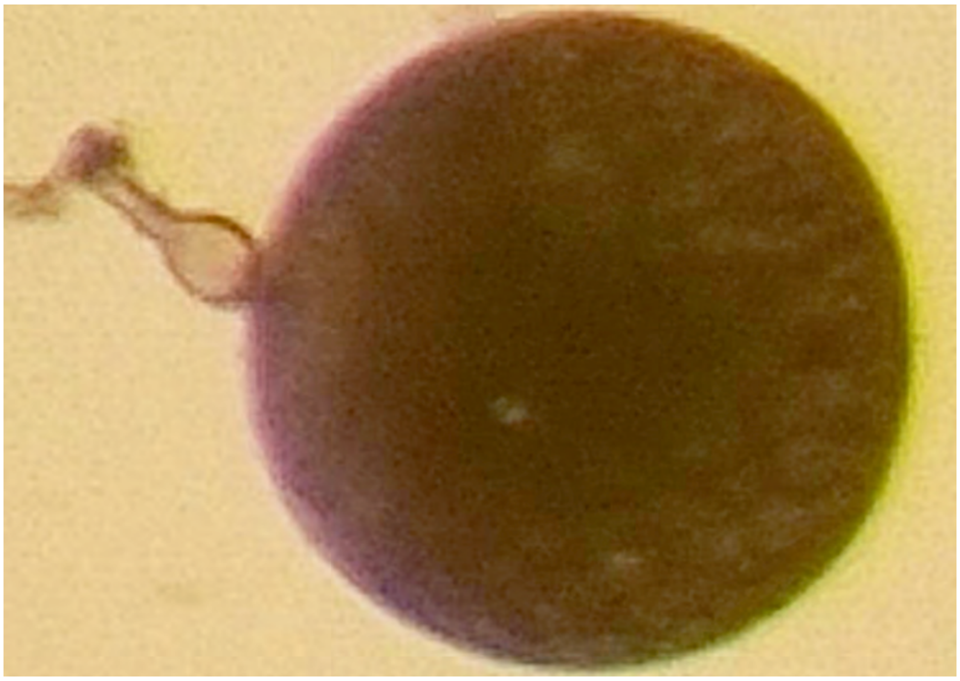

मृदा में सूक्ष्मजीवों की भूमिका

हर्ष वर्धन सिंह, अभिजीत कश्यप, उदय भान सिंह, नाजिया मंजर और **ज्योति प्रकाश सिंह**

उच्च जनसंख्या दबाव के बीच सीमित संसाधनों से पोषक एवं पर्याप्त आहार की निरंतर उपलब्धता सुनिश्चित करना एक जटिल चुनौती है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए हरित क्रांति को अपनाया गया, जिसने कृषि उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि की। किंतु, रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक एवं असंतुलित प्रयोग ने अनेक नई समस्याएं उत्पन्न कर दीं। इनसे न केवल कृषि संसाधनों का प्रदूषण बढ़ा, बल्कि मृदा के स्वास्थ्य पर भी गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा, जिससे उत्पादन लागत में लगातार वृद्धि हो रही है। इन चुनौतियों के समाधान के रूप में कृषि में सूक्ष्मजीवों का प्रयोग एक प्रभावी विकल्प बनकर उभरा है। प्राकृतिक खेती को प्रोत्साहन देना भी इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। सूक्ष्मजीव वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण, पोषक तत्वों का चक्रण, अघुलनशील तत्वों को घुलनशील बनाकर फसलों को उपलब्ध करवाकर तथा पौध वृद्धि हार्मोन का निर्माण कर फसल विकास में योगदान देते हैं। इसके अतिरिक्त, ये पौधों को रोग एवं कीटों से सुरक्षा प्रदान कर जैव नियंत्रण में भी अहम भूमिका निभाते हैं। भारत में जैव-उर्वरकों और जैव-कीटनाशकों का तेजी से बढ़ता उपयोग इनके उज्ज्वल भविष्य की ओर संकेत करता है।

मृदा एक जटिल एवं परिवर्तनशील पारिस्थितिकी तंत्र है, जिसमें अनेक प्रकार के सूक्ष्मजीवों की प्रजातियां निवास करती हैं। मृदा सूक्ष्मजीवों में मुख्यत: बैक्टीरिया, कवक, एक्टिनोमाइसीट्स और शैवाल शामिल हैं। ये सूक्ष्मजीव मृदा में होने वाली विभिन्न क्रियाओं जैसे कार्बनिक उत्पादों का अपघटन, जटिल पोषक तत्वों को घुलनशील बनाकर पौधों को उपलब्ध करवाना आदि में सक्रिय भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार ये मृदा की उर्वरता को बनाए रखने में अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

भाकृअनुप-राष्ट्रीय कृषि उपयोगी सूक्ष्मजीव ब्यूरो कुशमौर, मऊ-275103 (उत्तर प्रदेश)

सूक्ष्मजीवों द्वारा मृदा में अनेक प्रकार के एंजाइम जैसे यूरीएज, प्रोटीएज तथा फॉस्फोमोनोएस्ट्रेज का उत्पादन होता है, जो विशिष्ट रासायनिक प्रक्रियाओं को संपन्न करने में सहयोग करते हैं। सूक्ष्मजीव विविधता का सीधा संबंध मृदा की उर्वरता से होता है। मृदा में विभिन्न सूक्ष्मजीव एक प्रकार का गोंद (एक्सोपॉलीसैकेराइड) स्रावित करते हैं, जो मृदा कणों को आपस में जोड़कर स्थायी संरचना (मृदा पुंज या मृदा समुच्चय) का निर्माण करता है। इस प्रक्रिया में माइकोराइजा की विशेष भूमिका होती है। मृदा सूक्ष्मजीव बायोमास एवं विविधता प्राय: मृदा के सूक्ष्म कणों में अधिक पाई जाती है।

सूक्ष्मजीवों को उनके कार्यों एवं पौधों पर प्रभाव के आधार पर दो वर्गों में बांटा जाता है। पहला फसल उत्पादन को प्रभावित करने वाले सूक्ष्मजीव और दूसरा पौधों को कीट एवं रोगों से सुरक्षा प्रदान करने वाले सूक्ष्मजीव।

नाइट्रोजन स्थिरीकरण में राइजोबियम एवं ब्रेडीराइजोबियम का उपयोग दलहनी फसलों में, जबकि एजोटोबैक्टर और एजोस्पाइरिलम का प्रयोग धान्य फसलों में किया जाता है। माइकोराइजा का प्रयोग फॉस्फोरस की

मृदा संरचना में सुधार

सूक्ष्मजीव मृदा की संरचना को स्थायी और सुसंगठित बनाने में भी मदद करते हैं। जीवाणु बाह्य कोशिकीय पॉलीसैकेराइड का स्राव करते हैं, जो छोटे मृदा के कणों को जोड़कर स्थिर समुच्चय बनाते हैं। कवक अपने हाइफे के जाल द्वारा मृदा के कणों को आपस में बांधते हैं, जिससे सरंध्रता बढ़ती है। इस प्रकार बनने वाले मृदा समुच्चय जल एवं वायु संचार में सुधार करते हैं, कटाव को कम करते हैं तथा पौधों की जड़ों की वृद्धि और पोषक अवशोषण को बढ़ावा देते हैं। परिणामस्वरूप मृदा अधिक उपजाऊ, संघनन-प्रतिरोधी और स्थायी संरचना वाली बनती है।

उपलब्धता बढ़ाने के लिए किया जाता है। वहीं, ट्राइकोडर्मा हरजिनियम, ट्राइकोडर्मा विरिडी, बैसिलस सबटिलिस, फ्लुरोसेंट स्यूडोमोनास, ब्यूवेरिया बेसियाना तथा मेटाराइजियम एनीसोप्ली जैसे जैव-उर्वरक पौधों को रोगों एवं कीटों से सुरक्षा प्रदान करने में सहायक हैं।

भारत में जैव-उर्वरकों और जैव-कीटनाशकों का बाजार तेजी से विस्तार कर रहा है। वर्ष 2025 में भारत में जैव-उर्वरकों का बाजार लगभग 152.5 मिलियन अमेरिकी डॉलर मूल्य का है, जिसकी वार्षिक वृद्धि दर 10.11 प्रतिशत है। वहीं जैव-जीवनाशियों का बाजार 242.2 मिलियन अमेरिकी डॉलर मूल्य का है, जिसकी वार्षिक वृद्धि दर 9.53 प्रतिशत दर्ज की गई है।

भारत सरकार द्वारा प्रोत्साहित प्राकृतिक खेती का मुख्य आधार भी सूक्ष्मजीवों का कृषि में उपयोग बढ़ाना ही है। प्रस्तुत लेख में मृदा में पाए जाने वाले सूक्ष्मजीवों के प्रकार, उनकी कृषि में विशिष्ट भूमिकाएं, रासायनिक उर्वरकों के विकल्प के रूप में उनकी उपयोगिता तथा मृदा के स्वास्थ्य एवं दीर्घकालिक उत्पादकता को बनाए रखने में उनकी भूमिका पर प्रकाश डाला गया है।

मृदा एक जीवंत पारिस्थितिकी तंत्र है, जिसमें सूक्ष्मजीवों की अद्‌भुत विविधता पाई जाती है। मृदा पारिस्थितिकी में यह सूक्ष्मजीव विविधता मृदा की उर्वरता, उत्पादकता तथा पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। विशेष रूप से बैक्टीरिया और कवक नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, सल्फर तथा पोटेशियम जैसे पोषक तत्वों के जैव-भू-रासायनिक चक्रों में सक्रिय भूमिका निभाते हैं।

कार्बनिक उत्पादों का अपघटन

मृदा की उर्वरता बनाए रखने के लिए कार्बनिक उत्पादों का अपघटन अत्यंत आवश्यक है। यह मृदा में कार्बनिक कार्बन

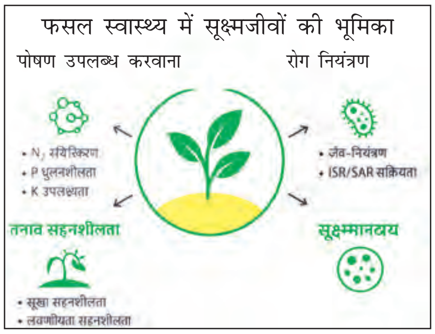

सूक्ष्मजीवों की भूमिका

की पूर्ति करता है और पौधों को आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध करवाता है। बैक्टीरिया और कवक जैसे सूक्ष्मजीव पौधों एवं पशुओं के अपशिष्ट उत्पादों को विघटित कर सरल यौगिकों में परिवर्तित करते हैं।

कवक जैसे ट्राइकोडर्मा, एस्परजिलस और पेनिसिलियम तथा ऐक्टिनोमाइसीट्स जैसे स्ट्रेप्टोमाइसीज, लिग्निन, सेलुलोज और काइटिन जैसे जटिल यौगिकों को तोड़कर ह्यूमस का निर्माण करते हैं। यह ह्यूमस मृदा की संरचना को स्थिर रखता है, जलधारण क्षमता बढ़ाता है और पोषक तत्वों के भंडार के रूप में कार्य करता है।

नाइट्रोजन स्थिरीकरण

नाइट्रोजन स्थिरीकरण एक अनूठी जैविक प्रक्रिया है, जिसमें वायुमंडलीय नाइट्रोजन को अमोनिया में परिवर्तित किया जाता है, जिसे पौधे सीधे अवशोषित कर सकते हैं। राइजोबियम फलीदार पौधों की जड़ों में सहजीवी गांठें बनाकर नाइट्रोजन स्थिर करता है। फ्रैंकिया कुछ गैर-दलहनी पौधों में सक्रिय रहता है। एजोटोबैक्टर और एजोस्पाइरिलम जैसे गैर-सहजीवी जीवाणु भी मृदा के नाइट्रोजन स्तर को बढ़ाते हैं। क्लोस्ट्रीडियम ऑक्सीजन-रहित परिस्थितियों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करता है। सायनोबैक्टीरिया (जैसे एनाबीना और नोस्टोक) विशेषकर धान की खेती में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होते हैं।

फॉस्फोरस घुलनशीलता

मृदा में फॉस्फोरस प्रायः अघुलनशील रूप में पाया जाता है। फॉस्फेट-घुलनशील सूक्ष्मजीव इसे पौधों के लिए उपयोगी घुलनशील रूप में परिवर्तित कर देते हैं।

स्यूडोमोनास और बैसिलस मेगाटेरियम जैसे जीवाणु कार्बनिक अम्ल स्रावित करके अघुलनशील फॉस्फेट को घुलनशील रूप में बदलते हैं। ये सूक्ष्मजीव कार्बनिक अम्लों द्वारा धनायनों को अलग करते हैं और ऐसे एंजाइम स्रावित करते हैं जो कार्बनिक फॉस्फोरस का खनिजीकरण करते हैं। इस प्रक्रिया से मृदा

सारणी: सूक्ष्मजीवों द्वारा किये जाने वाले कार्य

पोषक तत्व	प्रमुख सूक्ष्मजीव	कार्य
नाइट्रोजन	राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, एजोस्पिरिलम, क्लॉस्ट्रीडियम, नास्टॉक, एजोला-एनाबीना	वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण
फॉस्फोरस	स्यूडोमोनास, बैसिलस, मेगाटेरियम, एस्परजिलस, पेनिसिलियम, ग्लोमस स्पीशीज	अघुलनशील फॉस्फेट को घुलनशील बनाना
पोटेशियम	बैसिलस म्यूसिलजिनोसस फ्राटेउरिआ ऑरेंटिया एस्परजिलस	खनिजों से पोटाश निकालकर पौधों को उपलब्ध कवाना
सल्फर	थायोबैसिलस थिओऑसीडेंस, डिसल्फोवीब्रो स्पीशीज डियोसल्फोटोमाकुलम	सल्फर का ऑक्सीकरण
जिंक	स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस, बैसिलस सबटिलिस, ग्लुकोबैक्टर स्पीशीज	जिंक का घुलनशीलन

मृदा उर्वरता में सूक्ष्मजीवों का महत्व

रासायनिक उर्वरकों के निरंतर और अत्यधिक उपयोग से मृदा स्वास्थ्य में गिरावट आई है, जिसके परिणामस्वरूप दीर्घकालिक उत्पादकता में कमी देखी जा रही है। ऐसे समय में जैव-उर्वरक और जैविक कृषि पद्धतियां अत्यंत प्रासंगिक एवं आवश्यक हो गई हैं। ये न केवल पौधों को आवश्यक पोषण उपलब्ध करवाती हैं, बल्कि मृदा की जीवंतता, सूक्ष्मजीव विविधता और पारिस्थितिक संतुलन को भी बनाए रखती हैं। इसके अतिरिक्त, ये मृदा में कार्बन चक्र को स्थिर कर जलवायु परिवर्तन को नियंत्रित करने में योगदान देती हैं। इस प्रकार, सूक्ष्मजीव आधारित उर्वरक और टिकाऊ कृषि पद्धतियां न केवल वर्तमान कृषि की उत्पादकता और लाभप्रदता सुनिश्चित करती हैं, बल्कि भविष्य की सुरक्षित, सतत् और पर्यावरण अनुकूल खेती की दिशा में भी एक मजबूत आधार प्रदान करती हैं।

की उर्वरता एवं फसल उत्पादकता दोनों में वृद्धि होती है।

सूक्ष्मजीव पोषक तत्व आपूर्ति, रोग दमन और प्रतिरक्षा सक्रियता द्वारा फसल स्वास्थ्य को सुदृढ़ करते हैं।

फसल स्वास्थ्य की दृष्टि से सूक्ष्मजीवों को मुख्यत: दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है-रोगजनक सूक्ष्मजीव और लाभकारी सूक्ष्मजीव। पहली श्रेणी में वे रोगजनक सूक्ष्मजीव आते हैं, जो पौधों में विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं। प्रमुख कवकीय रोगजनकों में अल्टरनेरिया, फ्यूजेरियम, बाइपोलैरिस और कर्वुलैरिया शामिल हैं, जो पत्तियों में धब्बे, गलन, झुलसा तथा ब्लाइट जैसे लक्षण उत्पन्न करते हैं। जीवाणुजन्य रोगजनकों में राल्स्टोनिया सोलानेसेरम, जैंथोमोनास कैम्पेस्ट्रिस तथा स्यूडोमोनास सिरिंजी उल्लेखनीय हैं, जो फसलों में मुरझान, पत्ती झुलसा तथा अन्य हानिकारक लक्षण उत्पन्न करते हैं।

दूसरी श्रेणी में आने वाले लाभकारी सूक्ष्मजीव पौधों के स्वास्थ्य में सुधार लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये सूक्ष्मजीव पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाते हैं, वृद्धि-प्रवर्धक हार्मोन का निर्माण करते हैं तथा रोगजनकों के विरुद्ध रक्षा प्रदान करते हैं। रोग नियंत्रण में ये सूक्ष्मजीव विभिन्न तंत्रों से सक्रिय रहते हैं, जैसे-प्रत्यक्ष प्रतियोगिता, एंटीबायोटिक यौगिकों का उत्पादन, एंजाइम स्राव तथा मायकोपैरासिटिज्म।

ट्राइकोडर्मा आधारित जैव-फंगीसाइड, बैसिलस एवं स्यूडोमोनास पर आधारित बायोफॉर्मुलेशन तथा एंडोफाइटिक कवक पिरिफॉर्मोस्पोरा इंडिका जैसे सूक्ष्मजीव अनेक पौध रोगों के नियंत्रण में अत्यंत प्रभावी सिद्ध हुए हैं। ये न केवल रोगों को दबाते हैं बल्कि पौधों की वृद्धि और प्रतिरोधक क्षमता में भी वृद्धि करते हैं।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में, जब रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक प्रयोग से पर्यावरणीय प्रदूषण, मृदा उर्वरता में कमी और स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं रही हैं, तब सूक्ष्मजीव-आधारित जैव उर्वरक, जैव-फंगीसाइड और वाष्पशील कार्बनिक यौगिक टिकाऊ कृषि का आधार बनकर उभरे हैं। इनका एकीकृत उपयोग न केवल फसल उत्पादन की स्थिरता बनाए रखने में सहायक है, बल्कि कृषि को अधिक पर्यावरण-अनुकूल, सुरक्षित और दीर्घकालिक रूप से उत्पादक बनाने की दिशा में भी महत्वपूर्ण कदम है।

फसल स्वास्थ्य में सूक्ष्मजीवों की भूमिका

फसल स्वास्थ्य का संबंध केवल पौधों की वृद्धि तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें पोषक तत्वों की उपलब्धता, रोग प्रतिरोधक क्षमता तथा प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों के प्रति सहनशीलता भी सम्मिलित होती है। फसल स्वास्थ्य को बनाए रखने में सूक्ष्मजीवों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। ये न केवल पौधों को आवश्यक पोषण प्रदान करते हैं, बल्कि रोगजनकों से रक्षा, तनाव सहिष्णुता और जैविक संतुलन बनाए रखने में भी सहायक होते हैं। सूक्ष्मजीव पौधों की जड़ों के आसपास (राइजोस्फियर) जटिल पारिस्थितिक संबंध स्थापित करते हैं, जिससे पौधों की वृद्धि और स्वास्थ्य पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। वे पौधों को नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, सल्फर और सूक्ष्म पोषक तत्व उपलब्ध करवाने के साथ-साथ वृद्धि-उत्तेजक हार्मोन भी उत्पन्न करते हैं। इसके अलावा, कुछ लाभकारी सूक्ष्मजीव रोगजनक फफूंदों और जीवाणुओं के विरुद्ध जैव-नियंत्रण एजेंट के रूप में कार्य करते हैं, जिससे रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता घटती है।

संभावनाएं

सूक्ष्मजीव-आधारित प्रबंधन पद्धतियां न केवल रोग नियंत्रण में प्रभावी सिद्ध हो रही हैं, बल्कि मृदा स्वास्थ्य, पौधों की प्रतिरोधक क्षमता और उत्पादकता को भी सुदृढ़ बना रही हैं। भविष्य की दिशा में अनेक नए पहलू और अवसर उभर रहे हैं जो इस क्षेत्र को और अधिक व्यापक, वैज्ञानिक और प्रभावशाली बना सकते हैं।

वर्तमान में सूक्ष्मजीवों की पहचान और वर्गीकरण के लिए उच्च स्तरीय आणविक तकनीकों जैसे मेटाजिनोमिक्स, ट्रांस्क्रिप्टोमिक्स, प्रोटीओमिक्स और मेटाबोलोमिक्स का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है। इन तकनीकों के माध्यम से ऐसे विशिष्ट सूक्ष्मजीवों का चयन संभव होगा जो किसी विशेष रोग या परिस्थिति के विरुद्ध सर्वाधिक प्रभावी हों।

भविष्य में कृत्रिम बुद्धिमत्ता और मशीन लर्निंग तकनीकों के प्रयोग से सूक्ष्मजीव आधारित रोग निदान और रोग पूर्वानुमान अधिक सटीक, तेज और क्षेत्र उपयुक्त बन सकेंगे। इन तकनीकों के सहयोग से रोगग्रस्त क्षेत्रों में लक्षित रूप से जैव नियंत्रण एजेंटों का छिड़काव या अनुप्रयोग संभव होगा।

हाल के शोधों से यह भी स्पष्ट हुआ है कि कई सूक्ष्मजीव अपने द्वारा उत्पन्न वाष्पशील कार्बनिक यौगिकों के माध्यम से पौधों की रोग-प्रतिरोधक क्षमता को सक्रिय कर सकते हैं। भविष्य में इन वाष्पशील यौगिकों को बायोफॉर्मुलेशन के रूप में विकसित कर किसानों तक पहुंचाया जा सकेगा।

इसी प्रकार, नैनों प्रौद्योगिकी और सूक्ष्मजीवों के संयोजन से ऐसे नैनो-बायोफॉर्मुलेशन विकसित किए जा रहे हैं जिनकी स्थायित्व, प्रभावकारिता और रोग नियंत्रण क्षमता पारंपरिक उत्पादों से कहीं अधिक होगी। इसके साथ ही, कृत्रिम सूक्ष्मजीव समुदाय पर भी शोध केंद्रित हो रहा है, जिसमें विभिन्न लाभकारी सूक्ष्मजीवों को संयोजित कर एक कृत्रिम पारिस्थितिकी तंत्र तैयार किया जाएगा। यह प्रणाली पौधों को अनेक रोगों से एक साथ सुरक्षा देने के साथ-साथ पोषण, वृद्धि और प्रतिरोधकता को भी बढ़ाएगी।

भविष्य में जीन-संपादन तकनीकें, विशेषकर क्रिसपर केस, लाभकारी सूक्ष्मजीवों की क्षमता को बढ़ाने में क्रांतिकारी भूमिका निभाएंगी। इन तकनीकों के माध्यम से ऐसे जीन सक्रिय किए जा सकते हैं जो रोग प्रतिरोध, जैव-नियंत्रण या पौधों में 'इम्यून-प्राइमिंग' के लिए उत्तरदायी हों। इससे 'सुपर-बायोकंट्रोल एजेंट्स' की नई पीढ़ी का विकास संभव होगा।

इसके अतिरिक्त, भविष्य में सूक्ष्मजीवों का चयन इस आधार पर किया जाएगा कि वे चरम जलवायु परिस्थितियों जैसे अत्यधिक ताप, लवणता या सूखे में भी सक्रिय रहकर पौधों की रक्षा कर सकें।

अंतत: इस क्षेत्र की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता होगी। स्पष्ट नीति और विनियामक ढांचे का निर्माण, जिससे अनुसंधान प्रयोगशालाओं से किसानों के खेतों तक इन तकनीकों का तीव्र हस्तांतरण सुनिश्चित हो सके।

इस प्रकार, फसल स्वास्थ्य में सूक्ष्मजीवों की भूमिका भविष्य में केवल रोग प्रबंधन तक सीमित नहीं रहेगी, बल्कि यह कृषि पारिस्थितिकी को अधिक टिकाऊ, उत्पादक और पर्यावरण अनुकूल बनाने की दिशा में एक निर्णायक कदम सिद्ध होगी।

तकनीक आधारित टिकाऊ और लाभकारी कृषि प्रणाली

कपिला शेखावत, संजय सिंह राठौर, राजीव कुमार सिंह, प्रवीण कुमार उपाध्याय और **रामेश्वर पांडे**

"21वीं सदी के अंत तक विश्व जनसंख्या के 11 अरब तक पहुंचने का अनुमान है, जिसके परिणामस्वरूप खाद्य मांग अभूतपूर्व स्तर तक बढ़ेगी और वर्ष 2050 तक वैश्विक खाद्य उत्पादन को लगभग 170 प्रतिशत तक बढ़ाने की आवश्यकता होगी। शहरीकरण, बदलती जीवनशैली और पशु-आधारित प्रोटीन की बढ़ती खपत ने कृषि पर अतिरिक्त दबाव डाला है। दूसरी ओर, कृषि योग्य भूमि की उत्पादकता लगातार घट रही है। लगभग 25 प्रतिशत भूमि अनुपयुक्त और 44 प्रतिशत आंशिक रूप से अनुर्वर हो चुकी है। जल संकट, वनों की कटाई, भूजल क्षरण, अत्यधिक खेती, चराई तथा खाद्य अपशिष्ट जैसी समस्याएं स्थिति को और गंभीर बना रही हैं। जलवायु परिवर्तन का प्रतिकूल प्रभाव खाद्य उत्पादन एवं कृषि स्थिरता पर स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है। इन परिस्थितियों से निपटने के लिए 'कृषि 4.0' अथवा स्मार्ट फार्मिंग की अवधारणा तेजी से उभर रही है। यह एक तकनीक आधारित प्रणाली है, जिसमें सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी, इंटरनेट ऑफ थिंग्स, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, ड्रोन, सैटेलाइट इमेजिंग, रिमोट सेंसिंग और सटीक कृषि उपकरणों का उपयोग किया जाता है। स्मार्ट फार्मिंग संसाधनों का कुशल प्रबंधन सुनिश्चित करती है, उत्पादन लागत घटाकर किसानों की आय और उत्पादकता में वृद्धि करती है, डिजिटल प्लेटफॉर्म (जैसे ई-नाम) के माध्यम से बाजार पहुंच को आसान बनाती है और ड्रिप एवं स्प्रिंक्लर जैसी जल-कार्यक्षम तकनीकों द्वारा जलवायु अनुकूलता प्रदान करती है। अत: यह पारंपरिक कृषि को अधिक टिकाऊ, लाभकारी और भविष्य सक्षम उद्यम में परिवर्तित करने का प्रभावी साधन है।"

भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

भारत में प्रचलित पारंपरिक कृषि आज बदलते सामाजिक-आर्थिक और पर्यावरणीय परिदृश्यों के कारण गंभीर चुनौतियों का सामना कर रही है। बढ़ती जनसंख्या, सीमित भूमि एवं जल संसाधन, मृदा की उर्वरता में गिरावट, जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न अस्थिरताएं और उत्पादन लागत में वृद्धि प्रमुख समस्याएं हैं।

देश की अर्थव्यवस्था में कृषि की केंद्रीय भूमिका बनी हुई है। वर्ष 2024-25 में कृषि एवं संबद्ध क्षेत्रों का सकल मूल्यवर्धन में योगदान 17.9 प्रतिशत और प्राथमिक क्षेत्र का कुल योगदान 19.7 प्रतिशत दर्ज किया गया। आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण वर्ष 2023-24 के अनुसार, कुल कार्यबल का लगभग 46.1 प्रतिशत भाग कृषि पर निर्भर है। आर्थिक सर्वेक्षण, वर्ष 2024-25 दर्शाता है कि वर्ष 2017-2023 तक कृषि क्षेत्र की औसत वार्षिक वृद्धि दर 5 प्रतिशत रही। अत: कृषि न केवल भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है, बल्कि खाद्य एवं पोषण सुरक्षा का आधार भी है। इसलिए, इसे टिकाऊ और भविष्य सक्षम बनाने के लिए आधुनिक तकनीकों और स्मार्ट फार्मिंग की अवधारणा का होना अनिवार्य है।

स्मार्ट फार्मिंग

स्मार्ट फार्मिंग केवल परंपरागत तरीकों पर निर्भर न होकर, डेटा आधारित निर्णयों पर केंद्रित होती है। जैसे-मृदा की नमी और तापमान को सेंसर द्वारा मापा जा सकता है। ड्रोन के माध्यम से खेतों की निगरानी की जा सकती है। मोबाइल ऐप पर वास्तविक समय में फसल से संबंधित जानकारी प्राप्त की जा सकती है। स्मार्ट फार्मिंग तकनीक और परंपरागत खेती का संतुलित संगम है। किसान अब केवल अनुभव पर निर्भर नहीं रहता, बल्कि वैज्ञानिक डेटा और आधुनिक उपकरणों की मदद से फसल प्रबंधन करता है। इसका उद्देश्य कम संसाधनों में अधिक उत्पादन करना, पानी और उर्वरक की बचत करना तथा फसलों को रोग एवं जलवायु परिवर्तन के जोखिम से सुरक्षित रखना है।

तकनीकें

स्मार्ट फार्मिंग में प्रयुक्त आधुनिक तकनीकें पारंपरिक कृषि की सीमाओं को दूर करने में व्यावहारिक रूप से प्रभावी होती हैं। खेत में स्थापित आईओटी आधारित सेंसर मृदा की नमी, तापमान और पोषक तत्वों की वास्तविक समय पर निगरानी करते हैं तथा यह डेटा वायरलेस नेटवर्क के माध्यम से सीधे किसान तक पहुंचता है। इस सूचना

किसानों की आय और उपज की गुणवत्ता में सुधार

स्मार्ट कृषि में डिजिटल प्लेटफॉर्म और ई-मार्केटिंग किसानों को सीधे उपभोक्ताओं से जोड़ने का अवसर प्रदान करते हैं, जिससे बिचौलियों की भूमिका कम होकर किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य मिलता है। वैज्ञानिक पद्धति से फसल प्रणाली का चयन करने पर उत्पादन क्षमता और लाभप्रदता दोनों में वृद्धि होती है। इसके साथ ही, खण्ड श्रृंखला आधारित कार्य निर्वाह क्षमता और आपूर्ति श्रृंखला पारदर्शिता को यह सुनिश्चित करती है कि उपभोक्ता तक पहुंचने वाली उपज सुरक्षित, गुणवत्तापूर्ण और विश्वसनीय हो। इससे न केवल किसानों की आय बढ़ती है, बल्कि कृषि उत्पादों का बाजार मूल्य और ब्रांड मूल्य भी सुदृढ़ होता है।

स्मार्ट फार्मिंग तकनीकें

के आधार पर किसान सिंचाई और उर्वरक प्रबंधन के सटीक निर्णय ले सकते हैं। इसी प्रकार, ड्रोन का उपयोग फसल में रोग पहचान, कीटनाशक छिड़काव और खेत की मैपिंग में किया जाता है, जबकि रोबोटिक्स खरपतवार नियंत्रण, कटाई तथा पैकेजिंग जैसे श्रम-प्रधान कार्यों को स्वचालित करता है।

उपग्रह इमेजिंग और जीआईएस तकनीक

सारणी 1. स्मार्ट फार्मिंग में प्रयुक्त प्रमुख तकनीक की उपयोगिता

तकनीक	अनुप्रयोग	उपयोगिता
इंटरनेट ऑफ थिंग्स आईओटी और संसर	संसर मृदा की नमी, तापमान, पोषक तत्व और मौसम की स्थिति को रियल-टाइम में मापते हैं।	ये संसर वायरलेस नेटवर्क के माध्यम से डेटा किसान के मोबाइल तक पहुंचाते हैं। इससे सिंचाई, उर्वरक और कीटनाशक के सही समय एवं मात्रा का निर्णय संभव होता है।
ड्रोन और रोबोटिक्स	ड्रोन फसल निगरानी, कीटनाशक छिड़काव और खेत की मैपिंग करते हैं।	हाई-रिजॉल्यूशन कैमरे रोग, कीट या पोषण की कमी पहचानते हैं। रोबोटिक्स खरपतवार नियंत्रण, कटाई और पैकेजिंग जैसे कार्यों को स्वचालित करते हैं।
उपग्रह इमेजिंग और जीआईएस	उपग्रह चित्र भूमि उपयोग, फसल स्वास्थ्य और मौसम की जानकारी देते हैं।	जीआईएस के साथ मिलकर खेत-विशिष्ट विश्लेषण संभव होता है, जिससे उर्वरक एवं पानी का सटीक उपयोग किया जा सके।
आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) और मशीन लर्निंग (एमएल)	एआई फसल वृद्धि, रोग पहचान और उपज पूर्वानुमान में सहायक है।	एमएल एल्गोरिद्म बड़े डेटा का विश्लेषण कर निर्णय प्रक्रिया को तेज एवं सटीक बनाते हैं। उदाहरण-एआई आधारित ऐप अगले 5 दिनों की सिंचाई की आवश्यकता का पूर्वानुमान कर सकता है।
स्मार्ट सिंचाई प्रणाली	केवल आवश्यक मात्रा में पानी उपलब्ध कर 30-50 प्रतिशत तक जल बचत करती है।	आईओटी संसर और स्वचालित वॉल्व सुनिश्चित करते हैं कि पौधों को जरूरत के अनुसार ही सिंचाई मिले।
मोबाइल ऐप और क्लाउड कंप्यूटिंग	किसानों को मौसम, बाजार मूल्य और रियल टाइम डेटा मोबाइल पर मिलता है।	क्लाउड प्लेटफॉर्म खेत से प्राप्त डेटा को संग्रहित एवं विश्लेषित करते हैं, जिससे वैज्ञानिक और किसान मिलकर बेहतर निर्णय ले सकते हैं।

सारणी 2. स्मार्ट फार्मिंग तकनीकों के लाभ

लाभ	विवरण	तथ्य
उत्पादन में वृद्धि	आईओटी संसर, ड्रोन, एआई के माध्यम से फसल स्वास्थ्य की सतत निगरानी होती है। रोग, कीट एवं पोषण की कमी का समय रहते समाधान संभव होता है।	कृषि मंत्रालय के अनुसार, स्मार्ट तकनीक अपनाने वाले खेतों में औसतन 15-25 प्रतिशत अधिक उपज
संसाधन बचत	स्मार्ट सिंचाई (ड्रिप/स्प्रिंक्लर), सटीक उर्वरक एवं कीटनाशक छिड़काव से जल, ऊर्जा एवं रसायनों की बचत होती है।	जल शक्ति मंत्रालय के आंकड़ों के अनुसार, ड्रिप सिंचाई से 30-40 प्रतिशत जल एवं उर्वरक खपत में 20 प्रतिशत कमी
जोखिम प्रबंधन	एआई/एमएल आधारित मौसम पूर्वानुमान और फसल बीमा मॉडल किसानों को पहले से सचेत करते हैं, जिससे नुकसान कम होता है।	2023-24 में आईएमडी के सहयोग से एआई आधारित चेतावनी प्रणाली से 18 राज्यों में 40 लाख किसानों को समय रहते सूचना मिली और नुकसान में 20-25 प्रतिशत कमी
पर्यावरण संरक्षण	रसायनों की न्यूनतम खपत, जल संरक्षण और सतत कृषि पद्धतियों से भूमि, जल एवं जैव विविधता की रक्षा होती है।	एफएओ रिपोर्ट 2024 के अनुसार, स्मार्ट खेती से ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में 17 प्रतिशत कमी तथा जैव विविधता सूचकांक में सुधार हुआ
आर्थिक समृद्धि	अधिक उपज और कम लागत से किसान की आय बढ़ती है। डिजिटल मार्केटप्लेस (ई-नाम आदि) से सीधे खरीददार तक पहुंच संभव होती है।	आर्थिक सर्वेक्षण 2024-25 के अनुसार, तकनीकी अपनाने वाले किसानों की आय में औसतन 5.23 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हुई। ई-नाम पर 2.5 करोड़ किसान पंजीकृत हैं।

सारणी 3. स्मार्ट कृषि की प्रमुख चुनौतियां और समाधान

चुनौतियां	विवरण	समाधान
उच्च प्रारंभिक लागत	सेंसर, ड्रोन, आईओटी डिवाइस, स्वचालित ट्रैक्टर और ग्रीनहाउस तकनीक जैसे उपकरण की अधिक कीमत	सरकार द्वारा सब्सिडी, आसान ऋण, सहकारी मॉडल और साझा संसाधन केंद्र की स्थापना, जिससे छोटे किसान भी महंगे उपकरणों का उपयोग कर सकें।
तकनीकी ज्ञान और प्रशिक्षण की कमी	अधिकांश किसान डिजिटल साक्षरता, डेटा एनालिटिक्स और स्मार्ट उपकरणों के संचालन में निपुण नहीं हैं। प्रशिक्षण और तकनीकी सहयोग का अभाव	किसानों के लिए डिजिटल साक्षरता कार्यक्रम, मोबाइल-ऐप आधारित प्रशिक्षण, कृषि विश्वविद्यालयों और कृषि विज्ञान केंद्र द्वारा नियमित कार्यशालाएं।
अवसंरचना की कमी	ग्रामीण क्षेत्रों में स्थायी बिजली आपूर्ति, हाई-स्पीड इंटरनेट और मोबाइल नेटवर्क की कमी	ग्रामीण क्षेत्रों में ब्रॉडबैंड इंटरनेट, मोबाइल नेटवर्क और सौर ऊर्जा-आधारित बिजली आपूर्ति का विस्तार। डिजिटल अवसंरचना मजबूत करना।
डेटा गोपनीयता और सुरक्षा	कृषि डेटा का दुरुपयोग, साइबर हमले और निजी जानकारी की चोरी	कड़े साइबर सुरक्षा नियम, डेटा एन्क्रिप्शन, किसानों को डेटा स्वामित्व का अधिकार और सुरक्षित क्लाउड सेवाओं का प्रयोग।
जलवायु एवं क्षेत्रीय विविधता	विभिन्न क्षेत्रों की मृदा, जलवायु और संसाधन उपलब्धता में बड़ा अंतर	स्थान-विशिष्ट तकनीक का विकास, एआई आधारित मौसम पूर्वानुमान, और स्थानीय मृदा एवं जलवायु के अनुसार मॉडल का प्रयोग।
नीति और वित्तीय सहायता की कमी	सरकारी योजनाओं, सब्सिडी और ऋण सुविधाओं की सीमित उपलब्धता	समर्थनकारी नीतियां, वित्तीय संस्थानों से आसान ऋण, स्टार्टअप्स को प्रोत्साहन, और कृषि बीमा योजनाओं का विस्तार।
सामाजिक स्वीकृति और परंपरागत सोच	ग्रामीण समाज में नई तकनीकों को अपनाने को लेकर संकोच	किसानों के बीच प्रदर्शन प्लॉट, सफल किसानों की कहानियों का प्रसार, और स्थानीय स्तर पर तकनीक दूत बनाकर विश्वास बढ़ाना।

भूमि उपयोग तथा फसल की स्थिति का विस्तृत विश्लेषण प्रदान करती है। इससे संसाधनों का स्थान-विशिष्ट प्रबंधन संभव होता है। इसके अतिरिक्त, एआई और मशीन लर्निंग एल्गोरिद्म बड़े डेटा का विश्लेषण कर रोग पूर्वानुमान तथा उत्पादन की भविष्यवाणी को अधिक सटीक बनाते हैं।

स्मार्ट सिंचाई प्रणालियां पानी की 30-50 प्रतिशत तक बचत करती हैं। अंततः, मोबाइल एप्स और क्लाउड कम्प्यूटिंग किसानों को मौसम, बाजार मूल्य तथा प्रबंधन संबंधी जानकारी तक तुरंत पहुंच उपलब्ध करवाते हैं। इन सभी तकनीकों का समन्वित उपयोग कृषि उत्पादन को टिकाऊ, लागत-प्रभावी और भविष्य-उन्मुख बनाने में सहायक है।

स्मार्ट कृषि अनुप्रयोगों के मुख्य उद्देश्य

संसाधनों का कुशल उपयोग

स्मार्ट कृषि का सबसे महत्वपूर्ण अनुप्रयोग संसाधनों के कुशल उपयोग में देखा जा सकता है। पारंपरिक खेती में जल, उर्वरक और ऊर्जा का अत्यधिक एवं अंधाधुंध उपयोग होता है। इससे लागत बढ़ने के साथ-साथ पर्यावरण पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत, स्मार्ट सिंचाई प्रणालियां जैसे-ड्रिप और स्प्रिंक्लर प्रणाली आईओटी सेंसर से नियंत्रित होकर वास्तविक आवश्यकता अनुसार ही पानी उपलब्ध करवाती हैं। इससे जल का अपव्यय रुकता है और लगभग 30-40 प्रतिशत तक पानी की बचत संभव होती है। इसी प्रकार, सटीक पोषण प्रबंधन से उर्वरक और कीटनाशक केवल उतनी ही मात्रा में प्रयोग होते हैं, जितनी पौधों को आवश्यकता होती है। इससे लागत घटती है और मृदा एवं जल प्रदूषण में कमी आती है। सौर ऊर्जा आधारित पम्प तथा लो-पॉवर आईओटी उपकरण किसानों को ऊर्जा-दक्ष एवं किफायती समाधान प्रदान करते हैं।

पर्यावरणीय प्रभाव को न्यूनतम करना

स्मार्ट कृषि तकनीकें पर्यावरणीय स्थिरता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। सटीक खेती के माध्यम से उर्वरक और कीटनाशकों का अत्यधिक उपयोग रोका जाता है, जिससे मृदा और जल स्रोतों पर पड़ने वाला प्रदूषण कम होता है। इसके साथ उन्नत उपकरणों और ऊर्जा-दक्ष प्रणालियों के प्रयोग से कार्बन उत्सर्जन में कमी आती है। इससे जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभावों को काफी हद तक कम किया जा सकता है। स्मार्ट कृषि मृदा की सेहत पर विशेष ध्यान देती है। इसके परिणामस्वरूप मृदा की उर्वरता, जैव विविधता और पारिस्थितिक संतुलन संरक्षित रहते हैं।

स्थायी समाधान

स्मार्ट कृषि आधुनिक कृषि प्रणाली की ओर एक महत्वपूर्ण कदम है, जो संसाधनों के कुशल उपयोग के माध्यम से उत्पादकता, लाभप्रदता और स्थिरता को बढ़ावा देती है। सेंसर, ड्रोन, आईओटी, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और डेटा-आधारित प्रबंधन जैसी तकनीकें किसानों को जल, उर्वरक तथा कीटनाशकों का सटीक एवं नियंत्रित उपयोग करने में सक्षम बनाती हैं। इसके परिणामस्वरूप उत्पादन लागत घटती है, उपज में वृद्धि होती है तथा पर्यावरणीय प्रभाव में कमी आती है।

उचित नीतिगत समर्थन, वित्तीय सहयोग और सामाजिक जागरूकता के माध्यम से चुनौतियों को दूर किया जा सकता है। स्मार्ट कृषि केवल एक तकनीकी विकल्प नहीं, बल्कि खाद्य सुरक्षा, पर्यावरणीय स्थिरता और किसानों की आर्थिक समृद्धि की कुंजी है। यदि इसे व्यापक रूप से अपनाया जाए, तो यह भारत को 'कृषि 5.0 युग' की ओर अग्रसर कर, एक स्थायी और समावेशी कृषि भविष्य का मार्ग प्रशस्त करेगी।

स्मार्ट कृषि की चुनौतियों का समाधान

स्मार्ट कृषि के व्यापक कार्यान्वयन में विविन्न चुनौतियां मौजूद हैं। उच्च प्रारंभिक लागत एक गंभीर अवरोधक है। उन्नत उपकरण जैसे-सेंसर, ड्रोन, आईओटी आधारित उपकरण तथा ग्रीनहाउस प्रौद्योगिकियां लघु एवं सीमांत किसानों की वित्तीय पहुंच से दूर होती हैं। इसके अतिरिक्त, तकनीकी ज्ञान और डिजिटल साक्षरता का अभाव किसानों को इन तकनीकों का प्रभावी उपयोग करने से वंचित करता है। ग्रामीण अवसंरचना की अपर्याप्तता, जैसे-अविरल विद्युत आपूर्ति, उच्च गति इंटरनेट और मोबाइल नेटवर्क की कमी, इस प्रक्रिया को और जटिल बनाती है। कृषि डेटा की गोपनीयता एवं साइबर सुरक्षा से संबंधित जोखिम तथा जलवायु एवं क्षेत्रीय विविधता के कारण तकनीकी हस्तक्षेपों का सार्वभौमिक प्रभाव संदिग्ध रहता है। नीतिगत और वित्तीय सहयोग का अभाव तथा पारंपरिक सोच एवं सामाजिक हिचकिचाहट भी तकनीक के प्रसार को सीमित करती हैं।

मृदा स्वास्थ्य हेतु चुनौतियों का समाधान

अमृत लाल मीणा[1]**, मोहम्मद आरिफ**[1]**, पूनम कश्यप**[1]**, रघुवीर सिंह**[1] और **प्रकाश चंद घासल**[2]

मृदा स्वास्थ्य कृषि उत्पादकता, पर्यावरणीय संतुलन और मानव कल्याण की आधारशिला है। किंतु अत्यधिक रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग, भूमि अपरदन, कार्बनिक उत्पादों की कमी तथा प्रदूषण के कारण मृदा की गुणवत्ता तेजी से क्षीण हो रही है। इसके परिणामस्वरूप फसल उत्पादकता में गिरावट, पोषक तत्व असंतुलन और खाद्य गुणवत्ता में कमी देखी जा रही है। मृदा स्वास्थ्य के संरक्षण और सुधार के लिए वैज्ञानिक उपाय जैसे-संरक्षण कृषि, फसल विविधीकरण, हरी खाद, जैविक एवं वर्मीकम्पोस्ट, समेकित पोषक प्रबंधन, सूक्ष्म पोषक तत्वों का संतुलित उपयोग तथा जल-संरक्षण तकनीकें अत्यंत प्रभावी सिद्ध हो रही हैं। इन उपायों के माध्यम से न केवल मृदा की उर्वरता को पुनर्जीवित किया जा सकता है, बल्कि सतत कृषि विकास और दीर्घकालिक खाद्य सुरक्षा भी सुनिश्चित की जा सकती है।

मृदा मानव सभ्यता की आधारशिला है तथा कृषि उत्पादन, खाद्य सुरक्षा और पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता में इसका अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है। स्वस्थ मृदा ही स्वस्थ फसल और पोषक आहार का मूल स्रोत है।

मृदा स्वास्थ्य से आशय केवल इसकी भौतिक, रासायनिक और जैविक विशेषताओं की स्थिति से नहीं है, बल्कि यह फसल उत्पादकता, पोषक तत्व उपलब्धता, जलधारण क्षमता और पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने की क्षमता का भी द्योतक है। ऐसे में उन्नत उत्पादन, संतुलित पोषण और मृदा-पौधे-मानव-पर्यावरण के लिए स्वस्थ मृदा की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है।

21वीं सदी तकनीकी उन्नति, वैज्ञानिक नवाचार और जलवायु परिवर्तन का युग है। तेजी से बदलती कृषि पद्धतियां, रासायनिक उर्वरकों का अंधाधुंध प्रयोग, भूमि उपयोग में असंतुलन, तथा शहरीकरण और औद्योगिकीकरण ने मृदा स्वास्थ्य के समक्ष गंभीर चुनौतियां खड़ी की हैं। मृदा स्वास्थ्य के बिगड़ने से न केवल खाद्य उत्पादन प्रभावित होता है, बल्कि पोषण सुरक्षा, जैव विविधता और जलवायु संतुलन पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

संयुक्त राष्ट्र खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुसार, विश्व में प्रतिवर्ष लगभग 24

मृदा स्वास्थ्य में समन्वय आवश्यक

वैज्ञानिक अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि भारत की लगभग 30 प्रतिशत कृषि भूमि विभिन्न स्तरों पर मृदा क्षरण और पोषण असंतुलन की समस्या से जूझ रही है। लगातार एक ही प्रकार की फसल उगाना, फसलचक्र का अभाव, अविवेकपूर्ण सिंचाई और असंतुलित उर्वरक उपयोग के कारण मृदा में जैविक कार्बन, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश और अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा घटती जा रही है। इसके परिणामस्वरूप मृदा की जलधारण क्षमता, जैव विविधता और सूक्ष्मजीव गतिविधियां कमजोर हो रही हैं। विश्व बैंक एवं भाकृअनुप की रिपोर्टों के अनुसार, भारत की मृदा में औसतन केवल 0.3-0.4 प्रतिशत जैविक कार्बन उपलब्ध है, जबकि उत्पादकता बनाए रखने हेतु यह स्तर 1 प्रतिशत से अधिक होना चाहिए। मृदा में बढ़ती लवणता, अम्लता, क्षारीयता, भारी धातुओं का प्रदूषण, पोषक तत्वों का असंतुलन तथा जैविक कार्बनिक उत्पादों की कमी प्रमुख मानवजनित चुनौतियां हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण, सामाजिक सहभागिता और नीतिगत समन्वय आवश्यक है।

[1]भाकृअनुप-भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान, मोदीपुरम, मेरठ-250110 (उत्तर प्रदेश); [2]भाकृअनुप-विवेकानंद पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा-263601 (उत्तराखण्ड)

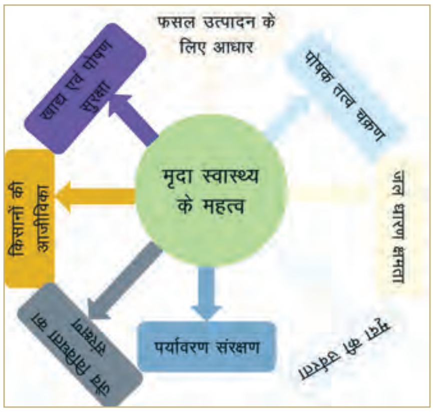

मृदा स्वास्थ्य के महत्व के बहुआयाम

सारणी 1. मृदा स्वास्थ्य से संबंधित प्रमुख चुनौतियां

चुनौती	विवरण	प्रभाव
मृदा कार्बन में गिरावट	अत्यधिक जुताई, अवशेष प्रबंधन की कमी एवं रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक प्रयोग	मृदा की उर्वरता (11-23 प्रतिशत तक की कमी) एवं जलधारण क्षमता (15-18 प्रतिशत तक) घटती है।
पोषक तत्व असंतुलन	नाइट्रोजन का अत्यधिक प्रयोग, फॉस्फोरस एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी	फसल उत्पादकता और गुणवत्ता में कमी
मृदा अपरदन	हवा और पानी द्वारा ऊपरी उपजाऊ परत का क्षरण	कार्बनिक पदार्थ (5.3-22.4 प्रतिशत तक का कमी) एवं पोषक तत्वों की हानि
लवणता एवं क्षारीयता	सिंचाई जल की खराब गुणवत्ता और अधिक सिंचाई	मृदा संरचना बिगड़ती है, फसल वृद्धि रुकती है
मृदा प्रदूषण	कीटनाशकों, भारी धातुओं और औद्योगिक अपशिष्टों का प्रभाव	सूक्ष्मजीव गतिविधि घटती है (माइक्रोबियल बायोमास कार्बन में 20-70 प्रतिशत तक की कमी) और स्वास्थ्य जोखिम बढ़ते हैं
जैव विविधता में कमी	रासायनिक आदान और एकल फसल प्रणाली	पोषक तत्व चक्रण एवं मृदा गुणवत्ता प्रभावित
जलभराव एवं सघनता	अनुचित सिंचाई और भारी मशीनरी का उपयोग	ऑक्सीजन की कमी और जड़ों का अवरुद्ध विकास

अरब टन उपजाऊ मृदा का क्षरण हो रहा है। भारत में भी औसतन 5-5.5 टन प्रति हैक्टर उपजाऊ मृदा हर वर्ष बहकर नदियों और समुद्र में चली जाती है। यह स्थिति 21वीं सदी की सबसे गंभीर पर्यावरणीय चुनौतियों में से एक है।

मृदा स्वास्थ्य संरक्षण हेतु मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना, एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन, जैव उर्वरकों का उपयोग, फसल अवशेष प्रबंधन, संरक्षण कृषि तथा जैविक खेती जैसी तकनीकें अत्यंत प्रभावी सिद्ध हो रही हैं। इसके साथ ही, फसलचक्र, हरी खाद और आच्छादन फसलों के उपयोग से मृदा की उर्वरता एवं जैविक सक्रियता को पुनर्स्थापित किया जा सकता है। शून्य जुताई, मल्चिंग और जल-संरक्षण तकनीकें न केवल मृदा क्षरण को रोकती हैं, बल्कि कार्बन संवर्धन में भी सहायक हैं।

यदि किसानों को समय पर मृदा परीक्षण, संतुलित पोषण प्रबंधन और आधुनिक कृषि तकनीकों का प्रशिक्षण प्रदान किया जाए, तो 21वीं सदी में भी मृदा की गुणवत्ता को सुरक्षित रखते हुए सतत कृषि उत्पादन एवं खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती है।

समाधान

मृदा स्वास्थ्य में सुधार के लिए पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक विज्ञान का समन्वय अत्यंत आवश्यक है, ताकि सतत कृषि और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके। विविध फसलचक्र अपनाने से मृदा में पोषक तत्व संतुलित रहते हैं और दलहनी फसलें नाइट्रोजन स्थिरीकरण कर उर्वरता बढ़ाती हैं। संरक्षण कृषि जैसे न्यूनतम जुताई, फसल अवशेष प्रबंधन और आवरण फसलें मृदा की संरचना और जैव विविधता को बनाए रखने में मदद करती हैं। जैविक खाद, हरी खाद और वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से मृदा में कार्बन बढ़ता है और सूक्ष्मजीव गतिविधियां सक्रिय होती हैं। इसके साथ ही, संतुलित उर्वरक उपयोग, सूक्ष्म पोषक तत्वों और जैव उर्वरकों का समुचित प्रयोग मृदा की दीर्घकालिक उत्पादकता को सुनिश्चित करता है।

मृदा स्वास्थ्य

मृदा स्वास्थ्य से तात्पर्य मृदा की उस क्षमता से है, जिसके द्वारा वह पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक पोषक तत्व, जल और वायु का उपयुक्त संतुलन बनाए रख सके। इसके साथ ही, मृदा के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों का संतुलन बनाए रखते हुए दीर्घकालिक उत्पादकता और पारिस्थितिकी तंत्र की आवश्यक सेवाएं प्रदान कर सके।

स्वस्थ मृदा का महत्व

फसल उत्पादन का आधार

स्वस्थ मृदा पौधों को पर्याप्त पोषक तत्व, जल और वायु उपलब्ध करवाती है, जिससे उच्च गुणवत्ता एवं मात्रा में उत्पादन संभव होता है। वैज्ञानिक अध्ययनों से यह सिद्ध हुआ है कि स्वस्थ मृदा बेहतर पोषक तत्व चक्रण, जलधारण क्षमता और जैविक गतिविधियों के माध्यम से फसल उत्पादकता को उल्लेखनीय रूप से बढ़ाती है।

पोषक तत्व चक्रण

पोषक तत्व चक्रण मृदा-वनस्पति-जीव प्रणाली की एक मूलभूत प्रक्रिया है। इसके माध्यम से नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश, जैविक कार्बन एवं सूक्ष्म तत्व पुनः उपलब्ध होते हैं। मृदा में उपस्थित जीवाणु, फफूंद, केंचुए आदि जीव पोषक तत्वों का खनिजीकरण कर उन्हें पौधों की जड़ों तक पहुंचाते हैं। वैज्ञानिक शोधों के अनुसार, प्रभावी पोषक चक्रण से रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता 20-30 प्रतिशत तक घटाई जा सकती है, जबकि उत्पादन में 10-15 प्रतिशत तक वृद्धि संभव है।

जलधारण क्षमता

जैविक उत्पादों से समृद्ध मृदा अपनी संरचना एवं जैविक गतिविधियों को संतुलित रखती है, जिससे उसकी जलधारण क्षमता में वृद्धि होती है। वैज्ञानिक अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि मृदा में जैविक कार्बन की मात्रा में 1 प्रतिशत की वृद्धि, जलधारण क्षमता को लगभग 1.5-2.0 लाख लीटर प्रति हैक्टर तक बढ़ा सकती है।

मृदा की उर्वरता

स्वस्थ मृदा अपनी भौतिक, रासायनिक और जैविक विशेषताओं का संतुलन बनाए रखते हुए दीर्घकालिक उर्वरता सुनिश्चित करती है। इसमें पर्याप्त कार्बनिक पदार्थ, पोषक तत्वों का भंडार तथा सक्रिय सूक्ष्मजीव समुदाय उपस्थित होते हैं, जो नाइट्रोजन खनिजीकरण, फॉस्फोरस घुलनशीलता और पोटाश उपलब्धता को बढ़ाते हैं।

पर्यावरण संरक्षण

स्वस्थ मृदा कार्बन का अवशोषण कर

जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों को कम करती है और प्रदूषण नियंत्रण में सहायक होती है। यह ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को भी सीमित करती है, जिससे पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने में मदद मिलती है।

जैव विविधता का संरक्षण

स्वस्थ मृदा सूक्ष्मजीवों, केंचुओं, कीटों एवं अन्य जीवों का प्राकृतिक आवास है। ये सभी जीव मृदा की उर्वरता, पोषक तत्व चक्रण और पारिस्थितिकी संतुलन बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

किसानों की आजीविका

स्वस्थ मृदा से फसल उत्पादन टिकाऊ और स्थिर रहता है, जिससे किसानों की आय और आजीविका सुरक्षित होती है। मृदा की गुणवत्ता में सुधार से कृषि की लाभप्रदता और दीर्घकालिक स्थिरता बढ़ती है।

खाद्य एवं पोषण सुरक्षा

पोषक तत्वों से भरपूर मृदा ही पौष्टिक अनाज, फल और सब्जियां उत्पन्न कर सकती है, जो मानव स्वास्थ्य और पोषण सुरक्षा के लिए आवश्यक हैं।

मृदा स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियां

मृदा स्वास्थ्य से जुड़ी चुनौतियां बहुआयामी हैं, जो सीधे तौर पर कृषि उत्पादकता, खाद्य एवं पोषण सुरक्षा तथा पर्यावरणीय संतुलन पर प्रभाव डालती हैं।

बढ़ती जनसंख्या, सीमित प्राकृतिक संसाधन और सघन कृषि तकनीकों के प्रचलन के बाद, मृदा स्वास्थ्य आज कृषि और पर्यावरण दोनों के लिए सबसे गंभीर चुनौती बन गया है। लगातार भूमि क्षरण, असंतुलित रासायनिक उर्वरक प्रयोग, जलवायु परिवर्तन और जनसंख्या दबाव से मृदा की गुणवत्ता घट रही है। यदि मृदा स्वास्थ्य बिगड़ता रहा, तो खाद्य सुरक्षा, पोषण, किसान आय और पारिस्थितिकी संतुलन सभी पर गंभीर संकट उत्पन्न होगा।

समाधान के रूप में एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन, जैविक एवं प्राकृतिक कृषि, संरक्षण कृषि, कृषिवानिकी, सूक्ष्म सिंचाई और कार्बन फार्मिंग जैसी तकनीकें आवश्यक हैं। इसके साथ ही, मृदा स्वास्थ्य कार्ड, किसानों का प्रशिक्षण और नीति स्तरीय समर्थन भी अनिवार्य हैं। अंततः कहा जा सकता है कि 'स्वस्थ मृदा ही स्वस्थ मानव जीवन का आधार है।' 21वीं सदी में मृदा स्वास्थ्य की रक्षा के बिना सतत विकास, खाद्य सुरक्षा और पर्यावरणीय संतुलन सुनिश्चित करना असंभव है।

सारणी 2. भारत में मृदा क्षरण-स्थिति,कारण और चुनौतियां

विषय	वैज्ञानिक तथ्य/आंकड़े
कुल क्षतिग्रस्त भूमि	लगभग 147 मिलियन हैक्टर भूमि प्रभावित
मुख्य कारण	• जल अपरदन : 94 मिलियन हैक्टर • वायु अपरदन : 9 मिलियन हैक्टर • अम्लीकरण : 16 मिलियन हैक्टर • लवणता/क्षारीयता : 6 मिलियन हैक्टर • बाढ़ एवं जल जमाव : 14 मिलियन हैक्टर • अन्य (खनन, शहरीकरण, भूमि उपयोग परिवर्तन) : 7 मिलियन हैक्टर
वार्षिक मृदा क्षरण	औसतन 16.4 टन मृदा/हैक्टर/वर्ष; कुल मिलाकर लगभग 5.3 अरब टन मृदा हर वर्ष नष्ट होती है।
गंभीर चुनौतियां	• मृदा कार्बनिक उत्पादों की कमी और उपजाऊ शक्ति का ह्रास • पोषक तत्व असंतुलन (एनपीके एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी) • मृदा जैव विविधता और एंजाइम गतिविधि में कमी • जलधारण क्षमता और संरचना का ह्रास • कृषि उत्पादकता, किसान आय और खाद्य सुरक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव

लवणता एवं क्षारीय प्रभाव

लवणता और क्षारीयता की बढ़ती समस्या, विशेषकर सिंचाई आधारित क्षेत्रों में, मृदा की उर्वराशक्ति और फसल उत्पादकता को गंभीर रूप से सीमित करती है। इसी प्रकार, अम्लीय मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता कम हो जाती है, जिससे पौधों का विकास प्रभावित होता है। इसके अलावा, लगातार एक ही प्रकार का फसलचक्र अपनाने से मृदा में सूक्ष्मजीव विविधता और जैविक गतिविधियां भी घटती हैं। ये सभी कारक मिलकर मृदा स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं और सतत कृषि तथा खाद्य सुरक्षा के लिए गंभीर संकट उत्पन्न करते हैं। मृदा स्वास्थ्य में गिरावट केवल कृषि उत्पादकता और पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालती, बल्कि लंबी अवधि में यह मृदा-पौधा-मानव-पर्यावरण संतुलन के साथ-साथ अर्थव्यवस्था पर भी नकारात्मक असर डालती है।

सारणी 3. मृदा स्वास्थ्य सुधार हेतु वैज्ञानिक समाधान एवं प्रभाव

समाधान	वैज्ञानिक साक्ष्य/डेटा	प्रभाव
फसलचक्र एवं दलहनी फसलें	दलहनी फसलें प्रति हैक्टर 30-60 कि.ग्रा./ नाइट्रोजन स्थिरीकरण करती हैं (एफएओ, 2020)	रासायनिक नाइट्रोजन उर्वरक की आवश्यकता घटती है, मृदा उर्वरता सुधरती है
संरक्षित कृषि	भारत में 10 वर्ष के अध्ययन में जैविक कार्बन 0.36 प्रतिशत से बढ़कर 0.55 प्रतिशत हुआ (भाकृअनुप, 2022	मृदा कार्बन संचयन, अपरदन में 25-30 प्रतिशत कमी, उत्पादकता में 10-15 प्रतिशत वृद्धि
जैविक खाद एवं कम्पोस्ट	वर्मीकम्पोस्ट से उपलब्ध नाइट्रोजन में 15-20 प्रतिशत वृद्धि (भाकृअनुप, 2019)	सूक्ष्मजीव गतिविधि बढ़ी, फसल की गुणवत्ता एवं उत्पादन में सुधार
हरी खाद	ढैंचा से प्रति हैक्टर 4-5 टन जैविक पदार्थ एवं 80-100 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की आपूर्ति (एनबीएसएसएलयूपी, 2021)	जैविक कार्बन और मृदा की संरचना में सुधार
समेकित पोषक प्रबंधन	रासायनिक+जैविक खाद के प्रयोग से गेहूं की उपज 12-15 प्रतिशत अधिक (सीआईएमएमवाईटी, 2020)	दीर्घकालिक मृदा उर्वरता एवं सतत उत्पादन
जल एवं भूमि संरक्षण तकनीकें	मल्चिंग से मृदा की नमी धारण क्षमता में 20-25 प्रतिशत वृद्धि (भाकृअनुप-क्रीडा, 2021)	सूखा सहनशीलता एवं फसल उत्पादकता में वृद्धि
प्रदूषण नियंत्रण एवं अपशिष्ट प्रबंधन	औद्योगिक अपशिष्ट मुक्त क्षेत्रों में सूक्ष्मजीव विविधता 40 प्रतिशत अधिक (एनईईआरआई, 2018)	स्वस्थ मृदा पारिस्थितिकी तंत्र और सुरक्षित खाद्य उत्पादन

मृदा के स्वास्थ्य संवर्धन हेतु कृषिवानिकी

आशाराम, अशोक यादव, हृदयेश अनुरागी, सुशील कुमार, शोभन देबनाथ और **ए. अरुणाचालम**

"कृषिवानिकी जैसी बहुवर्षीय प्रणालियां मृदा के स्वास्थ्य को बनाए रखने में वार्षिक फसली भूमि की तुलना में कहीं बेहतर सिद्ध होती हैं। इनमें भूमिगत कार्बन का अधिक संचयन होता है तथा मृदा के विघटन की गति अपेक्षाकृत धीमी रहती है। यही कारण है कि कृषिवानिकी को टिकाऊ कृषि के महत्वपूर्ण घटकों में गिना जाता है। मृदा कार्बनिक पदार्थ के प्रमुख स्रोत के रूप में कृषिवानिकी न केवल मृदा की संरचना को सुधारती है, बल्कि इसके भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों को भी सुदृढ़ बनाती है। यह पौधों की जड़ों को अनुकूल वातावरण प्रदान करती है, जिससे उनकी वृद्धि एवं उत्पादकता में वृद्धि होती है। वृक्ष आधारित इस प्रणाली के अंतर्गत मृदा में कार्बन का दीर्घकालिक भंडारण होता है, पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ती है और लाभकारी सूक्ष्मजीव भी संरक्षित रहते हैं। वर्तमान में जब कृषि उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता के साथ-साथ जलवायु परिवर्तन की चुनौतियां भी सामने हैं, कृषिवानिकी कार्बन पोषण प्राप्त करने का एक कारगर उपाय बनकर उभर रही है। इसके माध्यम से न केवल ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम किया जा सकता है, बल्कि किसानों के लिए अतिरिक्त आय, चारा, ईंधन और लकड़ी का स्रोत भी सुनिश्चित होता है। हालांकि, कृषिवानिकी के प्रसार के मार्ग में कुछ चुनौतियां भी मौजूद हैं।"

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में मृदा की उर्वरता कृषि उत्पादन की आधारशिला है। मृदा ही पौधों को पोषण, जल तथा जीवन के लिए आवश्यक वातावरण प्रदान करती है। किंतु अत्यधिक जनसंख्या दबाव, लगातार फसल उत्पादन, रासायनिक उर्वरकों का असंतुलित उपयोग और वनों की अंधाधुंध कटाई ने मृदा की प्राकृतिक उर्वरता को गंभीर रूप से प्रभावित किया है।

गहन कृषि पद्धतियां, विशेष रूप से भारत में गेहूं और धान की निरंतर खेती, मृदा से पोषक तत्वों को लगभग समाप्ति के कगार पर पहुंचा चुकी हैं। पोषक तत्वों के उपभोग का अनुपात भी असंतुलित है। वर्ष 1990-1991 में यह अनुपात 6.2:4:1 (एन:पी:के) था, जो वर्ष 2000-2001 में बढ़कर 7:2.7:1 और वर्ष 2009-2010 में घटकर 5:2:1 रह गया, जबकि आदर्श लक्ष्य अनुपात 4:2:1 होना चाहिए।

भाकृअनुप-केन्द्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झांसी (उत्तर प्रदेश)

नाइट्रोजन स्थिरीकरण

नाइट्रोजन स्थिरीकरण एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से वायुमंडलीय नाइट्रोजन को जैविक रूप में परिवर्तित कर मृदा में उपलब्ध करवाया जाता है। यह प्रक्रिया मुख्यत: दलहनी वृक्ष प्रजातियों और उनके सहजीवी संबंध बनाने वाले राइजोबियम बैक्टीरिया द्वारा संचालित होती है। कृषिवानिकी में नाइट्रोजन स्थिरीकरण मृदा की उर्वरता बनाए रखने और रासायनिक नाइट्रोजन उर्वरकों की आवश्यकता को कम करने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। दलहनी वृक्षों की जड़ों पर गांठें बनती हैं, जिनमें राइजोबियम बैक्टीरिया वायुमंडलीय नाइट्रोजन को अमोनिया में परिवर्तित करते हैं। यह अमोनिया पौधों द्वारा प्रोटीन, अमीनो अम्ल और अन्य जैविक यौगिकों में परिवर्तित हो जाता है। जब वृक्ष की पत्तियां, जड़ें और टहनियां झड़ती हैं या अपघटित होती हैं, तो इनमें मौजूद नाइट्रोजन मृदा में लौट आता है और फसलों के लिए उपलब्ध हो जाता है।

कृषिवानिकी में वृक्षों का पतझड़ रूप में जैविक कार्बन बढ़ाने में योगदान

समय के साथ खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि के बावजूद भारतीय मृदा में पोषक तत्वों की कमी लगातार बढ़ती गई। जहां वर्ष 1950 में केवल एक (नाइट्रोजन) तत्व की कमी पाई जाती थी, जो वर्ष 2005-2006 तक बढ़कर 9 (N, P, K, S, B, Cu, Fe, Mn और Zn) हो गई। यद्यपि उर्वरकों का उपयोग कई गुना बढ़ा है, फिर भी देश के अधिकांश हिस्सों में इनकी कुल खपत आवश्यकता से कम है। जिंक की कमी सबसे व्यापक है। इसके बाद सल्फर, आयरन, कॉपर, मैंग्नीज और बोरॉन की कमी पूरे देश में पाई जाती है।

प्रत्येक वर्ष लगभग 20 मिलियन टन प्रमुख तीन पोषक तत्व (एनपीके) फसलों द्वारा मृदा से अवशोषित कर लिए जाते हैं। अकार्बनिक उर्वरकों और कार्बनिक खादों के माध्यम से की जाने वाली पूर्ति इस हानि की भरपाई नहीं कर पाती।

इस परिप्रेक्ष्य में कृषिवानिकी एक स्थायी एवं पारिस्थितिकीय दृष्टि से अनुकूल विकल्प के रूप में सामने आई है। कृषिवानिकी में वृक्षों का योगदान केवल छाया, चारा, ईंधन या लकड़ी तक सीमित नहीं है, बल्कि वे मृदा की उर्वरता को पुनर्जीवित करने और कृषि प्रणाली की दीर्घकालिक स्थिरता सुनिश्चित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

इन चुनौतियों से निपटने हेतु कृषिवानिकी एक व्यावहारिक समाधान है। वृक्षों की उपस्थिति मृदा की गुणवत्ता को पुन: स्थापित करती है।

मृदा उर्वरता सुधार में वृक्षों की भूमिका

कार्बनिक पदार्थ एवं पोषक तत्वों की आपूर्ति

कृषिवानिकी एवं प्राकृतिक वनों में वृक्षों की पत्तियां, टहनियां, फूल, फल और बीज समय-समय पर जमीन पर गिरते हैं, जिसे लिटरफॉल कहा जाता है। यह लिटरफॉल मृदा की उर्वरता बनाए रखने तथा उसमें पोषक तत्वों की पुन: आपूर्ति करने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पत्तियों के अपघटन के बाद नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश, कैल्शियम, मैग्नीशियम एवं सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे-जिंक, आयरन और मैंग्नीज धीरे-धीरे मृदा में उपलब्ध हो जाते हैं।

लिटरफॉल से प्राप्त यह पोषण न केवल मृदा की उर्वरता को बढ़ाता है, बल्कि मृदा की संरचना, जलधारण क्षमता, सूक्ष्म जीवों की सक्रियता एवं कार्बन संचयन को भी सुदृढ़

मृदा उर्वरता ह्रास के प्रमुख कारण

- अत्यधिक रासायनिक उर्वरक प्रयोग-रासायनिक उर्वरकों के असंतुलित उपयोग से मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी हो जाती है और इसके रासायनिक एवं जैविक गुणों में नकारात्मक बदलाव आता है।
- जैविक कार्बन की कमी-निरंतर सघन खेती के कारण मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा घटती जा रही है, जिससे मृदा की संरचना और उर्वरता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
- मृदा क्षरण-वनों की कटाई और असंरक्षित खेती से ऊपरी उपजाऊ परत बह जाती है, जिसके परिणामस्वरूप भूमि की उत्पादकता प्रभावित होती है।
- लवणीयता एवं अम्लीयता-अनुचित सिंचाई प्रथाओं और एकतरफा खेती से मृदा में लवणता या अम्लता बढ़ रही है, जो फसल वृद्धि के लिए हानिकारक है।

सारणीः कृषिवानिकी में प्रचलित प्रमुख दलहनी वृक्ष प्रजातियां

वृक्ष प्रजाति	नाइट्रोजन स्थिरीकरण (कि.ग्रा. नाइट्रोजन/ हैक्टर/वर्ष)
सुबबूल	50-150
सिरिस	80-200
अकेसिया मेनजीउम	128
बबूल	35-60
गलिरिसिडिया	15-50
सेसबानिया	260-330
प्रोसओपिस प्रजाति	25-30

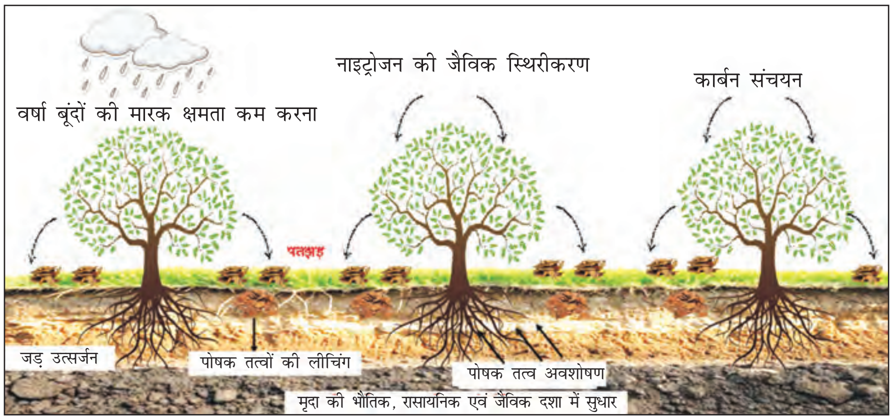

कृषिवानिकी में पोषक तत्वों के चक्रण से मृदा स्वास्थ्य में सुधार

करता है। वृक्षों के नीचे गिरी पत्तियों की परत भूमि को कटाव से बचाती है और नमी बनाए रखती है, जो विशेष रूप से शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में अत्यंत लाभकारी है। इस प्रकार वृक्षों की पत्ती झड़ना प्राकृतिक रूप से पोषक तत्व चक्रण का प्रभावी साधन है।

कृषिवानिकी में विभिन्न वृक्ष प्रजातियों जैसे यूकेलिप्टस, पॉपलर, एकेसिया टॉर्टिलिस, एकेसिया ल्यूकोसेफला, प्रोसोपिस सिनेरारिया, शीशम, एकेसिया निलोटिका, एलनस नेपालेंसिस, सुबबूल, बम्बूसा वल्गैरिस, ग्रेविया ऑप्टिवा, नीम, करंज, सागौन तथा अल्बिजिया प्रोसेरा पर किए गए अध्ययनों से ज्ञात हुआ कि प्रति वृक्ष औसतन 18.70 कि.ग्रा. पत्तियां प्रतिवर्ष जमीन पर गिरती हैं।

वृक्षों की गहरी एवं विस्तृत जड़ें पोषक तत्वों के अवशोषण, संग्रहण और पुनर्वितरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। विशेषकर शुष्क और अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में, जहां सतही मृदा में पोषक तत्वों की कमी होती है, वृक्षों की जड़ें मृदा की गहराई (2 मीटर) से नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश, कैल्शियम और मैग्नीशियम जैसे तत्वों को अवशोषित करके सतही परत में स्थानांतरित करती हैं। बाद में पत्तियों और जड़ों के अपघटन से ये पोषक तत्व फिर से मृदा में लौट आते हैं, जिससे फसलों के लिए उनकी उपलब्धता बढ़ती है।

इसके अतिरिक्त, वृक्षों की जड़ों से निकलने वाले जड़ उत्सर्जन मृदा में सूक्ष्मजीवों की सक्रियता को प्रोत्साहित करते हैं। इससे कार्बनिक उत्पादों का अपघटन तेज होता है और नाइट्रोजन एवं फॉस्फोरस जैसे पोषक तत्व पौधों के लिए आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। वृक्षों की महीन जड़ें, जब प्राकृतिक रूप से सूखकर सड़ती हैं, तो वे खाद की तरह कार्य करती हैं और मृदा की कार्बन सामग्री एवं जलधारण क्षमता को बढ़ाती हैं।

अध्ययनों के अनुसार, कृषिवानिकी प्रणालियों में वृक्षों की जड़ों के कारण मृदा में जैविक कार्बन की मात्रा 20-35 प्रतिशत तक बढ़ सकती है तथा पोषक तत्व उपयोग दक्षता में 25-30 प्रतिशत तक सुधार संभव है।

भारत में कृषिवानिकी में वृक्षों का औसत घनत्व 12.44 वृक्ष प्रति हैक्टर मानते हुए केवल पत्तझड़ के माध्यम से 0.055 टेराग्राम नाइट्रोजन प्रतिवर्ष देश की मृदा में मिलती है।

मृदा संरचना एवं मृदा क्षरण नियंत्रण

वृक्षों की गहरी जड़ें मृदा को मजबूती से बांधती हैं और उसकी कणिक संरचना को सुधारती हैं। पत्तियों से बना मल्च सतह को ढककर वाष्पन दर को कम करता है और मृदा की नमी बनाए रखता है। वृक्षों की गहरी और विस्तृत जड़ प्रणाली मृदा के कणों को स्थिर बंधन में बांधती है, जिससे मृदा की संरचना में सुधार होता है।

गिरी हुई पत्तियां और वृक्षों के अवशेष सड़कर मृदा में कार्बनिक पदार्थ बढ़ाते हैं। इससे मृदा की जलधारण क्षमता और भुरभुरापन में सुधार होता है। वृक्षों की छाया वर्षा की बूंदों की मारक शक्ति को कम करती हैं, जिससे ऊपरी मृदा का क्षरण घटता है। इसके अलावा, वृक्षों की जड़ प्रणाली मृदा को मजबूती से पकड़ती है। इससे जल और हवा दोनों द्वारा होने वाले अपरदन में कमी आती है।

कृषिवानिकी प्रणालियों में केवल फसल आधारित प्रणालियों की तुलना में कुल मृदा ह्रास लगभग 35 प्रतिशत और जल बहाव लगभग 18 प्रतिशत तक कम पाया गया है।

मृदा में सूक्ष्मजीव गतिविधियों में वृद्धि

वृक्षों से प्राप्त कार्बनिक पदार्थ और जड़-उत्सर्जन मृदा सूक्ष्मजीवों के लिए प्रमुख आहार का स्रोत बनते हैं। इससे नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले जीवाणु, माइकोराइजा, एक्टिनोमाइसेट्स आदि की संख्या और क्रियाशीलता बढ़ती है। सक्रिय सूक्ष्मजीव मृदा में पोषक तत्वों के चक्रण को तीव्र बनाते हैं और फसलों की उपलब्धता सुनिश्चित करते हैं।

भाकृअनुप-सीएएफआरआई, झांसी में किए गए अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि कृषिवानिकी प्रणालियों में वृक्षों की पंक्तियों में अंतरवर्ती फसल पंक्तियों की तुलना में बैक्टीरिया, फफूंद और एक्टिनोबैक्टीरिया की संख्या अधिक पाई जाती है। उदाहरण के लिए, आंवला आधारित कृषिवानिकी प्रणाली में 0-15 सें.मी. गहराई पर वृक्षों की पंक्तियों की मृदा में कुल बैक्टीरिया की संख्या 133×10^5 सीएफयू प्रति ग्राम मृदा पाई गई, जबकि अंतरवर्ती फसल पंक्तियों की मृदा में यह संख्या केवल 87×10^5 सीएफयू प्रति ग्राम मृदा थी।

अतः कृषिवानिकी मृदा में सूक्ष्मजीव विविधता और उनकी संख्या बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जिससे मृदा की उर्वरता और पोषक तत्व चक्रण में सुधार होता है।

स्थायित्व

कृषिवानिकी में वृक्ष केवल अतिरिक्त उत्पाद ही नहीं देते, बल्कि मृदा की सेहत को दीर्घकालिक रूप से सुधारने वाले प्राकृतिक साधन भी हैं। वृक्षों द्वारा प्रदान की गई पत्तियां, जड़ें, जैविक पदार्थ, पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण और सूक्ष्मजीवों की सक्रियता मृदा की उर्वरता बनाए रखने में अत्यंत सहायक है। यदि कृषक उचित वृक्ष प्रजातियों का चयन करके कृषिवानिकी प्रणालियों को अपनाते हैं, तो न केवल मृदा उर्वरता में सुधार होगा, बल्कि पर्यावरणीय संतुलन और सततकृषि उत्पादन भी सुनिश्चित किया जा सकता है।

बंजर से उपजाऊ तक: लवणीय-क्षारीय भूमि का सुधार

राजेन्द्र कुमार यादव, **भावना बाबल** और **गजेन्द्र यादव**

"भारत में कृषि का एक बड़ा क्षेत्र आज भी लवणीय-क्षारीय भूमि से प्रभावित है। इन क्षेत्रों की मृदा में घुलनशील लवणों जैसे-सोडियम, कैल्शियम और मैग्नीशियम के क्लोराइड एवं सल्फेट की अधिकता के साथ-साथ सोडियम का अनुपात भी अत्यधिक होता है। परिणामस्वरूप, ऐसी मृदा कठोर और कड़ी हो जाती है, पानी को अवशोषित नहीं कर पाती तथा पौधों की जड़ों तक ऑक्सीजन की कमी हो जाती है, जिससे उनकी वृद्धि रुक जाती है। देश के अनेक हिस्सों में यह भूमि वर्षों से अनुपजाऊ या बंजर पड़ी है। किसान इसके सुधार के प्रभावी उपायों से अनभिज्ञ हैं। किंतु वैज्ञानिक अनुसंधान, सरकारी कार्यक्रमों और प्रगतिशील किसानों के अनुभव सिद्ध करते हैं कि लवणीय-क्षारीय भूमि स्थायी रूप से बंजर नहीं रहती। उचित प्रबंधन एवं सुधार तकनीकों को अपनाकर ऐसी भूमि को पुन: उपजाऊ और उत्पादक बनाया जा सकता है।"

सबसे पहले यह समझना आवश्यक है कि लवणीय और क्षारीय मृदा क्या होती हैं तथा इनमें क्या भिन्नता है।

लवणीय मृदा

ऐसी मृदा, जिसमें घुलनशील लवणों (मुख्यत: क्लोराइड एवं सल्फेट) की मात्रा अधिक होती है। इन मृदा में विद्युत चालकता (ईसी) 4 dS/m से अधिक, विनिमेय सोडियम प्रतिशत (ईएसपी) 15 से कम तथा पी-एच प्राय: 8.2 से कम होता है। अधिक लवणता के कारण इन मृदा में पौधों की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। मृदा में जल की उपलब्धता कम हो जाती है और जड़ें आवश्यक पोषक तत्व ग्रहण नहीं कर पातीं।

भाकृअनुप-केंद्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

क्षारीय मृदा

इस प्रकार की मृदा में घुलनशील लवणों की मात्रा कम होती है (विद्युत चालकता 4 dS/m से कम), परंतु विनिमय सोडियम प्रतिशत (ईएसपी) 15 से अधिक तथा पी-एच 8.2 से अधिक होता है। ऐसी मृदा में सोडियम की अधिकता मृदा के कणों को विघटित कर देती है। इससे कणों के बीच के छिद्र बंद हो जाते हैं और जल निकास रुक जाता है। इससे मृदा सख्त हो जाती है और फसलों की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

लवणीय-क्षारीय मृदा

इस प्रकार की मृदा में विद्युत चालकता (ईसी) 4 dS/m से अधिक तथा विनिमय सोडियम प्रतिशत (ईएसपी) 15 से अधिक होता है। ऐसी मृदा में लवणता और क्षारता दोनों की समस्या एक साथ पाई जाती है। सुधार हेतु पहले घुलनशील लवणों का निक्षालन किया जाता है, ताकि अतिरिक्त लवण मृदा से बाहर निकल जाएं। इसके बाद जिप्सम (कैल्शियम सल्फेट) का प्रयोग करके क्षारीयता को कम किया जाता है, जिससे मृदा की संरचना और पारगम्यता में सुधार होता है।

प्रभाव

लवणीय मृदा

लवणीय दबाव के कारण पौधे अपनी जड़ से जल अवशोषित नहीं कर पाते। इसके परिणामस्वरूप बीज अंकुरण रुक जाता है और पौधे मुरझा जाते हैं।

क्षारीय मृदा

अधिक सोडियम के कारण मृदा की संरचना बिगड़ जाती है। जल निकासी अवरुद्ध हो जाती है, जलभराव उत्पन्न होता है और पौधों की जड़ों में वायु संचार की कमी के कारण वे मर जाते हैं। परिणामस्वरूप, फसलें पीली पड़ जाती हैं, पत्तियां जली सी दिखाई देती हैं और उत्पादन लगभग समाप्त हो जाता है।

पहचान और निदान

प्रयोगशाला परीक्षण

सबसे विश्वसनीय तरीका मृदा और पानी की जांच है। मृदा के नमूने से निम्न मापदंडों का निर्धारण किया जाता है:

- **विद्युत चालकता (ईसी):** यदि ईसी 4dS/m से अधिक हो तो मृदा लवणीय मानी जाती है।
- **पी-एच:** यदि पी-एच 8.2 से अधिक हो, तो यह क्षारीयता का संकेत है।
- **सोडियम अवशोषण अनुपात (एसएआर) और विनिमेय सोडियम प्रतिशत (ईएसपी):** यदि ईएसपी 15 से अधिक हो, तो मृदा क्षारीय मानी जाती है।

खेत में लक्षण

- भूमि की सतह पर नमक की सफेद परत (खारा) दिखाई देना।
- पौधों की पत्तियों का पीला पड़ना या किनारों का सूखना, पौधों का छोटा रह जाना।
- फसल का बीज अंकुरण रुक जाना।
- मृदा कठोर दिखाई देना और पानी डालने पर जल्दी अवशोषित न होना।
- पानी के लंबे समय तक खेत में ठहरने से जलभराव।

बंजर से उपजाऊ

लवणीय-क्षारीय भूमि की समस्या व्यापक रूप से लगभग 67 लाख हैक्टर क्षेत्र में फैली हुई है। यह खाद्य सुरक्षा, किसान आय और पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। हालांकि, सही वैज्ञानिक जानकारी, सरकारी सहायता और सामुदायिक प्रयास के माध्यम से इस भूमि को 'बंजर से उपजाऊ' बनाया जा सकता है। लवणीय-क्षारीय भूमि कोई अभिशाप नहीं, बल्कि एक चुनौती है, जिसे वैज्ञानिक ज्ञान, कठिन श्रम और संयम से पार किया जा सकता है। यदि किसान अनुशंसित सुधार उपाय अपनाएं और भूजल तथा मृदा का नियमन करें, तो आने वाले वर्षों में लाखों हैक्टर भूमि पुनः हरी-भरी और उपजाऊ बन सकती है। यह न केवल किसानों की आय बढ़ाएगा, बल्कि पर्यावरणीय संतुलन और खाद्य सुरक्षा में भी महत्वपूर्ण योगदान देगा।

लवणीय मृदा का सुधार

लवणों का निक्षालन

लवणीय मृदा सुधारने का सबसे प्रभावी तरीका निक्षालन है। इसमें मृदा की सतह पर मध्यम से उच्च गुणवत्ता वाला पानी पर्याप्त मात्रा में डालकर लवणों को मृदा की निचली परतों में धकेला जाता है और फिर सतही/उपसतही जल निकास प्रणाली द्वारा बाहर निकाला जाता है। यह प्रक्रिया तब करनी चाहिए, जब मृदा की नमी कम और भूमिगत जल स्तर गहरा हो। लगभग एक मीटर गहराई तक लवण हटाने के लिए उतनी ही गहराई तक पानी की आवश्यकता होती है।

अवलोकन

- पहले खेत को अच्छी तरह समतल कर लें और बांध बनाकर पानी एकत्रित करें।
- अच्छी गुणवत्ता वाले जल (ईसी $\leq$ 2 dS/m) का उपयोग करें
- पानी को 24-48 घंटे जमा रहने दें और फिर नालियों द्वारा निकास कर दें।
- इस प्रक्रिया को 2-3 बार दोहराएं।

क्षारीय मृदा

जल निकास व्यवस्था

निक्षालन तभी सफल होता है, जब अतिरिक्त पानी और घुला हुआ लवण खेत से बाहर निकल जाए। इसके लिए उपयुक्तजल निकास प्रणाली आवश्यक है।

- **सतही जल निकास प्रणालीः** खेत में छोटी-छोटी नालियां बनाकर पानी बाहर निकालें।
- **उपसतही जल निकास प्रणालीः** अत्यधिक लवणीय और जलभराव वाले क्षेत्रों में 40-50 मीटर अंतराल पर पाइप या ड्रेनेज टाइलें बिछाकर पानी भूमिगत निकाला जाता है। भारतीय परियोजनाओं में इस विधि से लगभग 75,000 हैक्टर भूमि पुनः खेती योग्य बनी है।

फसल प्रणाली एवं प्रबंधन

पहले निक्षालन के बाद भी कुछ लवण बच जाते हैं। इस दौरान ऐसी फसलें उगाएं जो लवण सहनशील हों:

- **धानः** कुछ किस्में जैसे सीएसआर 10, सीएसआर-30, सीएसआर-56, सीएसआर-60 क्षारीयता और लवणीयता दोनों में बेहतर उत्पादन देती हैं।
- **अन्य विकल्पः** करनाल या बारहमासी घास, बाजरा, ज्वार, जौ, जई, सरसों।
- **फसलेंः** अलसी, चुकंदर, सरसों जैसे कुछ तैलीय बीज लवणीय मृदा में सफल होते हैं।
- पहले 2-3 वर्ष इन सहनशील फसलों के माध्यम से मृदा की स्थिति सुधरने पर धीरे-धीरे सामान्य फसलें (गेहूं, गन्ना) भी ली जा सकती हैं।

जैविक एवं कार्बनिक पदार्थ

मृदा में जैविक पदार्थ (गोबर की खाद, हरी खाद, कम्पोस्ट) डालने से लवणों का घुलना बढ़ता है और मृदा की संरचना सुधरती है। विशेषकर सल्फर ऑक्सीकृत करने वाले सूक्ष्मजीव और गैर-परोपजीवी फफूंदी मिलाने से लवण निष्कासन और तेजी से होता है।

फसल प्रबंधन एवं उन्नत किस्में

लवण-क्षारीय सहनशील फसलें

धान की किस्मेंः भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान ने कई किस्में विकसित की हैं (CSR-10, CSR-30, CSR-56, CSR-60) जो पी-एच मान 9.8 तक क्षारीयता सहन कर सकती हैं। वर्ष 2011 में विकसित सीएसआर-43 एक मध्यम अवधि वाली किस्म है, जो धान-गेहूं प्रणाली के लिए उपयुक्त है।

गेहूं की किस्मेंः केआरएल-210, केआरएल-213 जैसी किस्में क्षारीयता सहन कर सकती हैं।

चाराः करनाल घास, बरसीम, कलमी साग आदि फसलें लवणता प्रभावित और क्षारीय मृदा में उगाई जा सकती हैं।

तिलहनः सरसों की कुछ किस्में (सीएच-52, सीएच-56) लवणता के प्रति सहनशील हैं।

सब्जियांः लहसुन, मिर्च, प्याज, पालक की कुछ किस्में मध्यम लवणता सहन कर लेती हैं और तुलनात्मक रूप से क्षारीयता के प्रति सहनशील हैं।

फसल चक्र और क्रम

धान-गेहूंः पहले 3-4 वर्ष लवण-सहिष्णु धान उगाएं; फिर गेहूं और अन्य कम लवण-सहिष्णु फसलें लें।

गन्ना-गेहूंः अधिक लवणीय क्षेत्र में बाजरा उत्कृष्ट होता है; इसके बाद गन्ना और अंत में गेहूं लिया जा सकता है।

ढैंचा (हरी खाद)-धान-सरसोंः हरी खाद फसल ढैंचा क्षारीय भूमि में Ca^{2+} घुलाकर सोडियम को प्रतिस्थापित करती है; इसके बाद धान और सरसों की फसल ली जा सकती है।

एकेशिया के साथ घासः कृषिवानिकी प्रणाली के तहत एकेशिया पौधों के साथ करनाल घास, पैरा घास या बरसीम विकसित किया जा सकता है।

फाइटोरिमेडियेशन

कुछ लवणोद्भिद् पौधे, जैसे-साइलीकोरनिया, एर्टीपलेक्स और सुइएईडा प्रजातियां, उच्च लवण सोखने की क्षमता रखती हैं। ये पौधे लवण को अपने ऊतकों में संग्रहित करते हैं। कुछ में विशेष ग्रंथियां होती हैं, जो नमक बाहर निकालती हैं।

- इन पौधों को लवणीय मृदा पर उगाने से मृदा से नमक धीरे-धीरे निकलता है।
- साथ ही ये पौधे चारा, ईंधन या हरी खाद के रूप में उपयोगी भी हैं।
- भारत के कई तटीय क्षेत्रों में एर्टीपलेक्स और सुइएईडा का उपयोग जलभराव वाले लवणीय खेतों में सफल रहा है।

क्षारीय मृदा का सुधार

क्षारीय मृदा में घुलनशील लवण कम होते हैं। सोडियम विशेष रूप से चिकनी मृदा के विनिमय स्थलों पर जमा हो जाता है। इससे मृदा के कण विघटित हो जाते हैं और जल निकास अवरुद्ध हो जाता है। क्षारीय मृदा सुधारने के लिए दो मुख्य कदम आवश्यक हैं

जिप्सम के प्रयोग के बाद गेहूं की स्वस्थ तथा भरपूर फसल

- सोडियम को कैल्शियम से प्रतिस्थापित करना।
- सोडियम सल्फेट को मृदा के जड़ क्षेत्र से बाहर निकालना।

कैल्शियम स्रोत

कैल्शियम का सबसे उपयोगी और सस्ता स्रोत जिप्सम ($CaSO_4+2H_2O$) है। मृदा में जिप्सम डालने पर कैल्शियम सोडियम के स्थान पर विनिमय करता है और सोडियम को घुलनशील सोडियम सल्फेट में बदल देता है, जिसे बाद में निक्षालन द्वारा मृदा से बाहर निकाला जा सकता है।

क्षारीय मृदा सुधारने की प्रक्रिया

- आवश्यक मात्रा में कैल्शियम स्रोत (जिप्सम) डालें।
- थोड़ा पानी देकर जिप्सम को मृदा में घुलने दें।
- कुछ समय बाद अतिरिक्त पानी डालकर घुलनशील सोडियम सल्फेट को निक्षालन द्वारा बाहर निकालें।

जिप्सम की मात्रा

जिप्सम की मात्रा मृदा की विनिमय सोडियम प्रतिशत (ईएसपी), क्षारीय विनिमय क्षमता (सीईसी) और इच्छित ईएसपी स्तर पर निर्भर करती है। जिप्सम का महीन पिसा हुआ रूप अधिक प्रभावी होता है। यह जल्दी घुलता है। जिप्सम डालते समय इसे मृदा में 10-15 सें.मी. गहराई तक मिलाना चाहिए। इसके बाद तुरंत हल्की सिंचाई करनी चाहिए, ताकि सोडियम का विस्थापन प्रारंभ हो सके।

लवणीय-क्षारीय मृदा बनने के कारण

प्राकृतिक कारण

समुद्र के किनारे स्थित क्षेत्रों में लवणयुक्त भूजल का ऊपर आना, लवणयुक्त हवा के साथ लवणों का जमाव, पहाड़ों से बहकर आने वाले खनिज लवण, सूखी जलवायु में, जल निकास अवरुद्ध होने पर मृदा से वाष्पीकरण द्वारा लवणों का सतह पर जमा होना।

मानवजनित कारण

सिंचाई परियोजनाओं में लगातार नहरों से जल देने पर भूजल स्तर का ऊपर आना, बिना निकास के जलभराव, अधिक उर्वरक या रासायनिक उपयोग और औद्योगिक अपशिष्ट का खेतों में जमा होना, लगातार निम्न गुणवत्ता वाले भूजल से सिंचाई के कारण मृदा में सोडियम का संचय।

पानी की गुणवत्ता

कुछ क्षेत्रों में भूजल स्वयं लवणीय-क्षारीय होता है। ऐसे पानी से सिंचाई करने पर मृदा में सोडियम की मात्रा बढ़ जाती है।

बारिश में कमी और उच्च तापमान

सूखे मौसम में पानी की कमी के कारण मृदा में लवण सतह पर जमा हो जाते हैं और नमकीन परत (सॉल्ट क्रस्ट) बन जाती है।

क्षारीय भूमि के सुधार हेतु जिप्सम का खेत में उपयोग

सहायक संशोधन

- **अम्लीय पदार्थः** एलीमेंटल सल्फर, सल्फ्यूरिक अम्ल या पायराइट मृदा में ऑक्सीकरण होने पर $CaSO_4$ (जिप्सम) बनाता है। यह मृदा में मौजूद कैल्शियम कार्बोनेट को घुलाकर कैल्शियम मुक्त करता है।
- **कार्बनिक पदार्थः** गोबर खाद, प्रेसमड, हरी खाद आदि मृदा में कार्बनिक अम्ल बनाते हैं, जो सोडियम के प्रभाव को कम करते हैं। कार्बनिक पदार्थ मृदा की संरचना सुधारते हैं और जिप्सम की आवश्यकता को भी कम कर देते हैं।
- एफजीडी जिप्सम एवं संवर्धित कम्पोस्ट

निक्षालन

जिप्सम से Na_2SO_4 बनने के बाद उसे बाहर निकालने के लिए पर्याप्त पानी की आवश्यकता होती है। इसलिए उचित सिंचाई और जल निकास जरूरी है।

स्थान-विशेष उपाय

क्षारीय भूमि सुधार योजना बनाते समय मृदा की गहराई, जल स्तर, पानी की उपलब्धता और आर्थिक क्षमता को ध्यान में रखना चाहिए। छोटी जोत के लिए सामूहिक प्रयास (सामुदायिक जल निकास व्यवस्था, सरकारी अनुदान से जिप्सम) लाभकारी होते हैं।

कई राज्य (जैसे-उत्तर प्रदेश और, पंजाब) में क्षारीय मृदा सुधार परियोजनाओं के माध्यम से किसानों को अनुदान पर जिप्सम और प्रशिक्षण उपलब्ध करवाया जा रहा है। इन प्रौद्योगिकियों द्वारा लगभग 21 लाख हैक्टर क्षेत्रफल सुधारा जा चुका है।

पोषण प्रबंधन

क्षारीय मृदा में उर्वरकों की उपलब्धता कम हो सकती है। इसलिए फसल की आवश्यकता और मृदा परीक्षण के अनुसार उर्वरक की खुराक दें। सूक्ष्म पोषक तत्वों का छिड़काव भी लाभकारी है। गोबर खाद, प्रेसमड और फसल अवशेषों का समावेशन मृदा में कार्बनिक पदार्थ बढ़ाता है और पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाता है।

मृदा, मवेशी और मुनाफा: चारा-फसल आधारित समेकित कृषि प्रणाली

दाना राम पलसानिया, मुकेश चौधरी, गौरेन्द्र गुप्ता, सीताराम कांटवा और **पंकज कौशल**

"भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कृषि और पशुपालन परस्पर पूरक गतिविधियां हैं। वर्तमान में देश में हरे चारे और सूखे चारे की क्रमश: 11 प्रतिशत और 24 प्रतिशत की कमी है। इससे पशु उत्पादन तथा किसानों की आय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। दूसरी ओर, मृदा की उर्वराशक्ति में निरंतर कमी एवं असंतुलित रासायनिक उर्वरक उपयोग जैसी चुनौतियां कृषि उत्पादन को और सीमित करती हैं। बढ़ती लागत और घटते लाभ ने लघु एवं सीमांत किसानों की आर्थिक स्थिति को और भी कमजोर बना दिया है। ऐसी परिस्थिति में चारा फसल आधारित समेकित कृषि, एक व्यावहारिक एवं टिकाऊ समाधान प्रस्तुत करती है। इसमें फसल, पशुपालन, बागवानी, मत्स्य पालन एवं चारा फसलों का समन्वित प्रबंधन किया जाता है। चारा फसलें पशुओं को पोषण देती हैं, जबकि पशुओं से प्राप्त गोबर मृदा की उर्वराशक्ति को सुधारता है। दलहनी चारा फसलें जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण द्वारा दीर्घकालिक मृदा स्वास्थ्य में योगदान करती हैं। इसके साथ ही, परती भूमि पर वृक्षारोपण और चरागाह विकास से भूमि उपयोग दक्षता में वृद्धि होती है। भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झांसी द्वारा विकसित डेरी एवं बकरी-आधारित मॉडल ने यह सिद्ध किया है कि समेकित कृषि प्रणाली उत्पादन, आय, रोजगार और संसाधन संरक्षण को उल्लेखनीय रूप से मजबूत करती है। अत: 'मृदा, मवेशी और मुनाफा' का यह त्रिकोण ग्रामीण आजीविका एवं कृषि स्थिरता के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।"

भारत में कृषि और पशुपालन परस्पर पूरक गतिविधियां हैं, जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था और खाद्य पोषण सुरक्षा के लिए आधारभूत स्तंभ का कार्य करती हैं। देश में लगभग 535 मिलियन पशुधन संख्या है, जिनकी उत्पादकता का स्तर अभी भी वैश्विक औसत से कम है। इसका एक प्रमुख कारण गुणवत्तापूर्ण हरे और सूखे चारे की निरंतर कमी है, जो क्रमश: 11 प्रतिशत और 24 प्रतिशत आंकी गई है। यह कमी न केवल पशुओं के दूध एवं मांस उत्पादन को प्रभावित करती है, बल्कि कृषि प्रणाली की समग्र दक्षता और किसानों की आय पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालती है।

मृदा की उर्वराशक्ति में कमी और बढ़ती बंजर भूमि एक गंभीर चिंता का विषय है। देश की लगभग 45 प्रतिशत भूमि विभिन्न स्तरों पर पोषक तत्वों की कमी से प्रभावित है, जिनमें नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश और सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी प्रमुख है। लगातार गहन खेती, रासायनिक उर्वरकों का असंतुलित उपयोग और जैविक उत्पादों की घटती मात्रा से मृदा की उत्पादकता घट रही है। दूसरी ओर, देश में लगभग 55-60 मिलियन हैक्टर भूमि परती या बंजर मानी जाती है, जो लवणता, अम्लता और मरुस्थलीकरण जैसी समस्याओं से ग्रस्त है।

मृदा की घटती उर्वराशक्ति और बढ़ती परती भूमि से कृषि उत्पादन, पशुपालन और ग्रामीण आजीविका पर सीधा असर पड़ता है। खेती की लागत तेजी से बढ़ रही है, जबकि किसानों का मुनाफा लगातार घट रहा है। हाल के वर्षों में बीज, खाद, कीटनाशकों और कृषि श्रम की कीमतों में 20-30 प्रतिशत तक की वृद्धि हुई है। डीजल और बिजली पर होने वाला खर्च भी 15-20 प्रतिशत तक बढ़ा है, जिससे सिंचाई लागत में बड़ा इजाफा हुआ है।

दूसरी ओर, कई फसलों का न्यूनतम समर्थन मूल्य केवल 3-5 प्रतिशत प्रतिवर्ष बढ़ता है, जो वास्तविक लागत की भरपाई नहीं कर पाता। लघु और सीमांत किसान, जिनकी संख्या भारत में लगभग 86 प्रतिशत है, इस समस्या से सबसे अधिक प्रभावित होते हैं। जलवायु परिवर्तन, सूखा, बाढ़ और कीट प्रकोप उत्पादन लागत और जोखिम को और बढ़ा देते हैं। नतीजतन, किसान अक्सर ऋणग्रस्त हो जाते हैं और खेती को अलाभकारी मानने लगते हैं।

चारा फसल आधारित समेकित कृषि प्रणाली इस समस्या का एक व्यवहार्य एवं टिकाऊ समाधान प्रस्तुत करती है। समेकित कृषि प्रणाली जिसमें फसल, पशुपालन, बागवानी, मत्स्य और

भाकृअनुप-भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झांसी-284003 (उत्तर प्रदेश)

समेकित कृषि प्रणाली

समेकित कृषि प्रणाली का अर्थ है-फसलों, पशुपालन, बागवानी, मत्स्य पालन एवं अन्य गतिविधियों को इस प्रकार जोड़ना कि वे एक-दूसरे के लिए पूरक सिद्ध हों। जब इसमें चारा फसलों को प्रमुख स्थान दिया जाता है तो यह प्रणाली और भी अधिक उपयोगी हो जाती है:

- **चारा:** पशुओं को पोषण देता है।
- **पशुओं से प्राप्त गोबर और अवशेष:** खेत की मृदा में लौटकर जैविक खाद बनाते हैं।
- **खेत की मृदा:** बेहतर उर्वराशक्ति के साथ अधिक उपज देती है।
- **अधिक उपज और उत्पादकता:** किसानों की आय एवं मुनाफा बढ़ाती है।

इस प्रकार मृदा, मवेशी और मुनाफा एक सतत चक्र में जुड़ जाते हैं।

सारणी 1. विभिन्न क्षेत्रों के लिए सघन चारा फसल प्रणालियां

क्र.सं.	फसलचक्र	हरा चारा उपज (टन/हैक्टर/वर्ष)
I	पहाड़ी एवं उत्तरी क्षेत्र	
1.	मक्का+लोबिया-रिजका+जई-सरसों	85
2.	संकर बाजरा नेपियर+वेलवेट बीन-बरसीम+सरसों	123
II	मध्य एवं पश्चिमी क्षेत्र	
1.	संकर बाजरा नेपियर+लोबिया-बरसीम+सरसों	255
2.	ज्वार+लोबिया-बरसीम+सरसों-मक्का+लोबिया	176
III	पूर्वी क्षेत्र	
1.	बाजरा+लोबिया-मक्का+लोबिया-जई	103
2.	मक्का+लोबिया-दीनानाथ घास-जई	131
3.	मक्का+राइसबीन-बरसीम+सरसों	112
IV	दक्षिणी क्षेत्र	
1.	संकर बाजरा नेपियर+रिजका	225
2.	ज्वार+लोबिया-मक्का+लोबिया-मक्का+लोबिया	111
3.	नारियल के बगीचे में गिनी घास	135

चारा फसलों को एक साथ जोड़कर संसाधनों का बेहतर उपयोग किया जाता है। पशुओं से प्राप्त गोबर एवं अपशिष्ट को खेत में लौटाने से मृदा की उर्वराशक्ति बढ़ती है। दलहनी चारा फसलें नाइट्रोजन स्थिरीकरण द्वारा मृदा को समृद्ध करती हैं। बंजर भूमि में वृक्षारोपण, घास उगाना और जल संरक्षण संरचनाएं जोड़कर भूमि को उत्पादक बनाया जा सकता है। इस प्रकार समेकित कृषि प्रणाली मृदा स्वास्थ्य, उत्पादकता और किसानों की आय बढ़ाने का टिकाऊ उपाय है।

समेकित कृषि प्रणाली बहुआयामी चुनौतियों से निपटने हेतु एक समग्र एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। विभिन्न कृषि घटकों का एकीकरण न केवल प्रति इकाई क्षेत्र उत्पादकता को अधिकतम करता है, अपितु बाह्य संसाधनों पर निर्भरता को भी न्यूनतम करता है।

पशुपालन

मवेशी, समेकित कृषि प्रणाली का अभिन्न अंग है तथा यह सर्वाधिक राजस्व उत्पन्न करने वाले घटकों में से एक है। फसलों के साथ मवेशी समावेशन अंडा, दूध एवं मांस उत्पादन को बढ़ावा देकर, न केवल पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करता है, बल्कि किसानों की आय को स्थिरता भी प्रदान करता है। पशु खेत से प्राप्त चारा एवं फसल अवशेष का उपयोग करते हैं और उनका गोबर मृदा को कार्बनिक पदार्थ एवं आवश्यक पोषक तत्वों से समृद्ध करता है। इससे रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता कम हो जाती है। अर्द्धशुष्क उष्णकटिबंधीय वर्षा आधारित कृषि प्रणालियों में छोटे जंतु विशेषकर बकरियां महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इनके समावेश से लाभप्रदता में वृद्धि एवं जोखिम में कमी लाई जा सकती है।

चारा फसलें

पशुओं की अच्छी उत्पादकता एवं स्वास्थ्य

मेड़ पर चारा

के लिए वर्षभर हरा चारा आपूर्ति आवश्यक है। इस संदर्भ में बहुवर्षीय घास आधारित प्रणाली संकर बाजरा नेपियर की दो पंक्तियों के मध्य खरीफ एवं जायद मौसम में लोबिया तथा रबी में बरसीम या रिजका को लगाकर वर्षभर हरा चारा प्राप्त कर सकते हैं। इस फसल प्रणाली में संकर बाजरा नेपियर को नंदी घास और गिनी घास जैसी अपेक्षाकृत नरम और स्वादिष्ट बहुवर्षीय घास के साथ सफलतापूर्वक प्रतिस्थापित किया

सारणी 2. डेरी एवं वर्षा आधारित बकरीपालन एकीकृत कृषि प्रणाली मॉडलों का तुलनात्मक प्रदर्शन

मॉडल	घटक/प्रणाली	सकल आय (रुपये/हैक्टर/वर्ष)	शुद्ध आय (रुपये/हैक्टर/वर्ष)	लाभ-लागत अनुपात (B:C)	रोजगार (मानव-दिवस/हैक्टर/वर्ष)
डेरी आधारित समेकित कृषि प्रणाली	0.2 हैक्टर कृषि उद्यानिकी (अमरूद+मूंगफली-गेहूं) 0.4 हैक्टर ज्वार-गेहूं 0.4 हैक्टर संकर बाजरा नेपियर+लोबिया-बरसीम 2 मुर्रा भैंसें एवं 2 संकर गाय	3,15,478	1,62,593	1.52	418
वर्षा आधारित बकरीपालन समेकित कृषि प्रणाली	0.3 हैक्टर मूंगफली-जौ 0.25 हैक्टर ज्वार-चना 0.2 हैक्टर वन चरागाह (सुबबूल+त्रिसंकर घास+स्टाइलो) 0.2 हैक्टर कृषि उद्यानिकी (बेर+तिल-चना) खेत तालाब (20 मी.×25 मी.×2.5 मी.) 35 बकरियां	2,00,877	1,38,824	1.70	273

जा सकता है। इसी तरह बहुवर्षीय घासों के मध्य रिक्त स्थान में बरसीम की जगह रिजका को भी उगाया जा सकता है।

इस प्रकार बहुवर्षीय चारा घास से वर्षभर हरा चारा तथा अंत:फसल दलहनी फसलों से मौसमी चारा मिलता रहता है। इस प्रकार की फसल प्रणाली से घास एवं दलहन दोनों प्रकार का चारा मिलता रहता है, जो अधिक पौष्टिक होता है। विभिन्न जलवायु के लिए अनुशंसित फसल प्रणालियां और उनकी चारा उत्पादन क्षमता सारणी में दी गई है। दलहनी चारा फसलें जैसे-बरसीम, रिजका और लोबिया जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण द्वारा मृदा की दीर्घकालिक उर्वराशक्ति में वृद्धि करती हैं।

लघु एवं सीमान्त किसान जो केवल 1-2 पशु पालते हैं, जिनकी चारा आवश्यकता कम होती है। ऐसे किसान गिनी, संकर बाजरा नेपियर आदि घासों को खेत की मेड़ों, सिंचाई की नालियों एवं खेत की सीमाओं पर उगाकर अपने पशुओं की चारा आवश्यकता की कुछ हद तक पूर्ति कर सकते हैं। इसमें चारे के लिए अलग से भूमि आवंटन नहीं करना पड़ता है। इस प्रकार 100 मीटर लम्बाई की मेड़ से वर्षभर में 7-11 क्विंटल हरा चारा प्राप्त किया जा सकता है। चारा आवश्यकता ज्यादा होने पर किसान मेड़ों पर पंक्तियों की संख्या बढ़ा सकते हैं।

समेकित फसल प्रणाली में वृक्षों, चारा फसलों एवं घासों से चारा प्राप्त किया जाता है। सामान्यत: खरीफ में हरा चारा बहुतायत से पैदा होता है। अत: आवश्यकता से अधिक चारे को 'हे' एवं 'साइलेज' के रूप में संरक्षित कर सकते हैं। इसी तरह चरागाहों से प्राप्त अतिरिक्त घास को भी सुखाकर 'हे' के रूप में संरक्षित करके कमी के समय में उपयोग किया जा सकता है।

चारा वृक्षों एवं झाड़ियों से बहुतायत के समय पत्तियां काटकर एवं सुखाकर लीफमील बनाकर संग्रहित करना चाहिए। दलहनी वृक्ष जैसे कि खेजड़ी, सिरिस, सुबबूल आदि से गुणवत्तायुक्त लीफमील बनाया जा सकता है। इसको प्रोटीन पूरक के रूप में भी काम में लिया जा सकता है। इसके अलावा स्टाइलो से भी लीफमील बनाया जा सकता है।

अतिरिक्त सूखे चारे एवं भूसे को गांठें एवं सम्पूर्ण फीड ब्लॉक बनाकर आवश्यकतानुसार उपयोग में लिया जा सकता है। इस प्रकार जलवायु परिवर्तन की परिस्थिति में 'हे', साइलेज, लीफमील, फीड ब्लॉक इत्यादि बनाकर इसके प्रभाव से बचा जा सकता है।

मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन

मृदा स्वास्थ्य में सुधार हेतु जैविक प्रथाओं को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। जिससे मृदा उर्वराशक्ति में वृद्धि, रासायनिक उपादनों पर निर्भरता में कमी तथा मृदा में जैव-विविधता का संवर्द्धन संभव हो सके। फसलचक्र को अपनाकर रोग चक्र को तोड़ा जा सकता है, मृदा संरचना में सुधार किया जा सकता है तथा पोषक तत्वों का संतुलन बनाए रखा जा सकता है। इसी प्रकार, हरी खाद फसलें जैसे-ढैंचा, सनई आदि उगाकर एवं भूमि में मिलाकर मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा एवं उर्वराशक्ति में सुधार किया जा सकता है। समेकित फसल प्रणाली में केंचुआ खाद (वर्मीकम्पोस्ट) बनाकर रासायनिक उर्वरकों की मात्रा में कटोती करके किसान अपने मुनाफे को बढ़ा सकते हैं।

समेकित कृषि प्रणालियां

भाकृअनुप-भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झांसी ने एक दशक से अधिक समय तक किए गए शोध प्रयासों के आधार पर विभिन्न कृषि-परिस्थितियों के लिए अनेक जलवायु सहनशील एवं सतत समेकित कृषि प्रणालियां विकसित की हैं। इनका संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है:

मॉडल 1: डेरी आधारित समेकित कृषि प्रणाली

इस एक हैक्टर के मॉडल में दुग्ध उत्पादन एवं चारा फसलों को प्राथमिकता दी गई है। इस मॉडल से 1.52 लाभ-लागत अनुपात के साथ 1,62,593 रुपये की शुद्ध आय प्राप्त हुई, जो परंपरागत मूंगफली-गेहूं प्रणाली की तुलना में 82.7 प्रतिशत अधिक है। इस मॉडल से 418 मानव-दिवस/हैक्टर/वर्ष का सृजन हुआ, जो परंपरागत मूंगफली-गेहूं प्रणाली की तुलना में ढाई गुना अधिक है। उप-उत्पाद पुनर्चक्रण के रूप में 20.4 टन गोबर की खाद एवं 1.98 टन कम्पोस्ट का उत्पादन हुआ।

मॉडल 2: वर्षा-आधारित बकरी पालन समेकित कृषि प्रणाली

इस मॉडल से 4,979 कि.ग्रा./हैक्टर जौ तुल्य उपज प्राप्त हुई। इसमें विभिन्न उत्पाद सम्मिलित थे जैसे-जौ, चना, मूंगफली, बेर फल, तिल, चारा (ज्वार, त्रिसंकर घास, स्टाइलोसैंथेस, सुबबूल सूखी पत्ती तथा कांटारहित नागफनी की क्लैडोड्स) एवं गूलर फल आदि। इस मॉडल की पशु धारिता अर्द्धगहन पालन प्रणाली में 35 बकरियां आंकी गई। इससे क्रमश: 1,38,824 रुपये प्रति हैक्टर की आय प्राप्त हुई।

भारत में बढ़ती पशु-जनसंख्या और सीमित भूमि संसाधनों को देखते हुए चारा फसल आधारित समेकित कृषि प्रणाली अत्यंत आवश्यक है। यह प्रणाली मृदा की उर्वराशक्ति सुधारने, पशुओं की उत्पादकता बढ़ाने और किसानों की आय में वृद्धि करने का एक सशक्त माध्यम है। 'मृदा, मवेशी और मुनाफा' का यह त्रिकोण न केवल कृषि को टिकाऊ बनाएगा, बल्कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी मजबूत करेगा। इसलिए आवश्यकता है कि इस प्रणाली को प्रोत्साहित करने हेतु अनुसंधान, विस्तार सेवाओं और नीतिगत सहयोग को प्राथमिकता दी जाए।

समेकित कृषि प्रणाली के अवयव

लाभ

समेकित कृषि प्रणाली से किसानों को वर्षभर नियमित आमदनी प्राप्त होती है। फसलों से वर्ष में 2-3 बार ही आमदनी होती है, जबकि दुग्ध उत्पादन प्रतिदिन नकदी प्रवाह सुनिश्चित करता है। मछलीपालन और बागवानी से अतिरिक्त लाभ प्राप्त होता है। यदि किसी कारणवश एक घटक में क्षति हो जाए, तो अन्य घटकों से आय बनी रहती है। इससे किसानों को कम जोखिम और स्थायी आय मिलती है। विभिन्न स्रोतों से होने वाली आय वर्षभर फैली रहती है। बाहरी कृषि उपादनों पर निर्भरता कम होने से खेती की लागत घटती है। परिवार के लिए सब्जियों और खाद्यान्न की पूर्ति खेत से ही पूरी हो जाती हैं। कृषक परिवार की पोषण और खाद्य सुरक्षा भी सुनिश्चित होती है। इस प्रकार समेकित कृषि प्रणाली मुनाफे, आत्मनिर्भरता और स्थायित्व का मार्ग प्रदान करती है।

खरपतवार प्रबंधन के नए आयाम

वी.के. चौधरी, बादल वर्मा और **जे. एस. मिश्र**

"खरपतवार कृषि उत्पादन और खाद्य सुरक्षा के सामने सबसे बड़ी बाधाओं में से एक है। ये फसलीय पौधों से जल, पोषक तत्व, प्रकाश और स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करके उत्पादन को 15-80 प्रतिशत तक कम कर सकते हैं। इनका पारंपरिक नियंत्रण जैसे जुताई, निराई-गुड़ाई और रासायनिक खरपतवारनाशी कई दशकों से मुख्य आधार रहा है, किंतु श्रम-अभाव, लागत, पर्यावरणीय/मानव स्वास्थ्य चिंताएं और शाकनाशी-प्रतिरोध ने स्थायी, समेकित और तकनीक-सहयोगी दृष्टिकोण की आवश्यकता को रेखांकित किया है। इस लेख में खरपतवार नियंत्रण हेतु आवरण फसलें, एलेलोपैथी, मृदा सौरीकरण, आच्छादन, फ्लेम वीडिंग, मशीनी/रोबोटिक निराई, ड्रोन-आधारित छिड़काव, स्थान-विशिष्ट खरपतवार प्रबंधन, कंप्यूटर विजन, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, मशीन लर्निंग, मल्टीस्पेक्ट्रल/हाइपरस्पेक्ट्रल रिमोट सेंसिंग, निर्णय सहयोग प्रणाली और भविष्य की दिशा जैसे जीन-संशोधित/शाकनाशी सहिष्णु फसलें, इलेक्ट्रिक/लेजर वीडिंग तक के नए आयामों का व्यावहारिक एवं समालोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।"

खरपतवार वे पौधे होते हैं, जो मनुष्य की इच्छा के विरुद्ध उपजाऊ भूमि, फसल या संसाधन स्थल पर उगते हैं और आर्थिक/पर्यावरणीय नुकसान करते हैं। इनसे उपज में 15-80 प्रतिशत तक की कमी के साथ फसल की उत्पादकता, गुणवत्ता और कटाई प्रक्रिया प्रभावित होती है।

खरपतवार कीटों और रोगों के वाहक के रूप में कार्य करते हैं। ये सिंचाई एवं जल निकास को भी बाधित करते हैं, जो कृषि कार्यों में और भी समस्याएं उत्पन्न करता है। खेत की जैव-भौतिक विविधता, छोटे जोत आकार, सीमित संसाधन, मौसमी श्रम-अभाव और मूल्य उतार-चढ़ाव इस चुनौती को जटिल बनाते हैं।

दूसरी ओर, पोषक तत्वों, जल और प्रकाश के लिए खरपतवारों की तीव्र प्रतिस्पर्धा, रोपण के प्रारंभिक 20-45 दिनों में उपज क्षति का बड़ा हिस्सा निर्धारित कर देती है। पारंपरिक हाथ-निराई श्रम-गहन और शाकनाशियों पर अत्यधिक निर्भरता ने प्रतिरोध, अवशेष और

भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (मध्य प्रदेश)

समेकित खरपतवार प्रबंधन

समेकित खरपतवार प्रबंधन में निम्न क्रियाएं हैं:

- **रोकथाम:** स्वच्छ बीज, खरपतवारमुक्त खेत और उपकरणों की सफाई।
- **निगरानी:** खेत में खरपतवारों की पहचान, घनत्व की गणना और समय-समय पर निरीक्षण।
- **पारंपरिक उपाय:** फसलचक्र, इंटरक्रॉपिंग, आवरण फसलें।
- **यांत्रिक उपाय:** लाइन-वीडर, कोनो-वीडर, रोटरी-वीडर, आदि।
- **रासायनिक उपाय:** शाकनाशी का सही चयन और क्रिया-तंत्र रोटेशन।
- **जैविक उपाय:** एलेलोपैथी और जैव-एजेंट (जैसे कीट या रोगजनक जो खरपतवार पर हमला करते हैं)।

पारिस्थितिक चिंताएं बढ़ाई हैं। इसलिए समेकित, सटीक और पर्यावरण-संगत नीतियां आज की आवश्यकता हैं।

पारंपरिक उपाय

जुताई प्रणालियां और स्टेल-सीडबेड

स्टेल-सीडबेड तकनीक में खेत की तैयारी के बाद हल्की सिंचाई की जाती है, जिससे खरपतवार बीज अंकुरित हो जाते हैं। इसके बाद गहरी/उथली जुताई या उपयुक्त शाकनाशी छिड़ककर उन्हें नष्ट कर दिया जाता हैं।

संरक्षण जुताई में अवशेष-संरक्षण, आवरण फसलें और न्यूनतम जुताई तकनीकों का प्रयोग होता है। फसल के अवशेष और आवरण फसलें मृदा की सतह को ढककर प्रकाश की उपलब्धता कम करती हैं, जिससे खरपतवारों का अंकुरण और विकास दब जाता है।

फसलचक्र, अंतर फसल प्रणाली और जल प्रबंधन

फसल चक्र में विभिन्न मौसम और पौधों की प्रकृति के अनुसार फसलों को क्रमवार उगाया जाता है। इससे विशिष्ट खरपतवार प्रजातियों का जीवन चक्र टूटता है और उनका दबाव कम होता है।

अंतर फसल प्रणाली के अंतर्गत फसलों को एक साथ उगाने से भूमि की सतह ढकी रहती है, जिससे खरपतवारों को प्रकाश और स्थान नहीं मिल पाता। जैसे, गन्ने में दालों की अंतर फसल प्रणाली खरपतवार को दबाती है और अतिरिक्त नाइट्रोजन भी प्रदान करती है। जल प्रबंधन भी खरपतवार नियंत्रण में महत्वपूर्ण है। धान की खेती में पानी-भराव तकनीक से एरॉबिक खरपतवारों (जैसे इकाइनोक्लोआ) का विकास रुक जाता है।

रोपाई/बीजाई विधियां, दूरी, मल्चिंग और यांत्रिकीकरण

समान दूरी पर रोपाई/बीजाई करने से फसल

स्मार्ट स्प्रे और स्पॉट स्प्रे

पौधों का घनत्व संतुलित रहता है और खरपतवारों को जगह नहीं मिलती। मल्चिंग चाहे जैविक (फसल अवशेष, भूसा, पत्तियां) हो या प्लास्टिक, खरपतवार बीजों को प्रकाश से वंचित कर अंकुरण रोकता है। यांत्रिक यंत्र जैसे लाइन-वीडर और कोनो-वीडर धान, गन्ना और अन्य पंक्ति फसलों में खरपतवार नियंत्रण हेतु प्रभावी हैं।

रासायनिक प्रबंधन

लगातार एक ही प्रकार का शाकनाशी प्रयोग करने से प्रतिरोध विकसित हो सकता है इसलिए शाकनाशी के क्रिया तंत्र का सही चयन और चक्र आवश्यक है, ताकि प्रतिरोध की समस्या कम हो। शाकनाशी का सही समय पर प्रयोग में **उद्भव पूर्व:** शाकनाशी बीज अंकुरण से पहले मृदा पर डाले जाते हैं, जिससे अंकुरित होते ही खरपतवार मर जाते हैं एवं **उद्भव पश्चात:** शाकनाशी सक्रिय अवस्था में उगे खरपतवारों पर छिड़के जाते हैं। उचित नोजल का चयन, दाब का संतुलन और घोल की सही सांद्रता सुनिश्चित करती है कि दवा केवल लक्षित पौधों तक पहुंचे। इसके साथ ही, पी.पी.ई. (व्यक्तिगत सुरक्षा उपकरण) का उपयोग किसान की सुरक्षा के लिए अनिवार्य है।

जैविक और पारिस्थितिक उपाय

एलेलोपैथी और आवरण फसलें

कुछ पौधों की जड़ें और अवशेष विशेष रसायन (एलेलोपैथिक यौगिक) छोड़ते हैं, जो अन्य खरपतवारों के अंकुरण को रोकते हैं। जैसे सूरजमुखी, तिल इत्यादि।

आवरण फसलें

सनई, ढैंचा या तिलहन फसलें मृदा की सतह ढककर खरपतवार बीजों को अंकुरण से रोकती हैं और साथ ही मृदा उर्वरता बढ़ाती हैं।

मृदा सौरीकरण

मृदा को पारदर्शी प्लास्टिक शीट से ढककर कुछ सप्ताह तक सूर्य की गर्मी के संपर्क में रखा जाता है। इससे मृदा का तापमान 45-60 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ जाता है, जिससे खरपतवार बीज, कीट और रोगजनक मर जाते हैं।

मल्च और स्ट्रिप-टिल

मल्चिंग प्रकाश को अवरुद्ध कर

स्थान-विशिष्ट खरपतवार प्रबंधन

स्थान-विशिष्ट खरपतवार प्रबंधन से खेत के विभिन्न हिस्सों में खरपतवारों की उपस्थिति और घनत्व के अनुसार शाकनाशी और अन्य नियंत्रक उपायों का चयन किया जाता है।

मल्टीस्पेक्ट्रल और हाइपरस्पेक्ट्रल इमेजिंग

- मल्टीस्पेक्ट्रल इमेजिंग के माध्यम से खेत के विभिन्न हिस्सों की विभिन्न तरंगदैर्ध्य पर निगरानी की जाती है, जिससे मुख्य रूप से शाकनाशी, नमी स्तर और प्रकाश की स्थिति का विश्लेषण करती है, जिससे खरपतवारों की पहचान सटीक होती है।
- हाइपरस्पेक्ट्रल सेंसिंग तकनीक फसल और खरपतवार के बीच अंतर को पहचानने में बेहद सक्षम है। इससे शाकनाशी का छिड़काव केवल उन क्षेत्रों में किया जा सकता है, जहां खरपतवार होते हैं।

वेरिएबल रेट टेक्नोलॉजी

- वेरिएबल रेट टेक्नोलॉजी का उपयोग करते हुए, खरपतवारों के घनत्व के अनुसार शाकनाशी की मात्रा को नियंत्रित किया जाता है।
- इसके अलावा, वेरिएबल रेट स्प्रेइंग सिस्टम ड्रोन या अन्य मशीनों पर लागू किया जा सकता है, जिससे शाकनाशी का छिड़काव केवल उन क्षेत्रों में किया जाता है, जहां खरपतवारों की समस्या होती है।

लाभ

- शाकनाशी की खपत में कमी और खर्च में कटौती।
- केवल लक्षित क्षेत्रों में शाकनाशी का उपयोग होने से पर्यावरणीय प्रभाव घटता है।

सारणी: विभिन्न फसलों में प्रयोग होने वाले शाकनाशी की खुराक एवं व्यावसायिक मात्रा

फसल	प्रयोग विधि	शाकनाशी एवं सांद्रता	खुराक (ग्राम/हैक्टर)	मात्रा (ग्राम/हैक्टर)
धान	सीधी बुआई वाले धान (उद्भव पूर्व)	पेण्डीमेथिलीन 30 प्रतिशत ईसी	1000–1500	3300–5000
		प्रेटिलाक्लोर 30 प्रतिशत+पाइराजोसल्फ्यूरॉन एथाइल 0.75 प्रतिशत जीआर	615	2000
		पेण्डीमेथिलीन 38.4 प्रतिशत+पाइराजोसल्फ्यूरॉन एथाइल 0.85 प्रतिशत जेडई	920	2000
		पेनोक्सुलाम 1 प्रतिशत+पेण्डीमेथिलीन 24 प्रतिशत एसई	625	2500
	रोपित धान (उद्भव पश्चात)	बिसपाइरिबैक–सोडियम 38 प्रतिशत+क्लोरीम्यूरॉन–मिथाइल 2.5 प्रतिशत+मेटसल्फ्यूरॉन मिथाइल 2.5 प्रतिशत डब्ल्यूजी	43	100
		फ्लोरपाइरॉक्सिफेन–बेंजाइल 2.13 प्रतिशत+सायहैलोफॉप–ब्यूटाइल 10.64 प्रतिशत ईसी	150	1250
		पेनोक्ससुलाम 1.02 प्रतिशत+सायहैलोफॉप–ब्यूटाइल 5.1 प्रतिशत ओडी	135	2250
		ट्रायाफेमोन 20 प्रतिशत+एथॉक्सीसल्फ्यूरॉन 10 प्रतिशत डब्ल्यूजी	66.5	225
मक्का	उद्भव पूर्व	एट्राजीन 50 प्रतिशत डब्ल्यूपी	500–1000	1000–2000
	उद्भव पश्चात	मेसोट्रियोन 2.27 प्रतिशत+एट्राजीन 22.7 प्रतिशत	875	3500
		हैलोसल्फ्यूरॉन मेथाइल 5 प्रतिशत+एट्राजीन 48 प्रतिशत डब्ल्यूजी	56.25+540	1125
		टोप्रामेजोन 1 प्रतिशत+एट्राजीन 30 प्रतिशत एससी	775	2500
		टेम्बोट्रियॉन 34.4 प्रतिशत एससी	120	286
		हैलोसल्फ्यूरॉन मेथाइल 75 प्रतिशत डब्ल्यूजी	67.5	90
सोयाबीन	उद्भव पूर्व	डाइक्लोसुलाम 84 प्रतिशत डब्ल्यूडीजी	22–26	26.2–30.9
		पेण्डीमेथिलीन 30 प्रतिशत+इमाजेथापायर 2 प्रतिशत ईसी	960	3000
		सल्फेंट्राजोन 28 प्रतिशत+क्लोमाजोन 30 प्रतिशत डब्ल्यूपी	725	1250
		डाइक्लोसुलाम 0.9 प्रतिशत+पेण्डीमेथिलीन 35 प्रतिशत एसई	22.5+875	2500
	उद्भव पश्चात	फोमेसाफेन 12 प्रतिशत+क्विजालोफॉप–एथाइल 3 प्रतिशत एससी	180+45	1500
		फ्लूएजिफॉप–पी–ब्यूटाइल 11.1 प्रतिशत+फोमेसाफेन 11.1 प्रतिशत एसएल	250	1000
		फ्लूथियासेट–मेथाइल 2.5 प्रतिशत+क्विजालोफॉप–एथाइल 10 प्रतिशत ईसी	12.5+50	500
		फोमेसाफेन 12.5 प्रतिशत+फेनॉक्साप्रॉप–पी–एथाइल 10 प्रतिशत+क्लोरीम्यूरॉन–एथाइल 0.9 प्रतिशत एमई	125+100+9	1000
		प्रोपाक्विजाफॉप 2.5 प्रतिशत+इमाजेथापायर 3.75 प्रतिशत एमई	125	2000
		क्विजालोफॉप–एथाइल 7.5 प्रतिशत+इमाजेथापायर 15 प्रतिशत ईसी	32.5+65.6	437.5
मूंगफली एवं उड़द	उद्भव पूर्व	पेण्डीमेथिलीन 30 प्रतिशत+इमाजेथापायर 2 प्रतिशत ईसी	960	3000
	उद्भव पश्चात	प्रोपाक्विजाफॉप 2.5 प्रतिशत+इमाजेथापायर 3.75 प्रतिशत एमई	125	2000
		फोमेसाफेन 17.5 प्रतिशत+क्लोडिनाफॉप प्रोपारजिल 12.5 प्रतिशत एमई	175+125	1000
		फोमेसाफेन 16.8 प्रतिशत+प्रोपाक्विजाफॉप 5.2 प्रतिशत एमई	210+65	1250
		इमाजेथापायर 10 प्रतिशत एसएल	75	1000
अरहर	उद्भव पूर्व	पेण्डीमेथिलीन 30 प्रतिशत+इमाजेथापायर 2 प्रतिशत ईसी	960	3000
	उद्भव पश्चात	प्रोपाक्विजाफॉप 2.5 प्रतिशत+इमाजेथापायर 3.75 प्रतिशत एमई	125	2000
		क्विजालोफॉप–एथाइल 7.5 प्रतिशत+इमाजेथापायर 15 प्रतिशत ईसी	32.5+65.6	437.5
गेहूं	उद्भव पूर्व	पेण्डीमेथिलीन 30 प्रतिशत ईसी	1000–1500	3300–5000
		पाइरोक्सासल्फोन 85 प्रतिशत डब्ल्यूजी	127.5	150
		पेण्डीमेथिलीन 40 प्रतिशत+मेट्रिब्यूजिन 8 प्रतिशत ईसी	1000+200	2500
	उद्भव पश्चात	मेटसल्फ्यूरॉन मिथाइल 20 प्रतिशत डब्ल्यूपी/डब्ल्यूजी	4	20
		पिनॉक्साडेन 5.1 प्रतिशत ईसी	40–45	800–900
		मेट्रिब्यूजिन 70 प्रतिशत डब्ल्यूपी	175–210	250–300
		कारफेंट्राजोन एथाइल 40 प्रतिशत डीएफ	20	50
		कारफेंट्राजोन 20 प्रतिशत+सल्फोसल्फ्यूरॉन 25 प्रतिशत डब्ल्यूजी	20+25	100
		मेटसल्फ्यूरॉन मिथाइल 10 प्रतिशत+कारफेंट्राजोन एथाइल 40 प्रतिशत डीएफ	25	50

		मेसोसल्फ्यूरॉन मिथाइल 3 प्रतिशत+आयोडोसल्फ्यूरॉन मिथाइल सोडियम 0.6 प्रतिशत डब्ल्यूपी	12+2.4	400
		सल्फोसल्फ्यूरॉन 75 प्रतिशत+मेटसल्फ्यूरॉन मिथाइल 5 प्रतिशत डब्ल्यूजी	30+2	40
		क्लोडिनाफॉप प्रोपारजाइल 15 प्रतिशत+मेटसल्फ्यूरॉन मिथाइल 1 प्रतिशत डब्ल्यूपी	60+4	400
		मेट्रिब्यूजिन 20 प्रतिशत+क्लोडिनाफॉप प्रोपारजाइल 9 प्रतिशत डब्ल्यूपी	120+54	600
		मेट्रिब्यूजिन 42 प्रतिशत+क्लोडिनाफॉप प्रोपारजाइल 12 प्रतिशत डब्ल्यूपी	210+60	500
		हेलॉक्सिफेन मिथाइल 20.8 प्रतिशत+फ्लोरासुलाम 20 प्रतिशत डब्ल्यूपी	12.76	31.23
		2,4-डी सोडियम साल्ट 50 प्रतिशत+मेट्रिब्यूजिन 15 प्रतिशत डब्ल्यूपी	400+120	800
गन्ना	उद्‌भव पूर्व	एट्राजीन 50 प्रतिशत डब्ल्यूपी	500-2000	1000-4000
		एमीट्रिन 80 प्रतिशत डब्ल्यूजी	2000	2500
		मेट्रिब्यूजिन 70 प्रतिशत डब्ल्यूजी	1050-2000	1500-2000
		सल्फेंट्राजोन 28 प्रतिशत+क्लोमाजोंन 30 प्रतिशत डब्ल्यूपी	350+375	1250
	उद्‌भव पश्चात	हैलोसल्फ्यूरॉन मेथाइल 75 प्रतिशत डब्ल्यूजी	67.5	90
		हैलोसल्फ्यूरॉन मेथाइल 12 प्रतिशत+मेट्रिब्यूजिन 55 प्रतिशत डब्ल्यूजी	54+247.5	450
		मेसोट्रियोन 2.27 प्रतिशत+एट्राजीन 22.7 प्रतिशत	875	3500
		टोप्रामेजोन 1 प्रतिशत+एट्राजीन 30 प्रतिशत एससी	930	3000
कपास	उद्‌भव पूर्व	पायरीथियोबैक सोडियम 3.1 प्रतिशत+पेण्डीमेथिलीन 34 प्रतिशत जैडसी	650	1750
	उद्‌भव पश्चात	पायरीथियोबैक सोडियम 6 प्रतिशत+क्विजालोफॉप एथाइल 4 प्रतिशत ईसी	125	1250
		पायरीथियोबैक सोडियम 10 प्रतिशत ईसी	62.5	625

खरपतवारों के अंकुरण को कम करता है और स्ट्रिप-टिल विधि में केवल फसल पंक्ति में जुताई होती है, जिससे बीच की जगह ढकी रहती है और खरपतवारों का दबाव घटता है।

फ्लेम वीडिंग

फ्लेम वीडिंग में प्रोपेन गैस फ्लेमर से खरपतवारों को ऊष्मा देकर नष्ट किया जाता है। इससे पौधों की कोशिकाएं फट जाती हैं और वे सूखकर मर जाती हैं।

नए आयाम और तकनीकी दृष्टिकोण

खरपतवार प्रबंधन के क्षेत्र में नए आयाम पारंपरिक तरीकों से कहीं अधिक प्रभावी और पर्यावरण के प्रति संवेदनशील हैं। इन नए आयामों में नए शाकनाशी, डिजिटल तकनीकी उपकरणों, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, मशीन लर्निंग, ड्रोन, स्मार्ट स्प्रेयर, रोबोटिक्स, और रिमोट सेंसिंग जैसे अत्याधुनिक उपकरणों का होता है।

नए शाकनाशी

नए शाकनाशी केवल लक्षित खरपतवारों को ही प्रभावित करते हैं, जिससे फसलों और अन्य उपयोगी पौधों पर कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता है। इन शाकनाशियों की जैविक घुलनशीलता और रासायनिक स्थिरता बेहतर होती है, जो भूमि और जल स्रोतों को प्रदूषित करने के जोखिम को कम करती है।

ड्रोन और सैटेलाइट आधारित

ड्रोन और सैटेलाइट आधारित निगरानी ने कृषि क्षेत्र में एक नई क्रांति का सूत्रपात किया है। इन उपकरणों का उपयोग बहुत कम समय में व्यापक क्षेत्रों पर निगरानी रखने में मदद करता है।

ड्रोन आधारित रिमोट सेंसिंग

ड्रोन के माध्यम से मल्टीस्पेक्ट्रल और हाइपरस्पेक्ट्रल कैमरों का उपयोग कर खेत की छवियां लेता है। इनका विश्लेषण कर खरपतवारों की पहचान करके सटीकता के साथ घनत्व का मूल्यांकन कर इन क्षेत्रों पर शाकनाशी का छिड़काव करता है।

सैटेलाइट इमेजरी

सैटेलाइट के माध्यम से बड़े भूभाग पर निगरानी की जाती है और खरपतवारों के फैलाव का विस्तृत डेटा प्रदान करती है।

लाभ

- बड़े क्षेत्रों पर निगरानी संभव होती है।
- ड्रोन और सैटेलाइट की मदद से कम समय में अधिक डेटा एकत्र किया जाता है।

रोबोटिक्स और इलेक्ट्रिक/लेजर वीडिंग

रोबोटिक्स और लेजर वीडिंग तकनीकों से अब रासायनिक शाकनाशी के बिना खरपतवारों का प्रभावी और सटीक नियंत्रण संभव है।

रोबोटिक प्लेटफॉर्म

रोबोटिक प्लेटफॉर्म्स, जो आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और कंप्यूटर विजन से सुसज्जित होते हैं। खेतों में खरपतवारों की पहचान कर, यांत्रिक विधियों से उन्हें नष्ट करते हैं।

लेजर विडिंग

लेजर वीडिंग

इसमें लेजर बीम का उपयोग खरपतवारों को जलाने के लिए किया जाता है। यह एक पूरी तरह से रसायनरहित तकनीक है।

लाभ

- रासायनिक शाकनाशी की आवश्यकता नहीं होती है।
- इलेक्ट्रिक और लेजर वीडिंग ऊर्जा की न्यूनतम खपत करती है, जिससे अधिक प्रभावशीलता और कम ऊर्जा खपत होती है।

ड्रोन, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, मशीन लर्निंग, रोबोटिक्स और स्मार्ट स्प्रेयर जैसी तकनीकों का उपयोग खरपतवारों के नियंत्रण को अधिक सटीक, प्रभावी और पर्यावरणीय रूप से संवेदनशील बनाता है। समेकित खरपतवार प्रबंधन और डेटा-संचालित नीतियां फसलों की सुरक्षा और कृषि उत्पादकता बढ़ाने में अहम भूमिका निभा सकती हैं।

मशीनों से बदलता कृषि का स्वरूप

दिलीप कुमार कुशवाहा[1], पी.के. साहू[2], अमित गुप्ता[3], नृसिंह चरण प्रधान[4] और अरुणा टी.एन.[4]

"भारतीय कृषि का इतिहास यह दर्शाता है कि खेती हमेशा बदलती तकनीकों और मशीनों के साथ विकसित होती रही है। प्रारंभिक दौर में कृषि पूरी तरह मानव और पशु शक्ति पर आधारित थी, जिससे उत्पादकता सीमित थी और मानसून पर निर्भरता अधिक थी। स्वतंत्रता के बाद खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता के चलते यांत्रिकीकरण को प्रोत्साहन मिला। ट्रैक्टर, थ्रेशर, पंपसेट और कल्टीवेटर जैसी मशीनों ने श्रम एवं समय की बचत की और उत्पादन क्षमता में वृद्धि की। वर्ष 1960 के दशक की हरित क्रांति भारतीय कृषि के लिए एक स्वर्णिम अध्याय साबित हुई। उन्नत बीज, रासायनिक उर्वरक, सिंचाई साधन और मशीनों के बढ़ते उपयोग ने देश को खाद्यान्न आत्मनिर्भरता की राह पर अग्रसर किया। इसके बाद सटीक कृषि ने नई संभावनाएं खोलीं, जहां जीपीएस और जीआईएस तकनीकों ने उपादनों का विवेकपूर्ण उपयोग सुनिश्चित किया, जिससे लागत में कमी और पर्यावरणीय संरक्षण दोनों संभव हुआ। हाल के वर्षों में स्मार्ट खेती ने कृषि को और आधुनिक तथा टिकाऊ दिशा दी है। ड्राइवरलेस ट्रैक्टर, ड्रोन, रोबोटिक स्प्रेयर, हैप्पी सीडर, सुपर सीडर और डायरेक्ट सीडेड राइस जैसी उन्नत मशीनें पराली प्रबंधन, जल संरक्षण और श्रम की कमी को दूर करने में सहायक बन रही हैं। वर्तमान में भारत में कृषि शक्ति उपलब्धता 3.126 किलो वॉट प्रति हैक्टर तक पहुंच चुकी है और मशीनीकरण का स्तर 47 प्रतिशत हो गया है। यह दर्शाता है कि भारतीय कृषि तेजी से आधुनिक हो रही है और आने वाले समय में विकसित देशों की तरह उच्च स्तर का मशीनीकरण हासिल करने की दिशा में निरंतर प्रगति कर रही है।"

मानव ने नवपाषाण युग में खेती करना सीख लिया था। इससे मानव सभ्यता की जीवनशैली में अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ, लोग स्थायी रूप से एक जगह बसने लगे और आहार की उपलब्धता बढ़ने से जनसंख्या में भी वृद्धि हुई। इस काल में बीज भंडारण और दोबारा प्रयोग, साथ ही खेती के लिए पारंपरिक औजारों का विकास हुआ। इसे कृषि 1.0 कहा गया, जो पूर्व-औद्योगिक युग की खेती थी। इसकी विशेषताएं मानव एवं पशु श्रम पर निर्भरता, हाथ के औजारों का प्रयोग, छोटे खेत, कम उत्पादकता और मुख्यत: स्थानीय उपभोग थीं। किसान भूमि और मौसम के पारंपरिक ज्ञान पर निर्भर रहते थे। यह निर्वाह खेती का काल था, जहां बैल, घोड़े और साधारण औजारों से खेती होती थी और उत्पादकता बहुत कम थी।

स्वतंत्रता से पहले भारतीय कृषि पूरी तरह पशु शक्ति पर आधारित थी। हल, खुरपी, दरांती और बैलगाड़ी ही मुख्य साधन थे। वर्ष 1904 में ब्रिटिश शासन में पहला ट्रैक्टर पंजाब आया, लेकिन छोटे खेत और अधिक लागत के कारण इसका प्रसार नहीं हुआ। वर्ष 1940 तक पूरे देश में केवल 700-800 ट्रैक्टर थे और वर्ष 1951 तक संख्या लगभग 800 रही। वर्ष 1961 के आसपास आयशर, महिन्द्रा, टैफे एवं गुजरात ट्रैक्टर ने पहला स्वदेशी ट्रैक्टर का उत्पादन शुरू किया। इसी दौरान डीजल और इलेक्ट्रिक पंपसेट आए, जिससे सिंचाई और उत्पादकता भी बढ़ी। यदि हम आजादी के समय को देखें तो 83 प्रतिशत खेती मानव-पशु शक्ति पर आधारित थी और वर्ष 1960 तक शक्ति उपलब्धता मात्र 0.3 किलोवॉट/हैक्टर ही थी।

[1]वैज्ञानिक; [2]प्रधान वैज्ञानिक; [3]एस.आर.एफ; [4]पीएचडी छात्र, रोबोटिक्स एवं एआई प्रयोगशाला, कृषि अभियांत्रिकी संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

औद्योगिक क्रांति और द्वितीय विश्व युद्ध के बाद कृषि यांत्रिकीकरण का दूसरा चरण शुरू हुआ। ट्रैक्टर, कल्टीवेटर, थ्रेशर, इंजन और हार्वेस्टर आदि मशीने आयीं। हरित क्रांति (1960 के दशक) में यांत्रिकीकरण ने उत्पादन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। वर्ष 1961 तक ट्रैक्टरों की संख्या पचास हजार हो गई थी। पारंपरिक औजारों को ट्रैक्टर-संगत बनाया जाने लगा जैसे कि कल्टीवेटर, सीड ड्रिल और थ्रेशर, आदि।

सीडड्रिल ने बीज-खाद समान गहराई पर डालना आसान किया और कल्टीवेटर, डिस्क हैरो ने जुताई तेज करने में भूमिका निभायी। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद और कृषि विश्वविद्यालयों ने इनके प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वर्ष 1960 के दशक में थ्रेशर ने गेहूं-धान की मड़ाई में क्रांति ला दी। इसी समय ट्रैक्टर का निर्माण भी शुरू किया। कंबाइन हार्वेस्टर वर्ष 1970 के दशक से प्रचलन में आया। इनका निजी कंपनियों द्वारा घरेलू स्तर पर निर्माण शुरू किया गया आज भारत में बड़ी संख्या में स्व-चालित हार्वेस्टर बनते हैं।

छोटे खेतों के लिए वर्ष 1970 के दशक में पॉवर टिलर आया, जिसे वीएसटी टिलर्स और कोबोटा ने किसानों तक पहुंचाया। यह ट्रैक्टर से सस्ता और कम ईंधन वाला विकल्प था, जिससे छोटे किसानों को भी लाभ मिला। वर्ष 1980 के आसपास प्रेसीजन न्यूमैटिक प्लांटर आया, जिसने बीज बोने में सटीकता दी, पर महंगा होने से प्रसार धीमा रहा। वर्ष 2001 में लेजर लैंड लेवलर आया, जिसने खेत समतल कर पानी की बचत और उत्पादकता बढ़ाई, लेकिन लागत अधिक होने से अपनाने की गति धीमी रही।

देश में डीजल इंजन वर्ष 1920 के दशक में सिंचाई हेतु लाए गए। किन्तु आज टीएमटीएल (आयशर), महिंद्रा आदि इन्हें और किसानों के पास इनकी उपलब्धता बढ़ी।

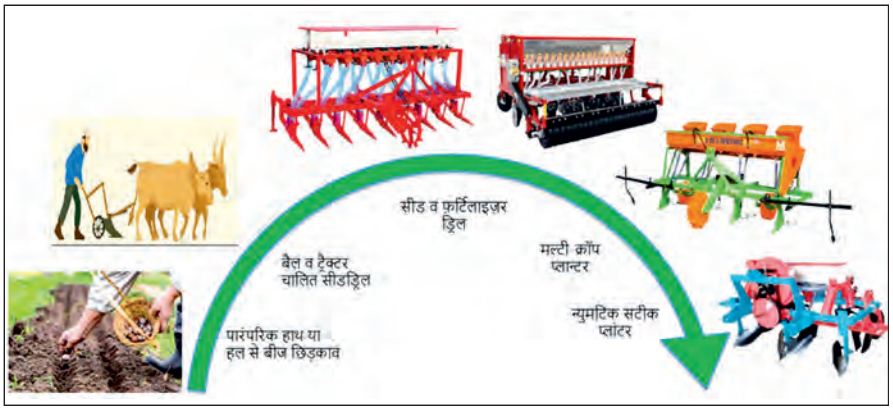

बीज बुआई तकनीकों का क्रमिक विकास

रोबोट से कुशलता

वहीं सब्जी बुआई की मशीन और निराई-गुड़ाई रोबोट का विकास भी इस दौरान हुआ। ये एआई और सेंसर आधारित हैं और इनमें लघु किसानों को श्रम बचत और कृषि का लाभ मिलता है। कृषि अभियांत्रिकी संभाग द्वारा विकसित पूसा निराई लघु रोबोट खेतों और ग्रीनहाउस में संकरी पंक्तियों में निराई और गुड़ाई कार्य को सरल और कुशल बनाने के लिए विकसित किया गया है। यह रोबोट मानव श्रम की बचत करता है। यह संचालन में सुगम है और विशेष रूप से संकरी पंक्तियों वाले खेतों के लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होता है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के कृषि अभियांत्रिकी संभाग ने खरपतवारनाशी के सटीक छिड़काव हेतु एक उन्नत रोबोट विकसित किया है, जो भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा प्रमाणित भारत का पहला कृषि रोबोट है। इसके अतिरिक्त एक अन्य रोबोट भी विकसित किया गया है, जो रोबोटिक भुजाओं, कैमरा और नोजल्स की मदद से खरपतवारों पर रसायनों का सटीक छिड़काव करता है। यह रसायन और समय दोनों की बचत करता है। यह रोबोट ग्रीनहाउस और खेत दोनों में ही उपयोगी है। ग्रीनहाउस में किसान अक्सर रासायनिक जोखिम और असामान्य शारीरिक मुद्रा के कारण स्वास्थ्य समस्याओं से जूझते हैं। इन्हीं चुनौतियों से बचाने हेतु टेलीरोबोटिक लक्ष्य-विशिष्ट कीटनाशक एप्लीकेटर विकसित किया गया है। किसान इसे ग्रीनहाउस के बाहर बैठकर रिमोट से संचालित कर सकता है, जिससे उसे अंदर जाने की आवश्यकता नहीं होती।

जीपीएस तकनीक अमेरिकी रक्षा विभाग ने वर्ष 1970 में विकसित की, वर्ष 1995 में पूर्ण रूप से चालू हुई और वर्ष 2000 में नागरिक उपयोग के लिए उपलब्ध हो गई। यूरोप में वर्ष 1980 के आसपास इसका प्रयोग वेरिएबल रेट एप्लीकेशन के लिए हुआ, वर्ष 1990 तक अमेरिका, कनाडा और ऑस्ट्रेलिया में इसका प्रसार हुआ। वर्ष 1992 में पहली बार फसल उत्पादन आकलन एवं नियंत्रण के लिए जीपीएस तथा जीआईएस का प्रयोग हुआ। यही सटीक कृषि (कृषि 3.0) की नींव बनी, जहां मिट्टी, फसल और मौसम पर आधारित डेटा से उर्वरक, कीटनाशक और पानी का सटीक उपयोग संभव हुआ। भारत में यह तकनीक धीरे-धीरे आई।

वर्ष 1980-2000 के बीच रोटावेटर, मल्चर, डोजर और बेलर जैसे ट्रैक्टर चालित उपकरण लोकप्रिय हुए। रोटावेटर ने बारीक जुताई, मल्चर ने अवशेष प्रबंधन, डोजर ने समतलीकरण और बेलर ने पराली/चारे की गांठ बनाना आसान किया। इसी समय

ट्रैक्टरों का समय के साथ बदलता स्वरूप

डीजल एवं इलेक्ट्रिक पंपसेट और ट्यूबवेल आधारित सिंचाई का प्रसार हुआ। इससे धान, गेहूं और गन्ने जैसी फसलों की पैदावार बढ़ी और हरित क्रांति को गति मिली। वर्ष 1990 के दशक में लेजर लैंड लेवलर पंजाब एवं हरियाणा कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा विकसित हुआ, जिसने खेत समतल कर पानी की 20–25 प्रतिशत बचत और उर्वरक उपयोग में सुधार किया। इसी दौर में कस्टम हायरिंग सेंटर बने, जहां से छोटे किसान ट्रैक्टर, थ्रेशर और हार्वेस्टर किराए पर लेने लगे।

कृषि 4.0 का दौर स्मार्ट खेती कहलाया, जिसमें आईओटी, सेंसर, जीपीएस, रोबोट, ड्रोन और स्वचालित मशीनों ने जगह बनाई। स्वायत्त मशीनें एवं रोबोट्स निराई, कटाई और रोपण जैसे सटीक कार्य करने लगे, जिससे दक्षता और श्रम प्रबंधन आसान हुआ।

वर्ष 2000 के दशक में पैडी ट्रांसप्लान्टर आया, जिसे कोबोटा, यांमार और महिंद्रा ने बढ़ावा दिया। इससे रोपाई की गति बढ़ी और श्रम लागत 50 प्रतिशत तक घटी। छोटे किसानों के लिए मिनी कंबाइन हार्वेस्टर और रीपर-बाइंडर (प्रीत, जॉन डियर, क्लास आदि) आए, जिन्होंने समय और लागत बचाई। इसी दौरान फॉडर चॉपर, मक्का और गन्ना प्रोसेसिंग मशीनें भी लोकप्रिय हुईं।

वर्ष 2002 में पंजाब कृषि विश्वविद्यालय और सीएसआईआर ने हैप्पी सीडर विकसित किया, जो पराली जलाए बिना गेहूं की बुआई करता है। वर्ष 2017 में सुपर सीडर आया, जो पराली काटकर मिट्टी में मिलाते हुए बुआई करता है।

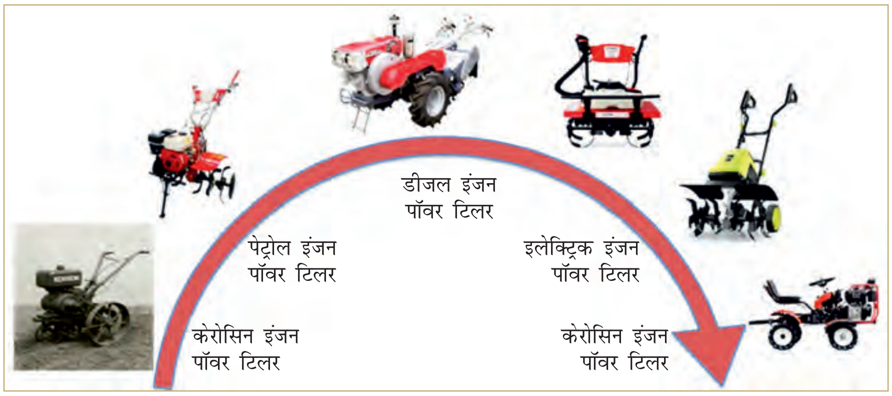

पॉवर टिलर का क्रमिक विकास

वर्ष 2010 में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद और भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान ने डीएसआर तकनीक विकसित की, जिसमें धान की सीधी बुआई से 25–30 प्रतिशत पानी बचता है। यह विधि पंजाब एवं हरियाणा में लोकप्रिय हुई। रीपर, बेलर और मल्चर बने, जिनसे पराली प्रबंधन आसान हुआ और चारा एवं ऊर्जा उत्पादन के नए स्रोत मिले। आज भारत में ट्रैक्टर, पंपसेट, मल्चर, बेलर, स्ट्रॉ रीपर और स्मार्ट तकनीकों का व्यापक उपयोग हो रहा है, जिसने कृषि को परंपरागत श्रम-आधारित प्रणाली से आधुनिक, पर्यावरण-अनुकूल और सटीक प्रणाली में बदल दिया है।

वर्ष 2020 के बाद ड्राइवरलेस ट्रैक्टर विकसित हुए। ये ट्रैक्टर जीपीएस तकनीक, सेंसर आधारित और बिना ड्राइवर के खेत में काम कर सकते हैं। इससे श्रम संकट दूर हुआ और खेती का आधुनिकीकरण हुआ।

वर्ष 2010–20 के बीच ड्रोन तकनीक के प्रयोग शुरू हुए। इन ड्रोन का उपयोग कीटनाशक छिड़काव और फसल निगरानी के लिए किया गया। इससे समय और श्रम की बचत हुई और खेती अधिक सटीक बनी।

देश में खाद्यान्न उत्पादन समय के साथ क्रमिक रूप से बढ़ता गया है। स्वतंत्रता से पहले यह बहुत कम और निर्वाह स्तर का था, जहां उत्पादकता मात्र 0.5–0.7 टन प्रति हैक्टर रही और अनाज आयात करना पड़ता था। वर्ष 1947 में कुल उत्पादन केवल 50–52 मिलियन टन था, जो 1960 तक बढ़कर 82 मिलियन टन हुआ। हरित क्रांति के बाद वर्ष 1980 तक उत्पादन लगभग 130 मिलियन टन पर पहुंचा। इसके बाद वर्ष 1991 में यह 176 मिलियन टन, वर्ष 2000 में 209 मिलियन टन और वर्ष 2010 तक 244 मिलियन टन तक पहुंचा। स्मार्ट तकनीक और आधुनिक यांत्रिकीकरण के दौर में वर्ष 2023–24 में भारत ने लगभग 332 मिलियन टन खाद्यान्न उत्पादन किया और वर्ष 2025–26 के लिए सरकार ने 354 मिलियन टन का लक्ष्य रखा है।

एआई और आईओटी

एआई और आईओटी आधारित उपकरण, जिनमें मृदा सेंसर, स्मार्ट सिंचाई सिस्टम और फसल निगरानी तकनीक शामिल हैं। इनसे जल-विद्युत की बचत और उत्पादन की गुणवत्ता में सुधार हुआ। सरकार ने वर्ष 2020 के बाद सीएचसी ऐप शुरू किया, जिससे किसान मोबाइल से मशीन किराए पर ले सकते हैं और लघु किसानों के लिए यंत्रीकरण आसान हुआ। वर्तमान में भारत में कृषि मशीनीकरण का स्तर लगभग 47 प्रतिशत है। बीज-क्यारी तैयार करने में यह 70 प्रतिशत तक है, जबकि बुआई, निराई और कटाई में कम है। ट्रैक्टर शक्ति का सबसे बड़ा योगदान है। पंजाब-हरियाणा में कृषि बिजली उपलब्धता 5-6 किलो वॉट प्रति हैक्टर है, जबकि पूर्वोत्तर में केवल 0.2 किलो वॉट प्रति हैक्टर भाकृअनुप के अनुसार औसत उपलब्धता लगभग 3.126 किलो वॉट प्रति हैक्टर है। कृषि का अगला चरण कृषि 5.0 है। इसमें एआई, मशीन लर्निंग, आईओटी और स्मार्ट सेंसर के साथ 5जी और 6जी नेटवर्क का उपयोग कर बुद्धिमान और स्थायी कृषि प्रणाली विकसित की जा रही है। डिजिटल ट्विन्स तकनीक खेत का आभासी मॉडल बनाकर पूर्वानुमान देती है और ब्लॉकचेन आपूर्ति शृंखला की पारदर्शिता बढ़ाता है। एआई और ब्लॉकचेन का संयोजन कृषि को अधिक सुरक्षित, कुशल और पर्यावरण अनुकूल बना रहा है।

लेखकों से अनुरोध

आज सूचना प्रौद्योगिकी के बदले हुए कदमों को हमारे पाठक और लेखक दोनों ने पहचाना है। पाठकगण लेखकों से सीधी बात कर सकें, इसलिए हम चाहते हैं कि सभी लेखक अपने लेख पोर्टल epatrika.icar.org.in में भेजने के साथ अपना ई-मेल पता तथा मोबाइल नम्बर अवश्य दें।

संपादक

दिसम्बर के मुख्य कृषि कार्य

राजीव कुमार सिंह, एस.एस. राठौर, अंजली पटेल, प्रवीण कुमार उपाध्याय और **कपिला शेखावत**

"दिसम्बर यानी मार्गशीर्ष-पौष में ठण्ड चरम पर होती है, जो कृषि कार्य की दृष्टि से बेहद अहम है। इस माह में रबी फसलें जैसे-चना, मटर, मसूर, सरसों, गेहूं, आलू और अन्य सब्जी फसलें खेतों में अच्छी बढ़वार की अवस्था में होती हैं। इनकी अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए किसानों को मौसम के उतार-चढ़ाव का ध्यान रखना बहुत ही जरूरी है, जिससे वे पाला, कोहरा के साथ-साथ कीट, रोग और व्याधियों का प्रकोप तथा अचानक बढ़ने वाले वातावरण के तापमान से अपनी फसलों की सुरक्षा कर सकें। खेत में पर्याप्त नमी होने पर फसल बढ़वार के साथ-साथ पौधों में पाले से बचने की क्षमता भी बढ़ जाती है। वहीं दिसम्बर के अंत तक तोरिया की फसल भी पककर तैयार हो जाती है। तोरिया की कटाई के उपरांत दूसरी फसल की बुआई में देरी नहीं करनी चाहिए। इसके साथ ही चारा फसलें जैसे-बरसीम, जई और रिजका कटाई के लिए तैयार हो जाती हैं। इस प्रकार विभिन्न फसलों में इस माह में किये जाने वाले कार्यों का वर्णन इस अंक में दिया जा रहा है।"

दिसम्बर में अधिकतर फसलें अपनी क्रांतिक बढ़वार की अवस्था में होती हैं। समय पर बोया गया गेहूं ताजमूल अवस्था में होता है, जिसमें सिंचाई बेहद आवश्यक हो जाती है। सिंचाई के साथ-साथ पोषक तत्व प्रबंधन पर भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

सस्य विज्ञान संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली-110012

गेहूं

पछेती बुआई हेतु किस्मों का चयन

- पछेती बुआई की परिस्थितियों में भी अधिकतर किसान सामान्य प्रजातियों को ही उगाते हैं। इससे उत्पादकता काफी कम हो जाती है। ऐसी स्थिति में अधिक पैदावार लेने के लिए अनुमोदित प्रजातियों को ही बोना चाहिए। सिंचित अवस्था में देरी से बुआई के लिए उन्नत प्रजातियां जैसे-एच.डी.-3428 (गेहूं की नई प्रजाति, उत्तर-पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों के लिए उच्च उपज क्षमता, जलवायु अनुकूल, जैव-सशक्त जिंक संवर्धित और रोग प्रतिरोधक), एच.डी.-3118, एच.डी.-3271, एच.आई.-1621, एच.डी.-3271 और पर्वतीय क्षेत्रों के लिए वी.एल. 892,एच.एम.-375, एच.एस.-207, एच.एस.-420, एच. एस. 490 और बहुत देर से बुआई

तथा सिंचित स्थितियों के लिए डी.बी.डब्ल्यू.-316 (करण प्रेमा), पी.बी.डब्ल्यू.-833, सीजी-1029 (कनिष्क), एच.आई.-1634 (पूसा अहिल्या), एच.डी.-3407 आदि प्रमुख हैं।

पछेती गेहूं की बुआई

- पछेती किस्मों की बुआई एक निश्चित समय जैसे पूर्वी भारत में 10 दिसम्बर तक, उत्तरी भारत में 25 दिसम्बर तक एवं दक्षिणी भारत में 30 दिसम्बर तक कर देनी चाहिए। बुआई हेतु आधारीय एवं प्रमाणित बीजों का ही प्रयोग करना चाहिए।
- सिंचित क्षेत्रों में पछेती बुआई एवं लवणीय-क्षारीय मृदा तथा उत्तरी-पूर्वी मैदानी क्षेत्र, जहां धान के बाद गेहूं बोया जाता है, के लिए 125 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर बीज की आवश्यकता होती है। देरी से बोने पर तथा ऊसर भूमि में पंक्तियों की दूरी 15-18 सें.मी. रखनी चाहिए तथा बीज की गहराई 4 से 5 सें.मी. होनी आवश्यक है। यदि बीज शोधित न हो, तो 1.0 कि.ग्रा. बीज को 2.5 ग्राम बाविस्टीन या 2 ग्राम कैप्टॉन अथवा 2.5 ग्राम थीरम नामक दवा से शोधित कर लें।
- बुआई सीडड्रिल या देसी हल से ही करनी चाहिए। छिटकवां विधि से बोने से बीज की मात्रा अधिक लगती है तथा जमाव कम व निराई-गुड़ाई में असुविधा तथा असमान पौध संख्या होने से उपज कम हो जाती है। विभिन्न परिस्थितियों में बुआई हेतु फर्टी-सीडड्रिल, जीरो-टिलड्रिल या शून्य फर्ब ड्रिल आदि मशीनों का प्रचलन बढ़ रहा है।

पछेती गेहूं में पोषक तत्व प्रबंधन

- बुआई से पूर्व गोबर की खाद 5 से 10 टन प्रति हैक्टर की दर से मृदा में अच्छी तरह मिला दें। पछेती गेहूं के लिए प्रति हैक्टर 120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 50 कि.ग्रा. पोटाश की आवश्यकता होती है। बुआई के समय बलुई दोमट मृदा में फॉस्फेट और पोटाश की समूची मात्रा के साथ 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, जबकि भारी दोमट मृदा में 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन का प्रयोग करें।
- गेहूं की फसल में यदि जिंक की कमी है, तो 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर की दर से बुआई के समय खेत में डालनी चाहिए। यदि इसके बाद भी जिंक की कमी दिखाई देती है, तो 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट का पर्णीय छिड़काव अवश्य करें।
- बलुई दोमट मृदा में प्रति हैक्टर 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन व भारी दोमट मृदा में 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की टॉप ड्रेसिंग पहली सिंचाई के समय करें। बलुई दोमट मृदा में नाइट्रोजन की शेष 40 कि.ग्रा. मात्रा का प्रयोग दूसरी सिंचाई के समय करें। गंधक की कमी को दूर करने के लिए गंधकयुक्त उर्वरक जैसे-अमोनियम सल्फेट या सिंगल सुपर फॉस्फेट का प्रयोग अच्छा रहता है। इसी प्रकार मैंग्नीज की कमी वाली मृदा में 1.0 कि.ग्रा. मैंग्नीज सल्फेट को 200 लीटर पानी में घोलकर पहली सिंचाई के 2-3 दिन पहले छिड़काव करना चाहिए।

जौ

जल प्रबंधन

- गेहूं की फसल की पूरी अवधि में लगभग 35-40 सें.मी. जल की आवश्यकता होती है। गेहूं के लिए सामान्यत: 4-6 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। समय पर गेहूं की बोई गयी फसल में इस समय बढ़वार की क्रांतिक अवस्था होती है। उपयुक्त जल प्रबंधन, गेहूं में कल्लों की संख्या के साथ-साथ सम्पूर्ण वृद्धि चरण को भी प्रभावित करता है।
- गेहूं की बुआई के 20-25 दिनों पर 5-6 सें.मी. की पहली सिंचाई ताजमूल (सी.आर.आई.) अवस्था पर और दूसरी सिंचाई 40-45 दिनों पर कल्ले निकलते समय करें।

खरपतवार नियंत्रण

- गेहूं की फसल में प्रमुख खरपतवार जैसे-गेहूं का मामा, कृष्णनील, मोथा, बथुआ, चटरी-मटरी, हिरनखुरी, सैंजी, अंकरी-अंकरा, जंगली जई, जंगली पालक, जंगली गाजर आदि मुख्य हैं। सामान्यत: खरपतवार फसलों को प्राप्त होने वाली 47 प्रतिशत नाइट्रोजन, 42 प्रतिशत फॉस्फोरस, 50 प्रतिशत पोटाश, 24 प्रतिशत मैग्नीशियम एवं 39 प्रतिशत कैल्शियम तक का उपयोग कर लेते हैं।
- संकरी एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियंत्रण के लिए सल्फोसल्फ्यूरॉन 75 डब्ल्यू.पी. की 33 ग्राम या टाइसोप्रोट्यूरॉन+मैटसल्फ्यूरॉन मिथाइल 75 डब्ल्यू.पी.+20 डब्ल्यू.पी. की 1.0-1.3 कि.ग्रा.+20 ग्राम या सल्फोसल्फ्यूरॉन 75 प्रतिशत+मैटसल्फ्यूरॉन मिथाइल 5 प्रतिशत की 40 ग्राम या क्लोडिनाफॉप 15 प्रतिशत+मैटसफ्ल्यूरॉन मिथाइल 1 प्रतिशत वेस्टा 15 डब्ल्यू.पी. की मात्रा 600-800 लीटर पानी में घोलकर पहली सिंचाई के बाद, परन्तु 30 दिनों की अवस्था से पूर्व प्रति हैक्टर छिड़काव करें।

जौ

जल प्रबंधन

- जौ की खेती के लिए अन्य दाने वाली फसलों की अपेक्षा कम जल (लगभग 2-3 सिंचाई) की आवश्यकता होती है। यदि एक ही सिंचाई उपलब्ध

हो, तो उसे कल्ले बनते समय (बुआई के 30-35 दिनों बाद) देनी चाहिए। दो सिंचाई की सुविधा होने पर पहली सिंचाई सक्रिय कल्ले फूटने की अवस्था (बुआई के 25-30 दिनों बाद) में तथा दूसरी सिंचाई बाली आने की अवस्था (बुआई के 65-70 दिनों बाद) में करें। क्षारीय व लवणीय मृदा में अधिक संख्या में हल्की सिंचाई देना उत्तम माना जाता है। सिंचाई के बाद नाइट्रोजन की शेष आधी मात्रा 66 कि.ग्रा. यूरिया (30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन) प्रति हैक्टर की दर से टॉप ड्रेसिंग करें।

खरपतवार नियंत्रण

- जौ की फसल सामान्यत: शीघ्र बढ़ने वाली होती है तथा अन्य खरपतवारों को बढ़ने नहीं देती। अत: अधिक मात्रा में खरपतवार होने पर ही खरपतवारनाशी का प्रयोग सावधानीपूर्वक करें। संकरी पत्ती वाले खरपतवारों जैसे-जंगली जई एवं गुल्ली डंडा के नियंत्रण के लिए पेण्डीमेथिलीन (30 प्रतिशत) 3.5 लीटर या आइसोप्रोट्यूरॉन (75 प्रतिशत) 1.25 कि.ग्रा. मात्रा का प्रयोग करें। वहीं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों जैसे-बथुआ, जंगली गाजर एवं हिरनखुरी के नियंत्रण के लिए 2,4-डी (सोडियम लवण 80 प्रतिशत) 650 ग्राम तथा संकरी पत्ती वाले खरपतवारों के नियंत्रण के लिए 2,4-डी एस्टर 750 ग्राम या आइसोगार्ड प्लस 1.25 कि.ग्रा. या आइसोप्रोट्यूरॉन (75 प्रतिशत) 1.0 कि.ग्रा. बुआई के 30-35 दिनों बाद 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।

चना

बुआई

- उत्तरी भारत में धान, मक्का, ज्वार, बाजरा, कपास एवं गन्ने की फसल कटने के बाद जहां सिंचाई के साधन उपलब्ध हैं, तो चने की बुआई नवम्बर के अंत तक या दिसम्बर के प्रथम सप्ताह तक कर सकते हैं।

चना

खरपतवार नियंत्रण

- बुआई के 30 दिनों बाद एक बार निराई-गुड़ाई कर खरपतवारों को निकालना काफी लाभदायक रहता है। इससे जड़ों की अच्छी बढ़वार तथा फसल से अधिक उपज प्राप्त होती है।

निपिंग तथा नाइट्रोजन का पर्णीय छिड़काव

- चने में बुआई के 35-40 दिनों बाद शीर्ष कलिका की तुड़ाई से अधिक शाखाएं बनने से पैदावार भी अधिक होती है। देर से बोयी गई फसल में शाखाओं के बनते समय अथवा फली बनते समय 2 प्रतिशत यूरिया/डीएपी के घोल का छिड़काव करने से अच्छी पैदावार मिलती है।

शीतकालीन मक्का

जल प्रबंधन

- रबी मक्का में प्राय 4-6 सिंचाई की आवश्यकता होती है। बुआई के 20-25 दिनों बाद पहली निराई-गुड़ाई करके सिंचाई कर दें और पुन: समुचित नमी बनाये रखने के लिए समय-समय पर सिंचाई करते रहें।

नाइट्रोजन की टॉप ड्रेसिंग

- बुआई के लगभग 30-35 दिनों बाद पौधों के लगभग घुटने तक की ऊंचाई के होने पर प्रति हैक्टर 87 कि.ग्रा. यूरिया की प्रथम टॉप ड्रेसिंग तथा इतनी ही मात्रा की दूसरी टॉप ड्रेसिंग नर मंजरी निकलने से पूर्व करनी चाहिए। ध्यान रहे कि खेत में पर्याप्त नमी होनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण

- मक्का के खेत को शुरू के 45 दिनों तक खरपतवार रहित रखना चाहिए। इसके लिए 2-3 निराई-गुड़ाई पर्याप्त रहती है। खरपतवारों को एट्राजिन की 1-1.5 कि.ग्रा./हैक्टर मात्रा को 800 लीटर पानी में घोल बनाकर बुआई के बाद परंतु जमाव से पहले छिड़काव करके भी नियंत्रित किया जा सकता है।

पौध संरक्षण

- मक्का में वृंत बेधक एक हानिकारक कीट है, जो मक्का को शुरुआती अवस्था में प्रभावित करता है। यदि पत्तियों पर छोटे छिद्र दिखाई दें तो बिना देरी किए 4 प्रतिशत कार्बोफ्यूरॉन दाने को प्रभावित पौधों में डालना चाहिए। कभी-कभी मक्का की फसल को कुछ कीट जैसे-पाइरिला, आर्मीवर्म, कटवर्म आदि नुकसान पहुंचाते हैं। इनकी रोकथाम मोनोक्रोटोफॉस के छिड़काव से की जा सकती है।

जल प्रबंधन

- उत्तर-पूर्वी मैदानी क्षेत्रों में फूल बनते समय एक सिंचाई लाभदायक पायी गयी है। उत्तर-पश्चिमी मैदानी तथा मध्य भारत क्षेत्रों में दो सिंचाइयां, एक शाखा निकलते समय तथा दूसरी फली बनते समय सर्वाधिक क्रान्तिक पाई गयी हैं। फूल आने की अवस्था में सिंचाई नहीं करनी चाहिए अन्यथा फूलों के गिरने तथा अतिरिक्त वानस्पतिक वृद्धि होने की समस्या उत्पन्न हो सकती है। दलहनी फसलों में स्प्रिंक्लर विधि से सिंचाई करना सर्वोत्तम है।

पौध संरक्षण

- **झुलसा रोगः** इस रोग की रोकथाम के लिए प्रति हैक्टर 2.0 कि.ग्रा. जिंक मैंग्नीज कार्बामेट को एक हजार लीटर पानी में घोलकर 10 दिनों के अंतराल पर दो बार छिड़काव करें या क्लोरोथालोनिल 70 प्रतिशत डब्ल्यू पी/300 ग्राम/एकड़ या कार्बेण्डाजिम 12 प्रतिशत+मैंकोजेब 63 प्रतिशत डब्ल्यू पी/500 ग्राम/एकड़ या मेटिराम 55 प्रतिशत+पायरोक्लोरेस्ट्रोबिन 5 प्रतिशत डब्ल्यू जी/600 ग्राम/एकड़ या टेबुकोनाजोल 50 प्रतिशत+ ट्राबुफ्लोक्सीस्ट्रोबिन 25 प्रतिशत डब्ल्यू जी/100 ग्राम/एकड़ या ऐजोस्ट्रोबिन 11 प्रतिशत+टेबुकोनाजोल 18.3 प्रतिशत एससी/250 मि.ली./एकड़ की दर से 200 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।
- जैविक उपचार के रूप में ट्राइकोडर्मा विरिडी/500 ग्राम/एकड़ या स्यूडोमोनास फ्लोरोसेंस/250 ग्राम/एकड़ की दर से छिड़काव करें। पौधों की बुआई उचित दूरी पर करनी चाहिए तथा अत्यधिक वानस्पतिक बढ़वार से बचना चाहिए।

मटर

चने का उकठा रोग

- चने की फसल का यह रोग गंभीर हानि पहुंचाता है। इसका रोगकारक फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम प्रजाति साइसेरी नामक फफूंद है। यह मृदा तथा बीजजनित रोग है। यह रोग पौधे में फली लगने तक किसी भी अवस्था में हो सकता है।
- उकठा रोग के लक्षण शुरुआत में खेत में छोटे-छोटे हिस्सों में दिखाई देते हैं और धीरे-धीरे पूरे खेत में फैल जाते हैं। इस रोग में पौधे की पत्तियां सूख जाती हैं। उसके बाद पूरा पौधा मुरझाकर सूख जाता है। ग्रसित पौधे की जड़ के पास चीरा लगाने पर उसमें काली संरचना दिखाई देती है।
- उकठा रोग की रोकथाम के लिए बुआई अक्टूबर के अंत या नवम्बर के प्रथम सप्ताह में कर देनी चाहिए। रोकथाम के लिए 2.5 ग्राम कार्बेण्डाजिम या 2 ग्राम थीरम या 2 ग्राम ट्राइकोडर्मा विरिडी प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करें। उकठा रोगरोधी देसी प्रजातियां जैसे-पूसा-372, जेजी 11, जेजी 12, जेजी 16 तथा उकठा रोगरोधी काबुली प्रजातियां जैसे पूसा चमत्कार, जवाहर काबुली चना-1, विजय, फूले जी-95311, जेजीके 1, जेजीके 2, जेजीके 3 आदि का चयन करें।

मटर

जल प्रबंधन

- मटर की फसल में बुआई के 35-40 दिनों पर पहली सिंचाई करें। इसके बाद आवश्यकतानुसार सिंचाई की जा सकती है। इस दौरान खेत की निराई-गुड़ाई करना फायदेमंद रहता है।

पौध संरक्षण

चूर्णिल आसिता

- इसकी रोकथाम के लिए सल्फरयुक्त कवकनाशी जैसे सल्फेक्स को 2.5 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से 800-1000 लीटर पानी में घोलकर 15 दिनों के अंतराल में 2-3 बार फसल पर आवश्यकतानुसार छिड़काव करें या घुलनशील गंधक (0.2-0.3 प्रतिशत) का फसल पर छिड़काव करें। इसके अलावा कार्बेण्डाजिम (1 ग्राम/लीटर पानी) अथवा डीनोकैप, केराथेन 48 ई.सी. (0.5 मि.ली./लीटर पानी) का भी प्रयोग कर सकते हैं।

रतुआ

- इस रोग की रोकथाम के लिए मैंकोजेब दवा की 2.0 कि.ग्रा. मात्रा या डाइथेन एम-45 को 2 कि.ग्रा./हैक्टर या हेक्साकोनाजोल 1 लीटर या प्रोपीकोना 1 लीटर की दर से 600-800 लीटर पानी में घोलकर खड़ी फसल पर छिड़काव करें। उचित फसलचक्र अपनाएं एवं रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर नष्ट कर दें।

कीट नियंत्रण

- इण्डोक्साकॉर्ब (1 मि.ली./लीटर पानी) का छिड़काव कीटों से होने वाली क्षति को कम करता है। मटर के तनाछेदक कीट की रोकथाम के लिए डाइमिथोएट 30 ई.सी. दवा की 1.0 लीटर मात्रा और फलीछेदक कीट की रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफॉस 36 ई.सी. दवा को 750 मि.ली. की दर से 800 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

मसूर

जल प्रबंधन

- मसूर की फसल में भी अधिक पानी की आवश्यकता नहीं है, किन्तु अधिक

पैदावार के लिए 1 या 2 सिंचाई (पुष्पावस्था से पूर्व बुआई के 40-45 दिनों बाद) देने से उत्पादकता में वृद्धि होती है। यदि वर्षा हो जाती है, तो सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। अधिक पानी होने पर मसूर में इसका प्रतिकूल असर होता है। इसके लिए खेत में जल निकास की उचित व्यवस्था का होना बेहद जरूरी है।

पौध संरक्षण

- माहूं का प्रकोप होने पर डाइमिथोएट (0.03 प्रतिशत) का छिड़काव करें। रतुआ रोग के नियंत्रण हेतु घुलनशील गंधक (0.2-0.3 प्रतिशत) अथवा मैंकोजेब (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव करें। रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर नष्ट कर दें।

राई-सरसों और तोरिया/लाही

बुआई

- जिन क्षेत्रों में समय पर बुआई नहीं हो पाई है, वहां मध्य दिसम्बर तक पूसा सरसों 25, पूसा सरसों 26 और पूसा सरसों 28 की बुआई की जा सकती है। ये प्रजातियां कम अवधि की हैं और देरी से बुआई करने पर भी अच्छी पैदावार देने में सक्षम हैं।

पाले से बचाव

- दिसम्बर के अंतिम सप्ताह में तापमान में तीव्र कमी के कारण पाले की भी आशंका रहती है। इससे फसल बढ़वार और फली विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इससे बचने के लिए सल्फरयुक्त रसायनों का प्रयोग लाभकारी होता है। इन फसलों पर 0.2 प्रतिशत तुड़ाई मिथाइल सल्फोऑक्साइड अथवा 0.1 प्रतिशत थायो यूरिया का छिड़काव लाभप्रद होता है। इसके साथ-साथ पाला पड़ने के समय सिंचाई करने से भी पाले का दुष्प्रभाव कम होता है।

जल प्रबंधन

- सरसों में सिंचाई जल की उपलब्धता के आधार पर करें। यदि एक सिंचाई उपलब्ध हो, तो 50-60 दिनों की अवस्था पर करें। दो सिंचाई उपलब्ध होने पर पहली बुआई के 40-50 दिनों बाद एवं दूसरी सिंचाई 90-100 दिनों बाद करें। यदि तीन सिंचाई उपलब्ध हैं, तो पहली 30-35 व अन्य दो 30-35 दिनों के अंतराल पर करें। नाइट्रोजन

सरसों

अरहर

पौध संरक्षण

- फली छेदक के 4-5 लार्वा जब यौन आकर्षण जाल में लगातार 3-4 रातों तक पाएं, तो कीट प्रबंधन आरंभ करें। अल्पकालिक प्रजातियों में इण्डोक्साकार्ब (1 मि.ली. प्रति लीटर पानी) का प्रथम छिड़काव एवं निबौली के सत्त 5 प्रतिशत का द्वितीय छिड़काव करें। आवश्यकता होने पर निबौली के सत्त अथवा न्यूक्लियर पॉलीहेड्रोसिस विषाणु 250 लार्वा समतुल्य/हैक्टर की दर से तीसरा एवं चौथा छिड़काव करें।

कटाई

- जून में बोई गयी अरहर की कम अवधि की किस्में अभी कटाई के लिए तैयार हो जाती हैं। फसल का रंग सुनहरा-भूरा होने पर कटाई कर लेनी चाहिए। लगभग 7-8 दिनों में खेत में फसल सुखाकर मड़ाई करनी चाहिए। अरहर स्ट्रिपर 150 कि.ग्रा. प्रति घंटे की क्षमता के साथ अरहर के पौधे को बिना क्षति पहुंचाये, फलियों और पत्तियों को अलग कर देता है। इस प्रकार अलग की गई फलियों और पत्तियों की वर्टिकल थ्रेसर से मड़ाई की जा सकती है। उपयुक्त नमी पर फसल का भण्डारण करने से बाजार में अच्छा मूल्य प्राप्त हो जाता है।

की शेष आधी मात्रा का भी उपयोग सिंचाई के बाद करना है।

खरपतवार नियंत्रण

- सरसों की फसल को खरपतवारों से मुक्त रखने के लिए 20-25 दिनों में एक बार निराई-गुड़ाई करने से फसल अच्छी तरह और जल्दी से बढ़ती है। रासायनिक नियंत्रण हेतु बुआई से पूर्व फ्लूक्लोरेलिन (45 ई.सी.) की 2.2 लीटर मात्रा 600-800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें अथवा बुआई के बाद, परन्तु अंकुरण से पूर्व पेण्डीमेथिलीन (30 ई.सी.) 3.3 लीटर प्रति हैक्टर की दर से 600-800 लीटर पानी में अच्छी प्रकार मिलाकर छिड़काव करें। बुआई के 15-20 दिनों के अन्दर घने पौधों को निकालकर उनकी आपसी दूरी 15 सें.मी. करनी आवश्यक है।

कीट नियंत्रण

- सरसों कुल की फसलों पर अनेक हानिकारक कीटों का आक्रमण होता है, जिसमें से माहूं एवं आरा मक्खी मुख्य कीट हैं। माहूं कीट लगभग 35-70 प्रतिशत तक उपज में हानि एवं 5-10 प्रतिशत तक तेल की प्राप्ति में कमी करता है। जब कीट का प्रकोप औसतन 25 कीट प्रति पौधा या 10 प्रतिशत पौधों पर हो जाए, तो कीटनाशक जैसे इमिडाक्लोप्रिड (17.8 प्रतिशत) का 20-25 ग्राम या मोनोक्रोटोफॉस 35 डब्ल्यू.एस.सी. सक्रिय तत्व/हैक्टर या डाइमेथोएट 30 ई.सी. या मिथाइल डिमेटॉन 25 ई.सी. या क्विनालफॉस 25 ई.सी. या फॉस्फोमिडॉन 85 डब्ल्यू. एस.सी. 250 मि.ली. या थायामिडॉन 25 ई.सी. 1000 मि.ली. प्रति हैक्टर की दर से 600-800 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

रोग प्रबंधन

अधिक पानी और नाइट्रोजन का प्रयोग करने से कई प्रकार के रोग जैसे सफेद रतुआ, मृदु रोमिल असिता और तना गलन से पैदावार और तेल की गुणवत्ता में गिरावट आ जाती है। सफेद रतुआ एवं अल्टरनेरिया/काला धब्बा के लक्षण दिखाई देने पर 0.2 प्रतिशत डाइथेन एम-45, मैंकोजेब या रिडोमिल का छिड़काव करना चाहिए। यदि आवश्यकता पड़े, तो 10-15 दिनों के अंतराल पर एक और छिड़काव कर सकते हैं।

पेड़ी गन्ना

पुराने गन्ने की कटाई

- दिसम्बर में गन्ने की तकरीबन सभी किस्में कटाई के लिए तैयार हो जाती हैं। पुराने गन्ने की कटाई का कार्य जमीन से मिलाकर करें।

पेड़ी गन्ने के फुटाव हेतु प्रबंधन

- तापमान कम होने के कारण दिसम्बर-जनवरी में काटे गये गन्ने की जड़ से फुटाव कम होता है। दिसम्बर-जनवरी में गन्ने की कटाई जमीन की सतह से सटाकर करें। खेत की तैयारी के समय अवशेषों को निकालकर नष्ट कर दें। गन्ना काटने के तुरन्त बाद ठूंठों पर 2,4-डी खरपतवारनाशक की 1.5 से 2 लीटर मात्रा को 500-600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें। गन्ने की सूखी पत्तियों की 15-20 सें.मी. मोटी तह सतह के ऊपर बिछा दें, जिससे फुटाव अधिक होगा। शरदकालीन गन्ने में पिछले महीने यदि सिंचाई नहीं की है, तो आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहें। इससे गन्ना सूखने नहीं पायेगा और वजनी भी बनेगा। शरदकालीन गन्ने में सरसों, धनिया की अंत:फसल लगायें तथा ट्राइकोडर्मा की 20 कि.ग्रा. मात्रा प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें तथा निराई-गुड़ाई करते रहें।

कटाई

- तोरिया में दाना झड़ने की आशंका रहती है। इसलिए सही समय पर इसकी कटाई कर खेत को अगली फसल के लिए तैयार करें। तोरिया के बाद पछेती गेहूं, गन्ना, प्याज आदि फसलें उगाई जा सकती हैं।

बरसीम और जई

बरसीम

- बरसीम की फसल बढ़वार लेकर कटाई योग्य हो जाती है। यदि फसल 50-55 दिनों की हो गयी है, तो पहली कटाई कर लें। पहली कटाई करते समय ध्यान रहे कि कटाई 5-6 सें.मी. ऊपर से की जाये, ताकि बाद में वृद्धि अच्छी हो सके। इसके बाद 20-30 दिनों के अंतराल पर कटाई करते रहें। ध्यान रहे कि प्रत्येक कटाई के बाद सिंचाई अवश्य करनी चाहिए और 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर की दर से यूरिया की टॉप ड्रेसिंग फसल की बढ़वार के लिए अवश्य करें। बरसीम की फसल में यदि तना विगलन रोग के लक्षण दिखें, तो बहुकटाई वाली फसलों की कटाई समय पर करें।

जई

- जई की बुआई के 20-25 दिनों बाद पहली सिंचाई करें तथा उसके बाद 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर की दर से टॉप ड्रेसिंग करें। चारे हेतु जई की फसल में 20-25 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करते रहें। जई की बुआई के 55-60 दिनों बाद चारे के लिए कटाई करें। कटाई जमीन के ऊपर 8-10 सें.मी. से करने पर कल्ले अच्छे निकलते हैं। बीज प्राप्त

बरसीम

करने के लिए पहली कटाई के बाद फसल छोड़ दें।

सब्जी फसलें

आलू

- पछेती आलू की फसल में जरूरत के मुताबिक 10-15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करते रहें एवं खेत में पर्याप्त नमी बनाए रखें। बुआई के 25 दिनों बाद 87 कि.ग्रा. यूरिया का प्रति हैक्टर की दर से टॉप ड्रेसिंग करके मिट्टी चढ़ाएं। पहाड़ी इलाकों में आलू के खेत में निराई-गुड़ाई करें। नाइट्रोजन की शेष एक तिहाई मात्रा यूरिया या कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट के रूप में खेत में डालकर मोटी मेड़ बनाकर मिट्टी चढ़ाएं। पछेती आलू में दिसम्बर तथा जनवरी में अधिक ठंड की आशंका होने पर फसल की सिंचाई कर देनी चाहिए। जमीन भीगी रहने पर पाले का असर कम हो जाता है। इसके साथ ही पाले से बचाने के लिए धुएं का प्रबंधन करें।

फूलगोभी

फूलगोभी की कई उन्नत किस्में विभिन्न मौसमों के अनुसार उपयुक्त पाई गई हैं। इनमें प्रमुख हैं:

- **पूसा पौषजा:** यह किस्म मध्य पछेती समूह की है, जो दिसम्बर-जनवरी में तैयार होती है। इसके फूल सफेद, ठोस तथा औसतन 900 ग्राम वजनी होते हैं। रोपाई के लगभग 85 दिनों बाद फसल तैयार हो जाती है और 20-25 दिनों तक तुड़ाई के योग्य रहती है। औसत उपज 300-350 क्विंटल प्रति हैक्टर होती है।
- **पूसा शुक्ति:** यह मध्यम पछेती किस्म है, जो दिसम्बर-जनवरी में अच्छी उपज देती है। इसके फूल गठीले, सफेद तथा उत्तम गुणवत्ता के होते हैं। रोपण के 75-80 दिनों बाद फसल तैयार हो जाती है। इसकी औसत उपज 400-440 क्विंटल प्रति हैक्टर तक प्राप्त की जा सकती है।
- **पूसा हाइब्रिड-2:** यह मध्य अगेती किस्म है, जो नवंबर-दिसम्बर में तैयार होती है। पौधे मध्यम आकार के तथा कम सीधे होते हैं। फूल सफेद और ठोस होते हैं। यह किस्म जुलाई के अंत में बुआई के लिए उपयुक्त है तथा डाउनी मिल्ड्यू रोग से प्रतिरोधी है। रोपाई के लगभग 80 दिनों बाद फसल तैयार होती है और औसत उपज लगभग 230 क्विंटल प्रति हैक्टर होती है।
- **पोषण प्रबंधन:** पछेती फूलगोभी में 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की पहली टॉप ड्रेसिंग रोपाई के 20-25 दिनों बाद तथा समान मात्रा की दूसरी टॉप ड्रेसिंग 45-50 दिनों बाद करनी चाहिए, जिससे पौधों का विकास संतुलित रहे और फूलों की गुणवत्ता बेहतर बने।

गांठगोभी

- गांठगोभी में 34 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की प्रथम टॉप ड्रेसिंग रोपाई के 20-25 दिनों बाद तथा इतनी ही मात्रा की दूसरी टॉप ड्रेसिंग रोपाई के 45-50 दिनों बाद करनी चाहिए।

बंदगोभी

- बंदगोभी में खरपतवारनाशी पेण्डीमेथिलीन या वासालीन का छिड़काव रोपाई से एक-दो दिन पहले करें और इसके पश्चात तुरन्त हल्की सिंचाई करें। फसल बढ़वार के समय पूर्ण नमी बनायें रखें तथा आवश्यकतानुसार समय-समय पर सिंचाई अवश्य करें। सामान्यत: गोभीवर्गीय फसलों में जड़ों के पास मिट्टी चढ़ाना लाभदायक है।

मिर्च

रोपाई

- शिमला मिर्च के लिए बुआई अक्टूबर तथा रोपाई दिसम्बर-जनवरी में उपयुक्त है। रोपाई की दूरी किस्म पर निर्भर करती है। सामान्यत: पंक्ति से पंक्ति की दूरी व पौधे से पौधे की दूरी 45 सें.मी. पर्याप्त होती है। आवश्यतानुसार सिंचाई करते रहें।

फूलगोभी

पोषक तत्व प्रबंधन

- खेत की तैयारी के समय प्रति हैक्टर 50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 100 कि.ग्रा. फॉस्फोरस व 100 कि.ग्रा. पोटाश डालें तथा रोपाई के 30-35 दिनों बाद खड़ी फसल में 50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें।

पौध संरक्षण

- मिर्च की फसल में शीर्षारंभी क्षय रोग (डाइबैक) एवं फल सड़न रोग की रोकथाम के लिए कार्बेण्डाजिम 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। क्लोरोथैलोनील 1.5 ग्राम प्रति लीटर या डाइफेनोकोनाजोल 1.0 ग्राम प्रति लीटर या प्रोपिनेब 3.5 ग्राम प्रति लीटर या टेबुकानाजोल 1.0 ग्राम प्रति लीटर या एजोक्सीस्ट्रॉबिन 1.0 ग्राम प्रति लीटर की दर से पानी के साथ मिलाकर रोगों के लक्षण दिखने पर छिड़काव करें।

- झुलसा रोग की रोकथाम हेतु स्वस्थ बीजों का प्रयोग करें। फसलचक्र में, गैर सोलनेसी कुल के पौधों का उपयोग करें। फफूंदनाशक रसायन में मैंकोजेब 2 ग्राम प्रति लीटर, जिनेब 2 ग्राम प्रति लीटर, साइमोक्सानिल+मैंकोजेब 1.5-2 ग्राम या एजोक्सीस्ट्रॉबिन 1 ग्राम प्रति लीटर पानी के साथ छिड़काव अवश्य करें।

लहसुन

- लहसुन की फसल में आवश्यकतानुसार निराई-गुड़ाई तथा सिंचाई करें एवं 74 कि.ग्रा. यूरिया की प्रथम टॉप ड्रेसिंग बुआई के 40 दिनों बाद तथा इतनी ही मात्रा की दूसरी टॉप ड्रेसिंग बुआई के 60 दिनों बाद कर दें। दो से तीन निराई खरपतवार नियंत्रण के लिए पर्याप्त हैं।

मूली

- उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में मूली की यूरोपियन प्रजातियां जैसे-पूसा हिमानी, व्हाइट आइसकिल, रैपिड रेड, व्हाइट टिप्ड एवं स्कारलेट ग्लोब आदि की बुआई अक्टूबर से जनवरी तक कर सकते हैं। बुआई के समय खेत में नमी अच्छी प्रकार से होनी चाहिए। इसकी बुआई या तो छोटी-छोटी समतल क्यारियों में या 30-45 सें.मी. की दूरी पर बनी मेड़ों पर करते हैं। बीज जमने के बाद पौधों की दूरी 6-7 सें.मी. रखते हैं। शरदकालीन फसल में 10-15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। मेड़ों पर सिंचाई हमेशा आधी मेड़ करनी चाहिए, ताकि पूरी मेड़ भुरभुरी व नमीयुक्त बनी रहे।

गाजर

- गाजर की किस्म पूसा यमदग्नि, पूसा नयन ज्योति एवं नैन्ट्स की दिसम्बर से फरवरी में बुआई कर सकते हैं। यह बुआई के

मिर्च

टमाटर

बुआई का समय एवं किस्मों का चयन

- टमाटरवर्गीय सब्जियां हमारे देश में खेती की प्रमुख सब्जी फसलें हैं। उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में टमाटर की बसन्त-ग्रीष्म ऋतु की फसल के लिए पौधशाला में बीज की बुआई कर दें एवं दिसम्बर से जनवरी में तैयार पौध की रोपाई करें। इसके लिए उपयुक्त उन्नत/संकर किस्में जैसे-पूसा हाइब्रिड-1, पूसा उपहार, पूसा-120, पूसा शीतल, पूसा सदाबहार प्रमुख हैं।

मृदा

- उचित जल निकास वाली रेतीली दोमट या दोमट भूमि जिसमें पर्याप्त मात्रा में जीवांश उपलब्ध हो, टमाटर की खेती के लिए उपयुक्त होती है। इसके लिए जल निकास की उचित व्यवस्था का होना आवश्यक है।

बुआई

- टमाटर की उन्नत किस्मों के लिए 350-400 ग्राम तथा संकर किस्मों के लिए 200-250 ग्राम बीज एक हैक्टर खेत की रोपाई के लिए पर्याप्त है। सीमित बढ़वार वाली प्रजातियों की रोपाई 60X60 सें.मी. तथा असीमित बढ़वार वाली किस्मों की रोपाई 75-90X60 सें.मी. की दूरी पर बनी पंक्तियों में शाम के समय करें।

पोषक तत्व प्रबंधन

- रोपाई के एक माह पहले गोबर या कम्पोस्ट की अच्छी सड़ी खाद 20-25 टन प्रति हैक्टर की दर से भूमि में अच्छी तरह मिला लें। टमाटर की उन्नत किस्मों में 75:100:50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटेशियम तथा संकर असीमित बढ़वार वाली किस्मों में 50:250:100 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटेशियम बेसल डोज के रूप में तथा इन किस्मों में क्रमशः 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन व 55-60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की प्रथम टॉप ड्रेसिंग रोपाई के 20-25 दिनों बाद तथा इतनी ही मात्रा की दूसरी टॉप ड्रेसिंग रोपाई के 45-50 दिनों बाद करनी चाहिए।

अंतः सस्यन

- अच्छी पैदावार प्राप्त करने के लिए हल्की निराई-गुड़ाई करें व पौधों की जड़ों के पास मिट्टी चढ़ा दें। टमाटर की असीमित बढ़वार वाली प्रजातियों में सहारा न प्रदान करने से पौधों की वृद्धि तथा उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ता है और मिट्टी के संपर्क में आने से फल विभिन्न रोगों के प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं। खेतों में खरपतवार नियंत्रण करते समय खुर्पी या कुदाल से गुड़ाई कर देने से पौधों की बढ़वार अच्छी होती है। सूखे घास-फूस की पलवार अथवा पुआल (मल्च) पौधों के नीचे बिछाने से अच्छी बढ़वार के साथ-साथ खरपतवार का नियंत्रण भी हो जाता है।

पौध संरक्षण

- झुलसा रोग की रोकथाम हेतु स्वस्थ बीजों का प्रयोग करें। फसलचक्र में, गैर सोलनेसी कुल के पौधों का उपयोग करें। फफूंदनाशक रसायन जैसे मैंकोजेब 2 ग्राम प्रति लीटर, जिनेब 2 ग्राम प्रति लीटर, साइमोक्सानिल+मैंकोजेब 1.5-2 ग्राम या एजोक्सीस्ट्रॉबिन 1 ग्राम प्रति लीटर पानी के साथ छिड़काव अवश्य करें।

75-80 दिनों बाद तैयार होती है एवं औसतन 200-250 क्विंटल/हैक्टर उपज देती है।

फ्रेंचबीन

- फ्रेंचबीन में बुआई के लगभग 30 दिनों बाद 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की टॉप ड्रेसिंग करें। फ्रेंचबीन में पहली सिंचाई फूल आने के ठीक पहले तथा दूसरी सिंचाई फली बनते समय करनी चाहिए।

पत्तेदार सब्जियां

- पत्तेदार सब्जियां पोषण की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। ये आयरन, कैल्शियम, फॉस्फोरस, सोडियम, पोटेशियम, रेशे तथा विटामिन 'ए' व 'सी' के अच्छे स्रोत हैं।

पालक व मेथी

- पालक एवं मेथी में पत्तियों की प्रत्येक कटाई के बाद प्रति हैक्टर

20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की टॉप ड्रेसिंग एवं सिंचाई करें।

सरसों साग

- सरसों की किस्म पूसा साग-1 की पहली कटाई बुआई के 35 दिनों बाद शुरू हो जाती है। जनवरी के आखिर तक इसकी कटाई की जा सकती है।

धनिया

- धनिया के पौधे 3-4 सें.मी. के हो जाने पर प्रति हैक्टर 15 कि.ग्रा.

नाइट्रोजन की टॉप ड्रेसिंग कर दें। 15 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की दूसरी टॉप ड्रेसिंग पहली टॉप ड्रेसिंग के 20-25 दिनों बाद करें।

सब्जियों की संरक्षित खेती

- संरक्षित खेती तकनीकी निश्चित तौर पर पादप सुरक्षा का भी मजबूत आधार है। इसके द्वारा विभिन्न कीटों एवं रोगों के नियंत्रण हेतु उपयोग में लिए जाने वाले अंधाधुंध कीटनाशकों के उपयोग को काफी हद तक घटाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त फसलों की अत्यधिक ठंड, गर्मी, ओलावृष्टि, वर्षा तथा तेज हवा से भी काफी हद तक सुरक्षा संभव होती है।
- संरक्षित सब्जी उत्पादन द्वारा खुले खेतों में सब्जी एवं फूलों की उत्पादकता में 3-5 गुना वृद्धि के साथ-साथ उनकी गुणवत्ता में भी वृद्धि की जा सकती है। यही नहीं संरक्षित खेती द्वारा प्राकृतिक संसाधनों जैसे भूजल तथा उर्वरकों में भी भारी बचत संभव है तथा इससे फसलों की अवधि में वृद्धि करने तथा उन्हें मौसम से पहले या बाद में उगाने (बेमौसम सब्जी उत्पादन) हेतु उनका संरक्षित उत्पादन ही एकमात्र उपाय है। 50 वर्ग मीटर वाले पॉलीहाउस को बनाने के लिए अनुमानित 11000 रुपये का खर्चा आता है। इसमें अन्य बेमौसमी सब्जी जैसे-खीरा, चप्पन कद्दू, फ्रेंचबीन, टमाटर, लौकी आदि की फसल भी उगाई जा सकती है।

टमाटर

- ग्रीनहाउस में टमाटर के उत्पादन हेतु पौध को संरक्षित क्षेत्र में उगाया जाता है। यह सुनिश्चित किया जाता है कि पौध पूर्णत: विषाणु रोगरहित व स्वस्थ हों। पौध बीज बुआई के लगभग 25-30 दिनों बाद रोपाई योग्य हो जाती है। इस प्रकार 1000 वर्ग मीटर के ग्रीनहाउस में लगभग 2400-2600 पौधे लगाये जाते हैं। हमेशा क्यारियां जमीन से उठी हुई बनाई जाती हैं तथा क्यारियों की लम्बाई पूर्णत: ग्रीनहाउस के डिजाइन पर निर्भर करती है। 1000 वर्ग मीटर ग्रीनहाउस से लगभग 15-18 टन टमाटर 9-10 महीने की अवधि वाली फसल से प्राप्त किया जा सकता है जबकि चेरी टमाटर की उपज 3-4 टन प्रति 1000 वर्ग मीटर प्राप्त होती है।

प्याज

प्याज की रोपाई दिसम्बर के अंत से 15 जनवरी तक करनी चाहिए। रबी मौसम के लिए पूसा व्हाइट राउंड, पूसा माधवी, व्हाइट फ्लैट, पूसा रेड, अर्ली ग्रेनो, पूसा रतनार, एन-2-4-1, एग्रीफाउंड लाइट रेड एवं पहाड़ी क्षेत्रों के लिए ब्राउन स्पैनिश और अर्ली ग्रेनो आदि प्याज की प्रमुख किस्में हैं। प्याज की रोपाई के लिए 7-8 सप्ताह पुरानी पौध का प्रयोग करें। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 15 सें.मी. तथा पौध से पौध की दूरी 10 सें.मी. रखनी चाहिए। प्याज में खरपतवार नियंत्रण के लिए रोपाई के दो-तीन दिनों बाद पेण्डीमेथिलीन की 3.5 लीटर मात्रा 800-1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से रोपाई के बाद सिंचाई से पहले छिड़काव करें।

चप्पन कद्दू

- यदि लो टनल की सुविधा हो, तो दिसम्बर में भी इसकी बुआई की जा सकती है। इसकी ऑस्ट्रेलियाई ग्रीन किस्म से लगभग 250-300 क्विंटल प्रति हैक्टर तथा पूसा अलंकार से लगभग 450 क्विंटल प्रति हैक्टर तक उपज प्राप्त होती है। शेष नाइट्रोजन की मात्रा बुआई के 20-35 दिनों बाद पौधों की जड़ों के पास देकर मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए।

खीरावर्गीय सब्जियां

- इन सब्जियों को इस माह में पॉलीहाउस तकनीक द्वारा सर्दी से बचाव कर अच्छी फसल ले सकते हैं इस समय बाजार में इन फसलों के दाम भी अच्छे मिलते हैं। इसके लिए इस महीने में पॉलीहाउस में बे-मौसमी नर्सरी लगाई जा सकती है।

बागवानी फसलें

आम

- आम के बागानों में उत्तम परागण के लिए मधुमक्खी पालन के बक्सों को लगाना चाहिए। इससे फल का विकास

भी अच्छा होता है। आवश्यकतानुसार पौधों में नियमित सिंचाई करें। आम के बागों की साफ-सफाई करें। 10 वर्ष या इससे ज्यादा उम्र के वृक्षों में प्रति वृक्ष 750 ग्राम फॉस्फोरस, 1 कि.ग्रा. पोटाश थालों में दें।

- मिलीबग अथवा गुजियां कीट की रोकथाम के लिए तने के चारों ओर 2 फीट की ऊंचाई पर 400 गेज वाली 30 सें.मी. पॉलीथीन की शीट की पट्टी बांधे। ऐसे वृक्षों पर कार्बोसल्फॉन 0.05 प्रतिशत) अथवा डाइमेथोएट (0.05 प्रतिशत) का एक छिड़काव अवश्य करें। ऐसे बाग जहां वृक्षों के मुख्य तनों पर एल्काथेन की पट्टी समय से बांधी गई है, उन पट्टियों को नियमित अंतराल पर साफ करते रहें, जिससे पट्टी पर धूल इत्यादि जमा न होने पाएं।

अमरूद

- अमरूद में सिंचाई प्रबंधन के साथ-साथ तैयार फलों को सही समय पर तुड़ाई कर बाजार में भेजने की व्यवस्था करें या प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन के लिए इन्हें उपयुक्त रूप से उपयोग करें। फल-मक्खी के नियंत्रण के लिए साइपरमेथ्रिन 2.0 मि.ली. प्रति लीटर या मोनोक्रोटोफॉस 1.5 मि.ली. प्रति लीटर की दर से पानी में घोल बनाकर फल परिपक्वता के पूर्व 10 दिनों के अंतराल पर 2-3 छिड़काव करें। प्रभावित फलों को तोड़कर नष्ट कर देना चाहिए तथा बगीचे में फल मक्खी के वयस्क नर के नियंत्रण हेतु फेरोमोन ट्रैप लगाने चाहिए।

बेर

- बेर के छोटे फलों को गिरने से रोकने के लिए सुपरफिक्स हार्मोन 1.1 मि.ली. प्रति 4.5 लीटर की दर से पानी में घोलकर छिड़काव करें।

आंवला

- आंवले की फसल में तुड़ाई उपरांत फलों को डाइफोलेटॉन (0.15 प्रतिशत), डाइथेन एम-45 या बाविस्टीन (0.1 प्रतिशत) से उपचारित करके भण्डारित करने से रोग की रोकथाम की जा सकती है। आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहें व फलों की तुड़ाई एवं विपणन की व्यवस्था करें।

सब्जी मटर

जल प्रबंधन

- सब्जी मटर में फूल आने के समय आवश्यकतानुसार हल्की सिंचाई कर दें। उसके बाद 30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन टॉप ड्रेसिंग के रूप में प्रयोग करें एवं दूसरी सिंचाई फलियां बनते समय करनी चाहिए। अधिक मात्रा में पानी लगाने से मटर के पौधों मे श्वसन क्रिया प्रभावित होती है। इस प्रकार फुहारा विधि से सिंचाई ज्यादा लाभप्रद होती है और पानी की बचत होती है।

खरपतवार नियंत्रण

- सब्जी मटर के लिए 1-2 निराई-गुड़ाई की आवश्यकता होती है। रासायनिक खरपतवार नियंत्रण के लिए 3.0 लीटर पेण्डीमेथिलीन 800-1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। खरपवतारनाशी का प्रयोग करते समय मिट्टी में पर्याप्त मात्रा में नमी होनी चाहिए।

तुड़ाई

- फलियों की तुड़ाई सुबह या शाम के समय की जानी चाहिए। सामान्यत: लगभग 12-15 दिनों के अंतर पर कुल 3-4 तुड़ाई की जाती हैं।

पौध संरक्षण

- चूर्णिल आसिता रोग की रोकथाम हेतु रोगरोधी किस्म का चयन करना लाभदायक होता है। केलिक्सीन 0.5 मि.ली. दवा प्रति लीटर पानी या पेन्कोनाजोल 1 मि.ली. दवा प्रति 4 लीटर पानी में घोलकर 10 दिनों के अंतराल पर 2-3 छिड़काव करें। या फ्लूसिलाजोल 1 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। घुलनशील गंधक का चूर्ण 3 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी की दर से एक हैक्टर खेत में लगभग 600-800 लीटर पानी की आवश्यकता पड़ती है।

अनार

- अम्बे बहार अनार के पोषक तत्व प्रबंधन के लिए 600-700 ग्राम नाइट्रोजन, 200-250 ग्राम फॉस्फोरस और 200-250 ग्राम पोटाश प्रति वृक्ष प्रति वर्ष प्रयोग करना चाहिए।

पपीता

- इस फसल में वृक्षारोपण के 6 महीने के बाद प्रति पौधा नाइट्रोजन 150-200 ग्राम, फॉस्फोरस 200-250 ग्राम, पोटेशियम 100-150 ग्राम प्रयोग करें। तीनों उर्वरक 2-3 खुराक में वृक्ष लगाने से पहले फूल आने के समय तथा फल लगने के समय दे देनी चाहिए।

लीची

- इस माह में पाला पड़ने की पूरी आशंका होती है और फलदार पौधे जो पाले के लिए बेहद संवेदनशील होते हैं। उन बागानों में बचाव के उपाय करने चाहिए। पाला प्रबंधन शुरू की अवस्था यानी नए बागानों में अधिक जरूरी होता है। सिंचाई के साथ-साथ, घास-फूस अथवा फसल अवशेष या पॉलीथीन से नए छोटे पौधों को ढककर रखना चाहिए। पाले से बचने के लिए सल्फरयुक्त रसायन जैसे डाइमिथाइल सल्फो ऑक्साइड का 0.2 प्रतिशत अथवा 0.1 प्रतिशत थायो यूरिया का छिड़काव लाभप्रद होता है।
- लीची में मिलीबग/कड़ी कीट के नियंत्रण के लिए प्रति वृक्ष 200-250 ग्राम मिथाइल पैराथियॉन का बुरकाव वृक्ष के एक मीटर के घेरे में कर दें। इसके बाद तने पर जमीन से 30-40 सें.मी. की ऊंचाई पर 400 गेज मोटाई वाली एल्काथीन की 30 सें.मी. चौड़ी पट्टी सुतली आदि की सहायता से कसकर बांध दें। दोनों सिरों पर गीली मिट्टी या ग्रीस से लेप कर दें, ताकि मिलीबग नीचे से ऊपर वृक्ष पर न चढ़ पाये। मंजरी आने के 30 दिनों पहले पौधों पर जिंक सल्फेट (2 ग्राम प्रति लीटर) के घोल का पहला एवं 15 दिनों बाद दूसरा छिड़काव करने से मंजर एवं फूल अच्छे होते हैं।
- पुराने बागों में अंतरफसली के रूप में हल्दी व अदरक की फसल लगाएं व आवश्यकतानुसार सिंचाई करें। ■

पर्वतीय क्षेत्रों के लिए ईंधन कुशल डीजल हल

भारत के पर्वतीय और जनजातीय क्षेत्रों में खेती लघु, असमान तथा ढलान वाले खेतों में की जाती है, जहां पारंपरिक हल या भारी ट्रैक्टरों से जुताई करना कठिन, समय साध्य और महंगा होता है। सीमित संसाधनों और बढ़ती डीजल लागत के कारण इन क्षेत्रों के किसान यांत्रिक जुताई अपनाने में हिचकते हैं। ऐसी परिस्थिति में जम्मू-कश्मीर के एक किसान श्री प्रवीण कुमार ने स्थानीय जरूरतों को ध्यान में रखते हुए एक ईंधन कुशल डीजल हल तैयार किया है, जो लघु और असमान खेतों के लिए उपयुक्त, सस्ता और प्रभावी समाधान प्रदान करता है।

जम्मू और कश्मीर के राजौरी जिले के लगैर गांव के निवासी श्री प्रवीण कुमार एक व्यावहारिक नव प्रवर्तक हैं, जिन्होंने स्थानीय समस्याओं को समझते हुए नवाचार का मार्ग अपनाया। 34 वर्षीय, श्री कुमार के पास 18 वर्षों का खेती और यांत्रिक उपकरणों के प्रयोग का अनुभव है। पारंपरिक खेती में लगातार आने वाली कठिनाइयों और असमतल भूमि पर जुताई की असुविधा ने उन्हें समाधान खोजने के लिए प्रेरित किया। सीमित साधनों के बावजूद उन्होंने प्रयोग और संशोधन करते हुए एक नया डीजल हल तैयार किया, जो आज स्थानीय किसानों के लिए प्रेरणा बन गया है।

श्री कुमार द्वारा विकसित संशोधित डीजल हल विशेष रूप से लघु और असमान भू-भागों के लिए तैयार किया गया है। इसका उद्देश्य जुताई की दक्षता को बढ़ाते हुए ईंधन की खपत को कम करना है। इस हल में इंजन, ब्लेड और चेसिस में कई तकनीकी सुधार किए गए हैं, जिससे यह न केवल ईंधन-संवेदनशील है, बल्कि संकीर्ण खेतों में भी सहजता से चलाया जा सकता है। इसकी संरचना हल्की, टिकाऊ और संतुलित है, जिससे यह विभिन्न प्रकार की मृदा में समान रूप से कार्य करता है।

मुख्य विशेषताएं

- **ईंधन दक्षता:** इंजन में किए गए तकनीकी सुधारों से यह हल 10-15 प्रतिशत तक कम डीजल की खपत करता है।
- **गुणवत्तापूर्ण जुताई:** मृदा की भुरभुराहट और जुताई की गहराई बेहतर बनती है, जिससे बुआई के लिए खेत शीघ्र तैयार होता है।
- **संकीर्ण क्षेत्र अनुकूल:** हल की बनावट इस प्रकार है कि यह लघु और टेढ़े-मेढ़े खेतों में भी आसानी से चल सके।
- **स्थानीय मरम्मत सुविधा:** इसके पुर्जे स्थानीय स्तर पर उपलब्ध और सरलता से मरम्मत योग्य है।
- **पर्यावरणीय दृष्टि से लाभकारी:** कम ईंधन खपत के कारण प्रदूषण में भी कमी आती है।

पर्वतीय किसानों के लिए ऊर्जा बचत का हल

लाभ

इस हल से किसानों को कई प्रकार के लाभ प्राप्त होते हैं। सबसे पहले, डीजल लागत में कमी आती है, जिससे खेती की कुल लागत घटती है। जुताई की गति और गुणवत्ता दोनों में सुधार होता है, जिससे कम समय में खेत तैयार हो जाता है। श्रम की आवश्यकता घटने से श्रमिकों पर निर्भरता कम होती है। यह हल पर्वतीय क्षेत्रों के लघु किसानों के लिए विशेष रूप से लाभकारी है, जहां न तो ट्रैक्टर आसानी से चल सकते हैं और न ही श्रम आसानी से उपलब्ध होता है।

विस्तार की संभावना

श्री प्रवीण कुमार का यह नवाचार केवल जम्मू-कश्मीर तक सीमित नहीं है। भारत के अन्य पर्वतीय, जनजातीय और सीमांत कृषि जोत वाले राज्यों जैसे-हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, सिक्किम, नागालैंड और झारखंड में भी यह अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। भारत में लगभग 85 प्रतिशत किसान लघु और सीमांत कृषक हैं, जिनके खेत आकार में लघु और विखंडित हैं। ऐसी परिस्थितियों में यह

छोटे एवं असमान खेतों में लाभकारी यंत्र

ईंधन-कुशल हल एक किफायती विकल्प के रूप में अपनाया जा सकता है। यदि सरकार, कृषि विश्वविद्यालय और अनुसंधान संस्थान मिलकर इस नवाचार का क्षेत्रीय परीक्षण एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से प्रसार करें, तो इसका व्यापक प्रभाव संभव है।

वैज्ञानिक पुष्टिकरण की आवश्यकता

यद्यपि यह हल व्यावहारिक स्तर पर प्रभावी सिद्ध हुआ है, लेकिन इसे बड़े पैमाने पर अपनाने से पूर्व वैज्ञानिक सत्यापन आवश्यक है। इसकी ईंधन दक्षता, जुताई की एकरूपता और यांत्रिक विश्वसनीयता की जांच कृषि अभियांत्रिकी संस्थानों जैसे-सीआईएई भोपाल, आईआईटी खड़गपुर या संबंधित राज्य कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा की जानी चाहिए। इससे इस नवाचार को औपचारिक मान्यता मिलेगी और इसे अधिक किसानों तक पहुंचाने में सहायता मिलेगी।

क्षेत्र अथवा डोमेन

यह नवाचार 'स्थान-विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप फार्म मशीनरी अनुकूलन' के अंतर्गत आता है। इसका उद्देश्य स्थानीय कृषि परिस्थितियों, स्थलाकृति और आर्थिक संसाधनों को ध्यान में रखते हुए मशीनरी का ऐसा विकास करना है, जो किफायती, विश्वसनीय और आसानी से संचालित हो सके।

(विकसित कृषि संकल्प अभियान संकलन)

पंजीकरण संख्या 14252/57 पंजीयक, समाचार पत्र, भारत सरकार
दिल्ली पोस्टल पंजीकृत संख्या DL(C)-12/1145/10-12
ISSN 0023-1088
मूल्य: ₹50

डा. अनुराधा अग्रवाल, परियोजना निदेशक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित तथा मैसर्स चन्दु प्रेस, 469, पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एस्टेट, दिल्ली-110092 से लेजरटाईपसैट एवं मुद्रित। संपादक: सुनीता अरोड़ा